चाँद

राजपूताना-अङ्क   मूल्य केवल १॥)

सम्पादक—डॉक्टर धनीराम प्रेम, एम० आर० सी० एस०(इङ्ग०); एल० आर० सी० पी० (लन्दन)

इस अङ्क के सम्पादक—डॉक्टर मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०, विशारद

स्फुलिंग

[लेखक—अध्यापक ज़हूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद']

'स्फुलिङ्ग' विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की एक नवीन पुस्तक है। आप यह जानने के लिए उत्कण्ठित होंगे, कि इस नवीन वस्तु में है क्या ? न पूछिए कि इसमें क्या है ! इसमें उन अङ्गारों की ज्वाला है, जो एक अनन्त काल से समाज की छाती पर धधक रहे हैं, और जिनकी सर्व-संहारकारी शक्ति ने समाज के मन-प्राण निर्जीव-प्राय कर डाले हैं। 'स्फुलिङ्ग' में वे चित्र हैं, जिन्हें हम नित्य देखते हुए भी नहीं देखते और जो हमारे सामाजिक अत्याचारों का नग्न प्रदर्शन कराते हैं। 'स्फुलिङ्ग' देख कर समाज के अत्याचार आपके नेत्रों के सामने सिनेमा के फ़िल्म के समान घूमने लगेंगे। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि 'स्फुलिङ्ग' के दृश्य देख कर आपकी आत्मा काँप उठेगी, और हृदय ? वह तो एक-बारगी चीत्कार कर मूर्च्छित हो जायगा। 'स्फुलिङ्ग' वह वैतालिक रागिनी है, जो आपके सदियों के सोए हुए मन-प्राणों पर थपकियाँ देगी। 'स्फुलिङ्ग' में प्रकाश की वह चमक है, जो आपके नेत्रों में भरे हुए घनीभूत अन्धकार को एकदम विनष्ट कर देगी।

'स्फुलिङ्ग' में कुशल-लेखक ने समाज में नित्य घटने वाली घटनाएँ कुछ ऐसे अनोखे ढङ्ग से अङ्कित की हैं, कि वे सजीव हो उठी हैं। उन्हें पढ़ने से ऐसा बोध होता है, जैसे हमारे नेत्रों के सामने दीनों पर पाशविक अत्याचार हो रहा हो तथा हमारे कानों में उनकी करुण चीत्कार-ध्वनि गूँज रही हो। भाषा में ओज, माधुर्य और करुणा की त्रिवेणी लहरा रही है। हमारा अनुरोध है, कि यदि आपके हृदय में अपने समाज तथा देश के प्रति कुछ भी कल्याण-कामना शेष है, तो आज ही 'स्फुलिङ्ग' की एक प्रति ख़रीद लीजिए मूल्य केवल लागत-मात्र २॥)

स्थायी ग्राहकों से १॥।=)

व्यवस्थापिका, 'चाँद' कार्यालय
चन्द्रलोक
—इलाहाबाद

तार का पता
'नवचेतन'

फ़ोन नं० २७४१
बड़ाबाज़ार

दिवाली तथा शुभ अवसरों पर

गृह-देवियों को उपहार क्या दीजिएगा?

हमारे यहाँ सोने का सब प्रकार का ज़ेवर तथा जड़ाऊ गहना हीरा, मोती, पन्ना इत्यादि से जड़ा हुआ, हर समय तैयार रहता है और ऑर्डर का ज़ेवर इच्छानुसार ठीक समय पर बना कर दिया जाता है।

चाँदी के बर्तन तथा उपहार देने योग्य छोटी-बड़ी सभी तरह की चीज़ें हर समय तैयार रहती हैं।

हमारी ख़ास विशेषता मीनाकारी का ज़ेवर

सोने के गहनों पर सब तरह के मीनाकारी का काम
किया हुआ ज़ेवर तैयार रहता है।

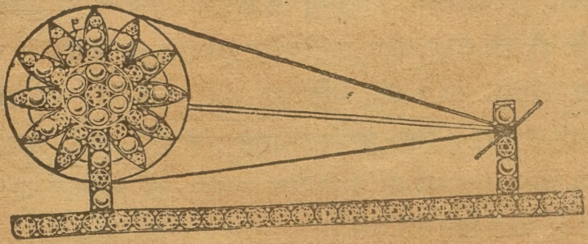

नं० ११५
साड़ी का ब्रोच, मोती, चुन्नी,
पन्ना जड़ा हुआ, मूल्य ४०) रु०

नोट—विशेष जानकारी के लिए हमारे कारख़ाने का बड़ा सूचीपत्र =) का टिकट भेज कर मुफ़्त मँगाइए।

पताः—के० मणीलाल एण्ड कम्पनी (जौहरी)
१७३, हरीसन, रोड, कलकत्ता

डॉ० डब्लू० सी० राय, एल० एम० एस० की

पागलपन की दवा

५० वर्ष से स्थापित। मूर्छा, मृगी, अनिद्रा, न्यूरस्थेनिया के लिए भी मुफ़ीद है। इस दवा के विषय में विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि—"मैं डॉ० डब्लू० सी० राय के स्पेसिफ़िक फ़ार इन्सेनिटी (पागलपन की दवा) से तथा उसके गुणों से बहुत दिनों से परिचित हूँ।" दवा का दाम ५) प्रति शीशी।

पता—एस० सी० राय एण्ड कं०

१६७-३ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता।

तार का पता—"Dauphin" कलकत्ता।

एक नई ख़बर !

बिना उस्ताद के सङ्गीत सिखाने में, बाज़ी जीतने वाली पुस्तक "हारमोनियम, तबला एण्ड बाँसुरी मास्टर" तीसरी बार छप गई है। नई-नई तर्ज़ों के ६२ गायनों के अलावा ११५ राग-रागिनी का वर्णन ख़ूब किया है। इससे बिना उस्ताद के उपरोक्त तीनों बाजे बजाना न आवे तो मूल्य वापिस देने की गारण्टी है! अब की बार पुस्तक बहुत बढ़ा दी गई है, किन्तु मूल्य वही १) डा०म० ।–) पुस्तक बड़े ज़ोरों से बिक रही है।

पता–गर्ग एण्ड कम्पनी नं० ३५, हाथरस, यू०पी०

५० वर्ष की सर्प और गोहरे की आज़मूदा दवा

दोनों की दो ख़ुराक, क़ीमत १) रु० डाक ख़र्च ।–)

तजुर्बे के लिए मुफ़्त, पेशगी टिकट ।=) के भेजें।

पता : जलालुद्दीन S/o जमालुद्दीन, मु० पोस्ट

हँडिया, होशङ्गाबाद (सी० पी)

पढ़ कर गुप्त विद्या द्वारा जो चाहोगे बन जाओगे जिस की इच्छा करोगे मिल जावे गा मुफ़्त मंगवाओ पता साफ़ लिखो।

गुप्त विद्या प्रचारक आश्रम, लाहौर

सम्मन बग़रज़ इनफ़ेसाल मुक़दमा

मुक़दमा नम्बर ५७३······ सन् १६३१ ई०

बअदालत दीवानी ख़फ़ीफ़ा·········· मुक़ाम बहराइच

ठाकुर रामेश्वरबख़्शसिंह वग़ैरह पिसरान ठाकुर जगन्नाथबख़्शसिंह क़ौम चत्री साकिन बीरापुर

बनाम

ईश्वरदीन उर्फ़ युगल वल्द परगास क़ौम कुर्मी साकिन जोगियान········ मुद्दाअलेह

हरगाह मुद्दई ने तुम्हारे नाम एक नालिश बाबत ११०) के दायर की है लिहाज़ा तुमको हुक्म होता है कि तुम बतारीख़ १० माह दिसम्बर सन् १६३१ ई० बवक़्त १० बजे दिन असालतन या मार्फ़त वकील के जो मुक़दमा के हाल से क़रार वाक़ई वाक़िफ़ किया गया हो और जो कुल उमूर अहम मुतल्लिक़ैह मुक़दमा का जवाब दे सके या जिसके साथ कोई और शख़्स हो जो जवाब ऐसे सवालात का दे सके, हाज़िर हो और जवाबदेही दावा मुद्दई मज़कूर की करो और हरगाह वही तारीख़ जो तुम्हारे अहज़ार के लिए मुक़र्रर है वास्ते इन्फ़ेसाल क़तई मुक़दमा के तजवीज़ हुई है, पस तुमको लाज़िम है कि अपने जवाब दावा की ताईद में जिन गवाहों की शहादत पर या जिन दस्तावेज़ात पर तुम इस्तदलाल करना चाहते हो उसी रोज़ पेश करो।

मुत्तिला रहो कि बरोज़ मज़कूर तुम हाज़िर न होगे तो मुक़दमा बग़ैर हाज़िरी तुम्हारे मस्मूअ और फ़ैसल होगा।

आज बतारीख़ ४ माह नवम्बर सन् १६३१ ई० मेरे दस्तख़त और मुहर अदालत से जारी किया गया

(दस्तख़त जज) रसूलकरीम

मुन्सरिम ऑफ़ मुन्सिफ़ कोर्ट, क़ैसरगञ्ज, बहराइच

विषय-सूची

क्रमाङ्क लेख लेखक पृष्ठ

१—राजस्थान (कविता) [श्री० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय "हरिऔध"] १

२—सम्पादकीय विचार ९

३—पद्मिनी (कविता) [श्री० बालकृष्ण जी थोलम्बिया] ११

४—क्षत्राणी (कहानी) [डॉ० धनीराम प्रेम] १२

५—आर्य-शासन के आदर्श [प्रोफ़ेसर ज्वाला-प्रसाद जी, साहित्याचार्य] २५

६—राजपूताने का शासन [श्री० द्वारकालाल जी गुप्त] ४१

७—राव सीहाजी [श्री० विश्वेश्वरनाथ जी रेऊ] ५१

८—दरोगा अर्थात् गोला [श्री० केसरीसिंह जी बारहठ] ५७

९—महाराणा प्रताप (कविता) [कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी] ६०

१०—विलायती उल्लू [श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०] ६१

११—राजपूतों की उत्पत्ति [डॉक्टर मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]... ... ६९

१२—'आज परताप ज़माने में है चरचा तेरा' (कविता) [श्री० मोतीलाल जी कक्कड़ "ग़ाफ़िल" इलाहाबादी] ७३

स्त्रियों की बुद्धि का चमत्कार

और

कविता का सच्चा आनन्द ग्राम-गीतों में मिलेगा

सोहर (पुत्र-जन्म), जनेऊ, विवाह, जाँत (आटा पीसने की चक्की), निरवाही, हिँडोला, कोल्हू, मेला और बारहमासा सम्बन्धी गीतों का संग्रह 'ग्राम-गीत' नामक पुस्तक में किया गया है। गीतों का सरल और मधुर भाषा में अर्थ भी दे दिया गया है। प्रारंभ में गीतों का बड़ा ही रोचक और खोज-पूर्ण इतिहास है, जो आचार्य द्विवेदीजी के शब्दों में 'अनमोल' है। महात्मा गाँधी, माननीय मालवीयजी, बाबू भगवानदास, स्व० लाला लाजपतराय, कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, युक्तप्रान्त की कौंसिल के प्रेसीडेंट पंडित सीताराम साहब, माडर्न रिविउ के सम्पादक बाबू रामानन्द चटर्जी, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा आदि महोदयों ने मुग्ध होकर इस पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

महात्मा गाँधी की सम्मति

भाई रामनरेशजी,

आप के ग्रामीण गीतों का संग्रह उत्तम लगा। इससे आप के परिश्रम का और राष्ट्रभाषा प्रेम का कुछ नाप मुझको मिलता है। मैं तो चाहता हूँ प्रत्येक हिन्दी भाषा प्रेमी आप के संग्रह का अध्ययन करे। पुस्तक विद्यालयों में स्थान लेने लायक मानता हूँ। आप ने गीतों का अनुवाद दिया है उससे पुस्तक की उपयोगिता अधिक हुई है। आप के प्रयत्न के लिये धन्यवाद।

आपका

मोहनदास गाँधी

पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ७५०; छपाई-सफ़ाई-काग़ज़ बढ़िया; कपड़े की सुवर्णाङ्कित जिल्द; मूल्य केवल तीन रुपये। एक प्रति जल्द मँगाकर अपनी गृहस्थी में सुख की वृद्धि कीजिये।

पता—**हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग**

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
१३	भारत-सरकार और राजपूताने की दो प्रधान रियासतों की सन्धियाँ]		७४
१४	बाँदी (कहानी)	[पं० विष्णुदत्त जी शर्मा]	७८
१५	राजपूताना और भारत-सरकार की नीति	[श्री० नन्दकिशोर जी अग्रवाल]	८२
१६	आह्वान	[श्री० अभिन्नहरि जी, साहित्य-रत्न, सम्पादक 'राजस्थान-सन्देश']	८६
१७	राजपूताना (कविता)	[श्री० श्रीनन्द जी पाण्डेय, बी० ए०]	८९
१८	स्वयंसेविका (कहानी)	[श्री० राजबहादुर जी वर्मा]	९०
१९	राजभक्ति का पाप	[श्री० मोतीलाल जी पहाड़या]	१००
२०	जाग्रत राजस्थान के कतिपय गीत	[श्री० आशासिंह जी]	११२
२१	राजपूत (कहानी)	[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]	११८
२२	लौ बस है लगी आज़ादी से (कविता)	[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]	१२६

प्रतिष्ठाता

डाबर
(डाक्टर एस० के० बर्म्मन)
लिमिटेड
कलकत्ता

स्थापित
ट्रेड SKB मार्क
रजिस्टर्ड
सन् १८८४ ई०

५० वर्षों से भारतीय पेटेण्ट दवाओं के अतुल्य आविष्कारक !

माता का दूध ही मनुष्य की शक्ति है !

और उसकी कमी दुर्बलता !

लाल-शर (Regd.)

[लाल शर्बत]

बच्चे, लड़के व प्रसूती के लिए अमृत-तुल्य पुष्टई है ! माँ के दूध की तरह स्वादिष्ट और शर्बत की तरह मीठा है।

यह दुर्बल बच्चों में शक्ति का सञ्चार करता और प्रसूती की कमज़ोरी को दूर कर उनमें स्वादिष्ट, पुष्टकारक दूध उत्पन्न करता है। मूल्य—प्रति शीशी ।।।-) ; डा० म० ।।=) *नमूने की शीशी =) मात्र।

नोटः—नमूने की शीशी केवल एजेण्टों को ही भेजी जाती है, अतः अपने स्थानीय हमारे एजेण्ट से ख़रीदिए।

इलाहाबाद (चौक) में हमारे एजेण्ट बाबू श्यामकिशोर दूबे।

(विभाग नं० १५) पोस्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ

२३—हाडोती के गिरमिटिया मज़दूर [श्री० कल्याणमल जी बाँठिया, बी० एस्-सी०] १२७

२४—राजपूतों का स्वतन्त्रता-संग्राम [श्री० मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव] ... १३१

२५—दुबे जी की चिट्ठी [श्री० विजयानन्द जी दुबे] १४४

❀ ❀ ❀

रङ्ग-भूमि

२६—वर्ष-प्रवेश १४७

२७—बूँदी, प्राचीन और वर्तमान... ... १४७

२८—विलायती सम्बन्ध १४६

२९—राजपूताना-बोर्ड १५०

३०—आर्थिक सङ्कट १५१

३१—अङ्गरेज़ अफ़सर १५१

❀ ❀ ❀

३२—विश्व-वीणा १५३

३३—गृह-विज्ञान [डॉ० आनन्दस्वरूप शर्मा, श्रीमती विद्यावती रामपायली ; श्रीमती सरलादेवी कुलश्रेष्ठ] १५७

३४—सङ्गीत-सौरभ [शब्दकार—डॉ० धनीराम प्रेम ; स्वरकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)] १५६

३५—साहित्य-संसार [श्री० अवध उपाध्याय ; डॉ० धनीराम प्रेम] १६१

३६—स्वास्थ्य और सौन्दर्य [डॉ० रघुवीरशरण जी अग्रवाल] १६५

३७—बाल-वाटिका [श्रीमती गङ्गादेवी] ... १६७

❀ ❀ ❀

विविध-विषय

३८—नवयुग की वेदना [श्री० बनारसीदास जी कौशिक बी० ए०] १६६

बच्चों का नया साथी

सञ्चालक—रामनरेश त्रिपाठी सम्पादक—सुरेशसिंह

हिन्दी में नई सृष्टि

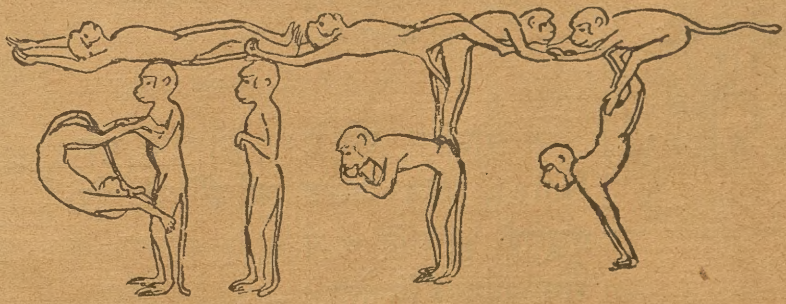

बाल-साहित्य में नवयुग

यह नया साथी "बानर" हर महीने नए-नए रूप धरता, नई-नई कविता-कहानियाँ सुनाता, रङ्ग-विरङ्गे चित्र और गुपचुप कहानियाँ दिखाता, गोरखधन्धे, पहेलियाँ—जो मन को ही नहीं हरते, बच्चों की बुद्धि और कल्पना को भी बढ़ाते हैं, समझाता है। यह स्वास्थ्य, सुन्दरता, सफ़ाई सुरुचि तो सिखाता ही है, बच्चों के जानने योग्य नई-नई बातों का भी भण्डार है।

बच्चों को सिखाने के लिए आधुनिक बाल-मनोविज्ञान के नए-नए ढङ्गों का उपयोग हिन्दी में केवल 'बानर' ही में मिलता है। इसने शिक्षा को रोचक बना दिया है। बच्चों को सदा हँसा-खेला कर नई-नई बातें बताता है। इसलिए अपने प्यारे बच्चों के लिए शीघ्र ही "बानर" मँगाइए। वार्षिक ३) रु०

मैनेजर—बानर, हिन्दी-मन्दिर प्रेस, प्रयाग

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
३९	स्वर्गीय बाबू रामनारायण जी दूगड़	[एक सम्बाददाता]	१७२
४०	क्षत्राणी नीलदेवी	[डॉ० शिवप्रसाद जी शर्मा, एच० एम० बी०, अजगैन]	१७३

❀ ❀ ❀

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
४१	चित्र-परिचय	...	१७५
४२	विज्ञान तथा वैचित्र्य	...	१७७
४३	सिनेमा तथा रङ्गमञ्च	...	१७९
४४	चिट्ठी-पत्री	...	१८३
४५	श्रीजगद्गुरु का फ़तवा	[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष]	१८५
४६	केसर की क्यारी (कविता)	[संग्रहकर्त्ता—कविवर 'बिस्मिल', इलाहाबादी]	१८७
४७	मेवाड़ के प्रति (कविता)	[श्री० सोहनलाल जी द्विवेदी, बी० ए०]	१९०
४८	निद्रित-राजस्थान (कविता)	[श्री० बद्रीलाल जी गुप्त 'सत्यव्रत', विशारद]	१९०
४९	संसार-समाचार	...	१९१
५०	पुरस्कार-प्रतियोगिता	...	१९३
५१	बातचीत	...	१९५
५२	मातृ-मन्दिर के लिए अपील	...	१९७

❀ ❀

चित्र-सूची

१-५ – जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, बूँदी तथा उदयपुर के राजवंश—५ चित्र (तिरङ्गे)

६—विदाई (तिरङ्गा)

७-३६ – भिन्न-भिन्न स्त्री-पुरुषों के चित्र तथा दृश्य सम्बन्धी ३० इकरङ्गे चित्र।

३७-४९—भिन्न-भिन्न विषयों के इकरङ्गे कार्टून—१३ चित्र

❀ ❀ ❀

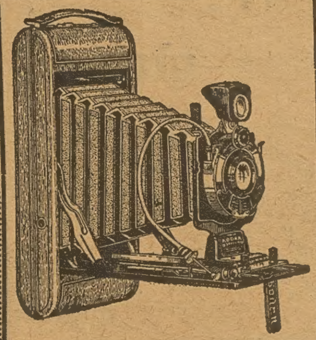

इस प्रतिष्ठित फ़र्म से हम पूर्णतया परिचित हैं और हमारा विश्वास है कि यहाँ से माल मँगाने वालों को कभी शिकायत करने का मौक़ा न मिलेगा।

—सं० "चाँद"

ग्रामोफ़ोन, फ़ोटो का सामान, गृह-सिनेमा, घरेलू जर्मन औषधियाँ, परफ़्यूमरी इत्यादि के थोक तथा खुदरा विक्रेता :—

बी० सराफ़ एण्ड कम्पनी

नं० १५, चितरञ्जन एवेन्यु,

साउथ कलकत्ता

सूचीपत्रों के लिए लिखें

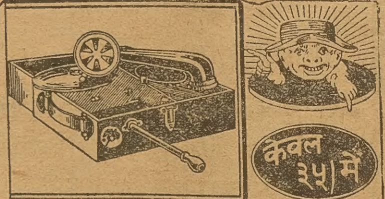

प्रसिद्ध पलार्ड कों का सिंगल स्प्रिंग ग्रामोफोन देते हैं। इसके साथ १ सूईकी वक्स तथा ६ दस इंची हिन्दी रेकार्ड मुफ़्त

B. SHROFF & Co.
15, CHITTARANJAN AVE., S.
CALCUTTA.

बी० सराफ एण्ड कों।
१५, चित्तरंजन एवेन्यु, साउथ
कलकत्ता।

आश्चर्यजनक पाकेट वाच

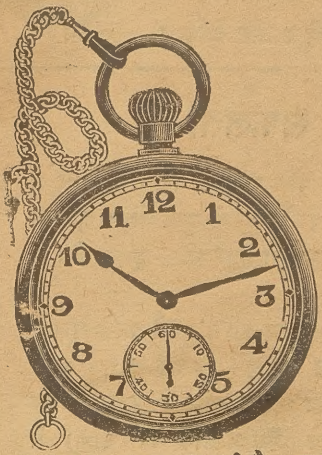

यह लीवर जेबी घड़ी है जिसमें जार प्रूफ़ मूवमेण्ट और कभी न टूटने वाला शीशा है। यह टाइम की सचाई, अनोखी सजावट, बनावट और सुन्दरता में अपना सानी नहीं रखती। गारण्टी १० साल, क़ीमत सिर्फ़ प्रचार के लिए २।) रक्खी गई है। ३ घड़ी एक साथ लेने से डाक-ख़र्च माफ़। ६ लेने से एक वैसी ही घड़ी मुफ़्त।

पता—इण्टर नेशनल कम्पनी,

६२ क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता—सेक्सन (ए-सी)

बिजली का आनन्दी बक्स

फ़्रान्स के वैज्ञानिकों का नया आविष्कार, पति-पत्नी में सच्चा प्रेम और हर्ष उत्पन्न करता है, दाम्पत्य सुख का स्वर्गीय आनन्द देता है, मुर्दा दिलों और शिथिल नाड़ियों में भी जादू की तरह आनन्द और उमङ्ग की लहरें तथा नौजवानी की शक्ति पैदा करता है, इसके विचित्र, अनोखे, कौतुकों का पूर्ण विवरण बक्स के साथ अवश्य मँगावें। एक बार का ख़रीदा आयु भर काम देगा। मूल्य १०)

भृगुसंहिता का गुप्त रहस्य

प्राचीन, चमत्कारी, बृहत्, खण्ड छप गया। इसके द्वारा साधारण हिन्दी का जानने वाला भी बिना कहे क्षणमात्र में हरएक के दिल के गुप्त प्रश्नों तथा भविष्य फल बता, पूरा धन व यश कमा सकता है। अवश्य मँगा त्रिकालज्ञ "भृगुजी" के सत्यता का प्रमाण देखें। ऐसे अनमोल सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य सिर्फ़ ३)।

नोट—दिवाली के उपलक्ष में १ मास के लिए दोनों चीज़ें सिर्फ़ ८) में। इस अपूर्व अवसर से अवश्य लाभ उठावें।

सी० एस० एण्ड ब्रादर्स, महराजगञ्ज, ज़िला सारन

उम्दा माल

ख़रीदना ही सस्ता पड़ता है

ऐसे नाज़ुक वक़्त में आपको फ़्लेक्स के ख़ालिस चमड़े ही के शूज़ पहिनने चाहिए, क्योंकि वह मुद्दत तक चलते हैं और बहुत आराम देने वाले होते हैं, किसी मौसम में उनकी टो और शक्ल नहीं बिगड़ती।

अपने शहर के फ़्लेक्स-एजेण्ट की दूकान पर जाकर फ़्लेक्स शूज़ देखने में आपका कुछ ख़र्च न होगा और वह हमारा एजेण्ट आपको एक बढ़िया किताब देगा, जिसमें कि फ़्लेक्स शूज़ की ख़ूबियाँ बयान की गई हैं।

दाम ६।।) प्रति जोड़े से लेकर

FLEX

FOOTWEAR

हिन्दुस्तान के तमाम शहरों में फ़्लेक्स एजेण्टों के पास एक ही क़ीमत पर फ़्लेक्स शूज़ बिकते हैं।

F. 30

सोने चाँदी के फ़ैन्सी ज़ेवर के लिए

सोनी मोहनलाल जेठाभाई ३२ अरमनी स्ट्रीट, फ़ो० ३१४३, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता से वी व सी केटलॉग ॥) व ।) भेज कर देखिए

सफलता ! सफलता !!

बाबू रामबहालसिंह यादव मु० मुहम्मदपुर, पो० रामगढ़, ज़ि० बनारस से ता० ७ जुलाई, सन् १९३१ को लिखते हैं—"आपकी जड़ी से मुझे बहुत फ़ायदा हुआ, मैं परीक्षा में पास हो गया । मुझे बिल्कुल आशा नहीं थी—दूसरी ग्रेड में पास हुआ ।"

तिब्बत व हिमालय की कन्दराओं में अनेक दिन खोज करते-करते घूमते-फिरते एक बार यह जड़ी एक लामा योगी से प्राप्त हुई है । जिसके धारण करने मात्र से नीचे लिखे सब काम पूरे होते हैं । इसमें सन्देह नहीं । मँगाते समय अपना नाम व काम ज़रूर लिखिए । एक जड़ी का मूल्य ३॥) डा० ख़० ।=) अलग । ३ जड़ी एक साथ मँगाने वाले को ६।=) में मय डाक-ख़र्च के मिलेगा, जिन्हें विश्वास हो वही मँगावें, शपथपूर्वक लिखने से क़ीमत वापिस दी जाती है ।

(१) वशीकरण—के लिए इससे ज़्यादा आज़माई हुई कोई चीज़ संसार में नहीं; स्त्री-पुरुष दोनों के लिए मूल्य ३॥) (२) रोग से छुटकारा—पुराना ख़राब से ख़राब असाध्य कोई भी रोग क्यों न हो, शर्तिया आराम, मूल्य ३॥) (३) मुक़द्दमा—चाहे जैसा पेचीदा से पेचीदा हो; मगर इससे शर्तिया जीत होगी, मूल्य ३॥) (४) रोज़गार—तिजारत में लाभ न होता हो, हमेशा घाटा होता हो, उनका रोज़गार चलेगा, लाभ होगा, मूल्य ३॥) (५) नौकरी—जिनकी नौकरी नहीं लगती हो, बेकार बैठे हों या हैसियत की नौकरी न मिलती हो, ज़रूर मिलेगी, मू० ३॥) (६) परीक्षा—प्रमोशन में इससे ज़रूर कामयाबी मिलेगी, विद्यार्थी और नौकर-पेशा ज़रूर आज़माइश करें, मूल्य ३॥) (७) शत्रु-विजय—दुश्मन सख़्त से सख़्त क्यों न हो, उसके ऊपर एक बार विजय ज़रूर मिलेगी, मूल्य ३॥) (८) तन्दुरुस्ती के लिए यह अपूर्व है, थोड़े ही समय में स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव पड़ता है, मू० ३॥) रु०

पता—विजय लौज, पोस्ट सलकिया, सेक्सन डी०, हावड़ा (बङ्गाल)

मुफ़्त ३६५ सफ़ा वाली सन् १९३२ की सुन्दर डायरी सिर्फ़ ।) चार आना का टिकट भेज कर मुफ़्त मँगाइए ।

राजवैद्य नारायणजी केसवजी

१७७, हैरिसन रोड, कलकत्ता

क्या आपकी आँख दुखती हैं

या और किसी क़िस्म की बीमारी है, तो कृपया हमें लिखिए । आपकी कुल शिकायत दूर हो जाएँगी । अगर झूठा हो तो दाम वापस, मूल्य केवल लागत मात्र १॥) डा० ख़र्च ॥) अलग ।

पता—बजरङ्ग ऐण्ड कं०, २८६ अहियापुर, इलाहाबाद ।

मुफ़्त ! मुफ़्त !

आरोग्य, दौलत और शान्ति का रास्ता बताने वाली "वैद्यविद्या" मुफ़्त मँगाइए !

मदन मञ्जरी फ़ारमेसी

जामनगर (काठियावाड़)

हिमालय की बूटियों द्वारा

Anti Pyorrhea

एण्टी पायोरिया

दाँत, दाढ़, मसूड़े के सब रोगों की एक हुक्मी दवा क़ी० ॥); गुण न हो तो दाम वापिस । नमूना मुफ़्त डाक ख़र्च ।) का टिकट भेजो ।

श्री० विश्वम्भर औषधालय, जबलपुर (सी०पी०)

आगामी अंक की कुछ विशेषताएँ

कुछ नई रचनाएँ—

वे और हम—सम्पादकीय

आघात (कहानी)—डॉक्टर प्रेम

विस्मय (कविता)—पं० रामचरित उपाध्याय

ईश्वरवाद—श्री० हज़ारीलाल मिश्र

विधवा-विवाह—श्री० शीतला प्रसाद सक्सेना, एम० ए०

फ़ीजी के आदि निवासी—श्री० शङ्करप्रताप, फ़ीजी

हमारा समाज (कहानी)—श्री० यदुनन्दन प्रसाद श्रीवास्तव

हिन्दी साहित्य और मुसलमान कवि—श्री० वशिष्ठ, एम० ए०

हमारे मौलिक तथा विख्यात स्तम्भ—

१—विविध समाचार	२—रङ्गभूमि	३—विश्व-वीणा
४—साहित्य-संसार	५—दुबे जी की चिट्ठी	६—स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य
७—विज्ञान तथा वैचित्र्य	८—सङ्गीत सौरभ	९—गृह-विज्ञान
१०—बाल-वाटिका	११—सिनेमा तथा रङ्गमञ्च	१२—चिट्ठी-पत्री
१३—मनोरञ्जन	१४—संसार-समाचार	१५—मनोरञ्जक मुक़दमे
१६—केसर की क्यारी	१७—बातचीत	१८—श्री जगद्गुरु का फ़तवा

तिरङ्गे, रङ्गीन तथा सादे चित्र एवं कार्टून आदि-आदि।

पुरस्कार-प्रतियोगिता—

एक शब्द-निर्माण पहेली इस अङ्क में निकलेगी, जिसके सही उत्तरदाता को २५) नक़द दिए जायँगे।

हमारा दावा है कि इतनी अच्छी सामग्री आपको हिन्दी के किसी मासिक पत्र में नहीं मिलेगी। यदि आप हमारी बात से सहमत हैं तो आज ही 'चाँद' के ग्राहक बन जाइए।

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

विदाई

चित्रकार :—श्री० दशरथ लाल जी]

[राजपूत चित्रकला का एक अनुपम नमूना

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस
पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे
विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष १०, खण्ड १ | नवम्बर, १९३१ | सं० १, पूर्ण सं० १०६

राजस्थान

[कवि-सम्राट पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय, 'हरिऔध']

जहाँ वीरता मूर्तिमन्त हो हरती थी भूतल का भार।
जहाँ धीरता हो पाती थी धर्म-धुरीण-कण्ठ का हार।
जहाँ जाति-हित बलि-वेदी पर सदा वीर होते बलिदान।
जहाँ देश का प्रेम बना था सुरपुर का सुखमय-सोपान।

जिस अवनी के बाल-वृन्द ने काटे बलवानों के कान।
चमकीं जहाँ वीर-बालाएँ रण-भू में करवाल समान।
किए जहाँ के नृप-कुल-मण्डन ने कितने लोकोत्तर काम।
जिस लीलामय रङ्ग-अवनि में उपजे नाना लोक-ललाम।

वहाँ आज क्यों सुन पड़ता है कलह-कण्ठ का प्रबल-निनाद ।
है बन रहा वहाँ पर प्रतिदिन क्यों प्रपंचियों का प्रासाद ।
क्यों कायरता थिरक रही है गा-गा कर विलासिता गान ।
क्यों गारव है गौरव बनता कर मदान्धता-मधु का पान ।

जिसके एक-एक रज-कण पर लगी राजपूती की छाप ।
जिसका वातावरण समझता रण में पीठ दिखाना पाप ।
जिसके पत्ते मर्मर रव कर रहे पढ़ाते प्रभुता-पाठ ।
जिसके जीवन-सञ्चारण से हरित हुआ था उकठा काठ ।

अहह, आज किस लिए बन गया वह निर्जीवों का शिरमौर !
गरल वमन करता है क्यों वह, सुधा-भरित था जिसका कौर !
सुने धर्म का नाम हृदय में उसके क्यों होती है दाह ।
उसके घर में बड़े वेग से होता है क्यों मद्य-प्रवाह ॥

उठा-उठा कर अपने शिर को व्यथित अर्वली बारम्बार ।
अवलोकन करता है घिरता प्रिय प्रदेश में तिमिर अपार ॥
कभी विविध निर्झर मिस उसके दृग से बहती है जलधार ।
कभी धरा में धँस जाता है वह विलोक कर अत्याचार ॥

परम सरसता सहित प्रवाहित सरस्वती का पीकर आप ।
दूर किया था मरु अवनी ने अपने अन्तर का बहु ताप ।
किन्तु आज निज मातृभूमि की अति दयनीय दशा अवलोक ।
प्रतिपल प्रतपित हो जाती है शोकित बन जाता है ओक ।

दूर खड़ा चित्तौड़ दुर्ग भी दिन-दिन होती दुर्गति देख ।
चिन्तित हो-हो कर पढ़ता है निज कुण्ठित कपाल का लेख ।
पुष्कर सलिल लहरियों के मिस बार-बार बन कर बहु लोल ।
विदित व्यथा अपनी करता है, किन्तु नहीं मुख सकता खोल !

उत्साहित प्रतिपल करते हैं किसी शक्ति के कुछ सङ्केत ।
सुन पड़ती है अति अपूर्व ध्वनि क्यों हो जाता नहीं सचेत ।
किसी देव की दिव्य ज्योतियाँ हैं तम में कर रहीं प्रवेश ।
मानस के शुचि भाव मुकुर में प्रतिबिम्बित है नव आदेश ।

जाग, जाग, तू बहुत सो चुका अब तो अपने बल को तोल ।
तिमिर टल चला, सूरज निकला, खोल-खोल आँखों को खोल ।
भारत-माता मुग्ध खड़ी है जन-जन मन है आशावान ।
भारत तेरा वदन देखता है आकुल बन राजस्थान !

चाँद

नवम्बर, १९३१

वर्तमान राजपूताना

"राजस्थान में कोई छोटा-सा राज्य भी ऐसा नहीं है, जिसमें थर्मोपली जैसी रणभूमि न हो और शायद ही कोई ऐसा नगर मिले, जहाँ लियोनिडास जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो।"

—जेम्स टॉड

राजपूताना वीर भूमि है। निरन्तर १००० वर्ष तक इसमें क्षत्रियों की अप्रतिम वीरता और क्षत्राणियों का अतुल आत्मोत्सर्ग, आश्चर्य-कारिणी स्वामि-भक्ति और रोमाञ्चकारी स्वाभिमान, जीवन-सञ्चारिणी तलवार की झनकार और पौरुष-प्रवाहिनी वीरों की ललकार के दृश्य दिखाई दिए थे। महाराणा प्रताप का दुर्दम्य साहस, पन्ना धाय का लोम-हर्षण बलिदान, पद्मिनी का कम्पनकारी जौहर, जैमल और फत्ता का जात्याभिमान, भामासाह की राज्य-सेवा, चूँड़ा की राजभक्ति, रामसिंह का प्रजा-प्रेम, रावरतन की न्याय-प्रियता, संग्रामसिंह और जयसिंह का युद्ध-कौशल और अनेक वीर एवं वीराङ्गनाओं की गौरव-कथाएँ आज किस को याद नहीं हैं? भारत का प्रत्येक बालक महाराणा प्रताप का नाम गौरव के साथ स्मरण करता है और भारत की प्रत्येक बालिका महाराणी पद्मिनी के बलिदान की स्मृति को एक पुण्य-निधि समझती है। मेवाड़ की भूमि एक त्यागभूमि है। चित्तौड़ के घरों की दुःखकथा हम लोग रोते हुए भी बार-बार पढ़ते हैं। पद्मिनी के उजड़े हुए महल, वीर महाराणा कुम्भ का कीर्ति-स्तम्भ, हल्दीघाटी का युद्धस्थल, चेतक का चबूतरा, रणथम्भोर का दुर्ग, नहीं राजपूताने का प्रत्येक कङ्कर उस गौरवान्वित अतीत का मूक स्मारक है।

आठवीं शताब्दी से आज तक राजपूताने पर हिन्दुओं का अक्षुण्ण राज्य बना हुआ है। कभी यहाँ के शासक नितान्त स्वतन्त्र थे, फिर पठानों ने और तदनन्तर मुग़लों ने इनको दबाया, पारस्परिक फूट डाल कर भाई से भाई को कटवाया, अत्यन्त लज्जाजनक सन्धियाँ करवाईं और कई रियासतों को मटियामेट किया। इस प्रकार मुसलमानों की प्रलयकारिणी विजय-बाढ़ के विनाशकारी प्रवाह को भी राजपूताने के नरेश सह गए। पठान और मुग़लों का अन्त हो गया और राजपूत रियासतें वैसी ही बनी रहीं। अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना ने महाराणा प्रताप की उदारता पर मुग्ध होकर जो लिखा था कि—

"भ्रम रहसी रहसी धरा, खिस जासी खुरसाण।
अमर विसम्भर आपरे, निहचै रहसी राण॥"

सो सत्य हो गया। आज अलाउद्दीन ख़िलजी और अकबर के वंशधर यदि इस भूतल पर जीवित होंगे, तो कहीं एक कोने में अपना जीवन बिता रहे होंगे। संसार को उनका पता नहीं और कीर्ति-आकाश में उन की प्रभा नहीं, लेकिन बप्पा रावल की सन्तानें आज भी उसके सिंहासन पर वर्तमान हैं। संसार के इतिहास में मेवाड़ के राज-वंश से अधिक प्राचीन राजघराना ढूँढ़े से भी शायद ही मिले। इस समय भी महाराणा भीमसिंह, कविवर इक़बाल के शब्दों में, कह सकते हैं कि "कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, बरसों रहा है दुश्मन दौरे ज़माँ हमारा।" लम्बी बात कहने से क्या मतलब, मुसलमान अतीत के गहन गह्वर में विलीन हो गए और राजपूताना के नरेश शान्ति के साथ साँस लेने भी न पाए थे कि मराठाओं ने तूफ़ान उठाया और कई शताब्दियों के निरन्तर स्वातन्त्र्य-संग्राम से थके हुए या परतन्त्रता की भारी बेड़ियों में जकड़े हुए राजपूत शासकों को धर दबाया। लेकिन, यह भी एक तूफ़ान का बादल था, जो आया, कड़का और अन्तर्हित हो गया। परन्तु क्या राजपूताना को शान्ति-लाभ हुआ? नहीं, सुदूर पश्चिम से वाणिज्य के बहाने से भारत में घुस कर कूटनीति द्वारा विजय-विस्तार बढ़ाने वाली, छल-बल और कौशल निष्णात एक गौराङ्ग जाति ने उसको फिर जकड़ लिया। रणाङ्गण में लड़ कर नहीं, परन्तु राजनीति की कूट विधि से। अब की पारतन्त्र्य-बेड़ियाँ, ख़ास फ़ैक्टरी में निपुण एञ्जिनियरों द्वारा गढ़ी गईं और बड़ी निपुणता के साथ उनको जकड़ा गया। एञ्जिनियर लोगों ने इन फ़ौलाद की बेड़ियों के ऊपर सोने और चाँदी का ऐसा मनोहर मुलम्मा चढ़ाया और कर्नल टॉड तथा लॉर्ड हेस्टिंग्ज़ ने इस प्रकार लुभा-लुभा कर उनको पहनाया कि अलङ्कार-प्रिय नरेशों ने हँस-हँस कर ज़ेवर समझ कर ये बेड़ियाँ पहन लीं। मुलम्मा टिकाऊ नहीं था। बहुत जल्द उड़ गया। पर होना क्या?

अब देश के अन्दर स्वतन्त्रता की लहर उमड़ी है। बालक और बालिकाओं के मुख से स्वतन्त्र भारत की प्यारी तानें निकलने लगी हैं। युवक और युवतियाँ, माता और पुत्र, बहिन और भाई, साथ-साथ हँस-हँसकर स्वाधीनता की बलिवेदी पर चढ़ने जा रहे हैं। यह विचार-धारा, यह स्वातन्त्र्याभिलाषा, यह बलिदान-प्रेरणा, यह प्रकाश, यह जागृति, यह नई उमङ्ग क्या राजपूताने की सीमा के बाहर रह सकती थी? नहीं—

'सोए पड़े थे कुलबुलाने लगे हैं'

काल-चक्र घूमेगा और काल-प्रवाह भी बना रहेगा, फिर रहीम की वह सुन्दर उक्ति चरितार्थ होगी कि—

"भ्रम-रहसी रहसी धरा, खिस जासी खुरसाण।
अमर विसम्भर आपरे, निहचै रहसी राण॥"

ज़माने के बहुत हेर-फेर हुए, किन्तु राजपूतों का राज्य पिछले १,००० वर्षों से इस प्रदेश पर बना हुआ है। राजपूताने की आन्तरिक अवस्था से अपरिचित लोग यदि यह अनुमान करें कि हिन्दुओं की निरन्तर सत्ता के कारण इस प्रान्त में श्रौत और स्मार्त धर्म की परम्परा, आर्य सभ्यता के उच्च आदर्श, संस्कृत साहित्य की सुन्दर श्रृङ्खला, आर्य परिवार का मनोहर सङ्गठन, हिन्दू राज-तन्त्र की चित्ताकर्षक राज्य-पद्धति, और राजा तथा प्रजा का पारस्परिक प्रेम-सम्बन्ध सुरक्षित होंगे तो यह अनुमान अनुचित नहीं कहा जा सकता। परन्तु अनेक सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक कारणों से राज-पूताना न कभी हिन्दू-सभ्यता का केन्द्र रहा, न यहाँ पर अनेक सुन्दर आर्य आदर्शों की पूजा हुई और न कालचक्र ने जिन इने-गिने आदर्शों की यहाँ पूजा होती थी, उनकी रक्षा होने दी।

भूगर्भ-वेत्ताओं का मत है कि जिस समय पञ्जाब में ऋग्वैदिक सभ्यता का पूर्ण विकास हो चुका था, उस समय राजपूताने की सम्पूर्ण भूमि एक गहन समुद्र का तल थी। आर्य-सभ्यता का प्रसार पञ्जाब से पूर्व की ओर हुआ। ब्रह्मर्षि देश, ब्रह्मावर्त देश, मध्य देश, मत्स्य देश और मगध देश उत्तरोत्तर आर्य संस्कृति के केन्द्र बने। यहीं पर उपनिषद् और दर्शनों का विकाश हुआ, यहीं कालिदास ने अपने अमर नाटक लिखे और यहीं भास्कराचार्य आदि विद्वानों ने गणित ग्रन्थों की रचना की। यहाँ के राजा चक्रवर्ती राजा बने, यहाँ का धर्म देश के लिए आदर्श धर्म बना और यहीं का साहित्य देश का साहित्य कहलाने लगा। यहीं के लिए मनु ने कहा कि—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वे मानवाः ॥

जब अन्तर्राष्ट्रीय कारणों से प्रेरित होकर मध्य एशिया की आक्रमणकारी जातियों के टीड़ी-दल भारत में घुसने लगे और उनकी प्रलय-बाढ़ में भारतवर्ष के सम्राट् डुबकियाँ खाने लगे, तब राजपूताने की चेती। इससे हज़ारों वर्ष पूर्व राजपूताने का समुद्र सूख गया था और उसके स्थान में रेतीला मैदान और अरावली का पर्वत प्रगट हो चुके थे। परन्तु इस ऊसर भूमि में कौन आकर बसता? जङ्गली जातियों के आक्रमणों से तङ्ग आकर या तो मध्यप्रदेश के शासक और उनकी प्रजा इस ऊसर भूमि में निर्विघ्न समय काटने के लिए बसने लगी होगी या नई जङ्गली जातियों ने यहाँ अपना राज्य स्थापित करके इस निर्जन प्रान्त को आबाद किया होगा। इतिहास के पण्डितों का इस विषय में गहरा मतभेद है। कुछ विद्वान कहते हैं कि वर्तमान राजपूत वैदिककालीन आर्य क्षत्रियों के वंशधर हैं और कुछ विद्वानों का कहना है कि नहीं, राजपूत लोग शक, सिथियन, हूण और ग़ज़र जातियों की सन्तानें हैं। यहाँ हम इस प्रसङ्ग को छेड़ना नहीं चाहते। चाहे राजपूत लोग वेदकालीन आर्य क्षत्रियों के वंशधर हों, या बाहर से आई हुई जङ्गली जातियों की सन्तान, यह निर्विवाद है कि वर्तमान राजपूत रियासतों का आरम्भ आठवीं शताब्दी के पश्चात् हुआ है। इस अवस्था में यहाँ पर धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक हिन्दू परम्पराएँ कैसे सुरक्षित रह सकती थीं? यदि वर्तमान राजपूत शक, सीथियन और हूणों की सन्तान हैं, तब तो आर्य-परम्पराओं का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता। इन लोगों ने भारत में बस जाने के पश्चात् हिन्दू धर्म अवश्य स्वीकार कर लिया होगा और प्राचीन आर्य आदर्शों का अनुकरण करने का भी प्रयत्न किया होगा। परन्तु फिर भी इन लोगों की क्रमानुगत सभ्यता, प्राचीन रूढ़ियाँ और परम्परागत विचार कहाँ जा सकते थे? विद्वानों का मत है कि राजपूत जाति में ऐसी अनेक प्रथाएँ अब भी प्रचलित हैं, जो उनके विदेशी होने का प्रबल प्रमाण हैं। कर्नल टॉड का कहना है कि "अश्व-पूजन, मद्य-पान और सती-प्रथा शकों में बहुत प्रचलित थे।" ये प्रथाएँ राजपूताने में अब भी बहुत प्रचलित हैं। केवल सती-प्रथा ब्रिटिश-सरकार के दबाव से बन्द हो पाई है। यदि वर्तमान राजपूत वास्तव में विदेशियों के वंशधर हैं, तो राजपूताने की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रथाएँ साङ्कर प्रथाएँ हैं और केवल १,२०० वर्ष पुरानी हैं। यदि यह माना जाय कि वर्तमान राजपूत वैदिक कालीन आर्य क्षत्रियों की सन्तानें हैं, तो यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि यवनों के आक्रमणों से प्राण बचाने के लिए राजपूत लोग इस ऊजड़ भूमि में आकर बसे होंगे। इस प्रकार विपत्ति-काल में अपने राज्य को छोड़ कर जो लोग भागे, उनके साथ सारा देश तो आ ही नहीं सकता था। उनके कुछ सैनिक, कुछ नौकर, कुछ राज-भक्त कृषक और व्योपारी आदि ने दूसरे प्रान्त में बसना स्वीकार किया होगा, लेकिन फिर भी इन लोगों को राजपूताने की ऐसी जनता में आकर बसना पड़ा होगा, जो आर्य सभ्यता के केन्द्रों से बहुत दूर थी। जहाँ न उपनिषदों का माहात्म्य था न दर्शनों की चर्चा, न श्रौत्र धर्म का प्रचार था न कर्म-काण्ड की प्रधानता। ऐसी परिस्थिति के कारण वैदिक धर्म की मौलिकता, आर्य-संस्कृति की निर्मलता और आर्य आदर्शों की परम्परा सुरक्षित नहीं रह सकती थी। दो प्रकार की सभ्यताओं के सम्पर्क से एक नवीन साङ्कर-सभ्यता का उद्भव हुआ होगा, यह अनुमान ऐतिहासिक दृष्टि से निराधार नहीं है। इस नवीन सभ्यता में आर्य-सभ्यता का प्राधान्य अवश्य होगा, लेकिन एक नीची श्रेणी की सभ्यता के सम्पर्क के कारण इसकी उज्ज्वलता अवश्य नष्ट हो गई होगी। यही कारण है कि वर्तमान राजपूतों के इतिहास के स्वर्णयुग में भी, अर्थात् बारहवीं शताब्दी से पूर्व भी, राजपूताने में उच्च आर्य-आदर्शों का प्राधान्य नहीं था। नरेश शूरवीर थे, पराक्रमी और पुरुषार्थी थे, लेकिन प्रजाहित-चिन्तन, कर्तव्य-पालन, प्रजा-वात्सल्य उनमें विरलों ही के गुण थे। स्त्रियाँ पतिव्रता, वीर पत्नियाँ और वीर माताएँ थीं; परन्तु उनमें गार्गी, सरस्वती और मैत्रेयी नहीं मिलतीं। एक ओर धर्म और स्वाभिमान की रक्षा के निमित्त लोमहर्षण और वीभत्समय जौहर के दृश्य थे और दूसरी ओर सैकड़ों युवतियों से परिपूर्ण अन्तःपुर। सीताएँ अनेक थीं, पर राम का पता नहीं था।

'राजा प्रकृतिरञ्जनात्' और 'स्वभागभृत्या दास्यत्वे प्रजानांच नृपः कृतः' ये पुरातन राजनैतिक आदर्श या

तो राजपूताने में लेकर ही नहीं आए, या नवीन परिस्थिति के कारण इनका लोप होगया। राजपूत लोगों का एक मात्र धर्म रह गया रण-क्षेत्र में कटकर मर जाना। केसरिया बाना पहन कर 'हर हर महादेव' का रण-नाद करते हुए राजपूत लोग समर-भूमि में प्रवेश करते थे। विजय या पराजय की भी उनको चिन्ता न थी। चिन्ता थी केवल इस बात की कि शत्रु उनकी पीठ न देख ले और पराजित होकर वे रण से वापिस न लौटें। वीर पत्नियाँ और वीर माताएँ इन सूरमाओं को अपने हाथों से शस्त्रास्त्रों द्वारा सुसज्जित करके समरभूमि के लिए बिदा करती थीं और जो रण-क्षेत्र छोड़ कर वापिस लौटते थे, उनका अपनी पत्नियों द्वारा ही बड़ा अपमान होता था। जिस समय फ़तेहाबाद की लड़ाई में से जोधपुर-नरेश महाराजा जसवन्त सिंह दारा शिकोह की ग़लती के कारण हार कर अपनी राजधानी को लौटे, तो उनकी महाराणी ने शहर के दरवाज़े बन्द करवा दिए थे, यह कह कर कि 'युद्ध से हार कर लौटने वाला मेरा पति नहीं हो सकता। यह किसी आततायी की सेना है, इसको शहर में मत घुसने दो।' राजपूत योद्धा जान बूझ कर ऐसे मोरचों पर लड़ते थे, जहाँ मृत्यु अवश्यम्भावी हो। उनको मृत्यु से जीवन का सा प्यार था। मृत्यु को आलिङ्गन करना, काल का अभिनन्दन करना राजपूतों का परम धर्म बन गया था। युद्ध करना और शत्रु को पीठ न दिखाना क्षत्रियों का पुरातन धर्म था ज़रूर, परन्तु उसी अवस्था में जब युद्ध धर्म की रक्षा के लिए या आततायियों का बध करने के लिए हो। केवल युद्ध के लिए युद्ध क्षात्र-धर्म की परम्परा नहीं थी।

वैदिक काल में राजा निर्वाचित होता था, सभा तथा समिति की इच्छानुकूल राज्य-शासन करता था। जब राज-पद वंश-क्रमानुगत होगया, तब भी राजा को परम्परागत धर्म अर्थात् क़ानून का पालन करना पड़ता था। क़ानून बनाना प्राचीन भारत में राजा का अधिकार नहीं था, यह परम्परागत था और राजा और प्रजा दोनों से ऊपर माना जाता था। उस समय समाज के प्रत्येक अङ्ग पर और प्रत्येक कार्य पर राज-शासन होता ही नहीं था। क़ानून या धर्म राज-धर्म, देश-धर्म, जाति-धर्म, कुल-धर्म, गण-धर्म आदि में विभक्त था। इनमें केवल राज-धर्म ही राजा के अधिकार में था। इसका भी निर्माण नहीं, केवल सञ्चालन उसका कार्य था। राजपूताने के नरेशों में यह धर्म-परम्परा मध्य काल में ही क्या, आदि काल में भी बहुत कम थी। अब नहीं, आरम्भ में भी राज्य निज भुजोपार्जित सम्पत्ति माना जाता था। इसमें सन्देह नहीं कि अनेक नरेश बड़े न्यायी, प्रजावत्सल और कर्तव्य-परायण हुए, लेकिन अधिकांश नरेशों का ध्यान इस ओर नहीं था। विजय और वीरता यही उनके मूल मन्त्र थे, यही उनके जीवन का ध्येय था।

स्त्रियों का बड़ा आदर था। उनके मान की रक्षा के लिए बात की बात में तलवारें खिंच जाती थीं। इस सम्मान में पुरुषों का सम्मान भी सम्मिलित था। स्त्रियों का इसलिए आदर नहीं था कि वे आदरणीय हैं, परन्तु इसलिए था कि उनके अनादर से उनके पति, पुत्र पिता तथा कुल का अनादर होता था। प्राचीन रोम में गुलामों के स्वामी स्वयं तो अपने दासों पर मनमाना अत्याचार करते थे, परन्तु उन पर दूसरों का अत्याचार वे सहन नहीं कर सकते थे। दास ही क्या, सत्ताधारी लोग दूसरों के द्वारा अपने कुत्तों का भी अपमान सहन नहीं कर सकते। ऐसे ही विचारों से प्रेरित होकर राजपूत लोग अपनी स्त्रियों की इज़्ज़त बचाने में कट-मर जाने को तैयार हो जाते थे। स्त्रियाँ ही क्या, अपने घोड़ों की रक्षा के लिए भी युद्ध ठन जाया करते थे। मेवाड़ में जब महाराणा एक कृत्रिम बूँदी-दुर्ग को विजय करके अपने मन को शान्त करना चाहते थे, तो उस खिलौने की रक्षा के लिए कई हाड़ा राजपूत धराशायी हो गए थे। वास्तव में ये युद्ध अपनी आन की रक्षा के लिए हुआ करते थे। राजपूतों को न धर्म की परवाह थी, न स्त्रियों की चिन्ता। मुसलमानों के आक्रमण से पहले भी राजपूतों में बहु-विवाह की प्रथा बहुत प्रचलित थी। इनके अन्तःपुर अनेक युवतियों से भरे रहते थे। इनमें कई विवाहित पत्नियाँ होती थीं, कई उपपत्नियाँ, कई रखेलें, कई पातुरियाँ और कितनी ही दासियाँ। ऐसी अवस्था में कहाँ एक पत्नीव्रत, कहाँ पत्नी-प्रेम और कहाँ महिला-सम्मान! स्त्रियाँ केवल भोग की वस्तुएँ थीं।

मुसलमानों के आक्रमण हुए और शनैः-शनैः सब राजपूत नरेशों ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। बाक़ी रह गया केवल एक मेवाड़ का घराना। वहाँ के

नरेशों ने निरन्तर आपदाएँ झेलते हुए भी अपनी आन की रक्षा की। परन्तु अन्य राजपूतों ने दुःखमय स्वातन्त्र्य के बजाय ऐश्वर्ययुक्त पारतन्त्र्य को अच्छा समझा। सूरजवंशी और चन्द्रवंशी राजपूत लोग दिल्ली के दीवानेआम और दीवानेख़ास में मुग़ल सम्राटों के सामने थरथराते हुए घण्टों तक खड़े रहने लगे। मुसलमान बादशाहों की सेनाओं में उच्च पद स्वीकार करके अपने ही भाइयों का रक्त बहाने लगे। जयपुर के वीर महाराजा मानसिंह स्वतन्त्रता के उपासक महाराणा प्रताप के विरुद्ध लड़े और उन्होंने ही चित्तौड़ का विध्वंस करवाया। फ़तेहाबाद की लड़ाई में और जाजू के युद्ध में राजपूतों से राजपूत लड़ कर हज़ारों कट मरे। महाराजा जयसिंह ने महाराष्ट्र को तहस नहस कर दिया और हिन्दू-धर्म और हिन्दू-मान के रक्षक महाराज शिवाजी को जब वह पकड़ कर आगरे लाया तो अपने को धन्य मानने लगा। बात की बात में उदयपुर बूँदी से, बूँदी कोटा से, कोटा जयपुर से, जयपुर भरतपुर से, जोधपुर जयपुर से लड़े और इन व्यर्थ के संग्रामों में हज़ारों वीर योद्धाओं ने प्राण गँवाए।

मुसलमानों की अधीनता का राजपूतों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इनके सम्पर्क से पहले राजपूतों की शासन-पद्धति क्या थी, इसका हमें ठीक पता नहीं चलता। परन्तु मुग़लकाल में सब राजपूत रियासतों ने मुग़ल शासन-पद्धति का अनुसरण किया इनकी सेना का सङ्गठन, जागीर प्रथा, मालगुज़ारी और तात्कालिक न्याय सब मुसलमानों से मिलता-जुलता था। इस समय भी अधिकांश रियासतों का शासन मुग़ल-शैली पर होता है। बख्शीख़ाना, पालकीख़ाना, दरीख़ाना, महकमा ख़ास, रोबकार, शुतुरख़ाना, पीलख़ाना, ख़वास आदि शब्द इसके प्रमाण हैं। इस समय रियासतों में जो दरबार लगते हैं और राजा लोग हाथियों की तथा शेरों की लड़ाई देख कर मनोविनोद करते हैं तथा गनगोर आदि त्योहारों पर केवल स्त्रियों का मेला करवा कर उसमें स्वयं विचरण करते हैं, यह मुग़ल संस्थाओं का अनुसरण है। रियासतों के प्रबन्ध सम्बन्धी जितने शब्द हैं, सब फ़ारसी के हैं।

मुग़लों के सम्पर्क और राज्य का प्रभाव राजपूतों की शासन-प्रणाली पर ही नहीं, बल्कि उनकी सभ्यता के प्रत्येक अङ्ग पर पड़ा। इनके अन्तःपुर और भी अधिक विलासिता, कलह, द्वेष, अत्याचार और नृशंसता के लीलास्थल बन गए। स्त्रियों का सम्मान जो कुछ था, वह भी जाता रहा। अधिकांश राजपूतों ने मर कटने के बजाय अपनी लड़कियाँ भेंट-स्वरूप देना स्वीकार किया। जयपुर, जोधपुर और बीकानेर जैसे सत्ताधारी महाराजाओं ने मुग़लों को अपनी लड़कियाँ देकर अपने वैभव की और अपने प्राणों की रक्षा की। इन घटनाओं को ध्यान में रखते हुए कौन कह सकता है कि राजपूत लोग स्त्रियों का आदर करते थे। उनके अन्तःपुर में हज़ारों नवयुवतियाँ दासता की श्रृङ्खला में जकड़ी हुई दुर्भाग्य की लू से अपने यौवन-कुसुम को सुखाती थीं। बात की बात पर उनको कालकोठरियों में बन्द कर दिया जाता था, जहाँ वायु और रोशनी का प्रवेश भी कठिनता से हो सकता था। इन कोठरियों में उनको अत्यन्त भारी चक्की से कितने ही सेर आटा नित्य पीसना पड़ता था। उनके पैरों में बेड़ियाँ होती थीं और उनको प्रायः कट्ठे में भी ठोक दिया जाता था। कितनी ही युवती दासियों के हाथ-पैर कटवा देना, आँख फोड़ देना, कान या नाक काट देना, यहाँ तक कि सिर भी काट देना मामूली बात थी। आमेर के महलों में लेखक ने स्वयं दासियों का बन्दीगृह देखा है, जिसमें अब तक लगभग डेढ़ मन वज़न की चक्की रखी है, जिसके द्वारा राजाओं और महारानियों की कोप-भाजन दासियों से आटा पिसवाया जाता था। लेखक के एक वृद्ध मित्र ने बूँदी राज्य में एक ऐसी दासी देखी है, जिसकी आँखें एक वीर क्षत्राणी ने फोड़ डाली थीं। पास ही के राज्य में एक ऐसी दासी अभी दस साल पूर्व तक जीवित थी, जिसके दोनों हाथ एक क्षत्री सूरमा ने काट डाले थे। मृत राजपूतों की लाशों के साथ सैकड़ों नवयुवतियों को बर्छी और भालों की अणियों से विवश और त्रस्त करके अग्नि में जलाया जाता था। यह था स्त्रियों का आदर! सन्तोष और आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे समय में भी राजपूतों के अन्तःपुर सती, साध्वी, वीर देवियों से अलङ्कृत थे। इन्हीं देवियों ने वास्तव में राजपूतों के गौरव की रक्षा की थी। यही देवियाँ अपने कुल की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए हँसती-हँसती धधकती हुई अग्नि-ज्वालाओं का आलिङ्गन करती थीं। पद्मिनी

और कृष्णाकुमारी का पवित्र नाम इतिहास के पृष्ठों का भूषण है। लेकिन मानसिंह और उनके साथियों को हम क्या कहें, जिन्होंने अपनी बहिन और बेटियों को अपने हाथों से मुग़लों के सुपुर्द कर दिया। धन्य थीं वे देवियाँ, जिन्होंने अपने प्राणों का उत्सर्ग करके अपने कुल की प्रतिष्ठा को बचाया! परन्तु किन शब्दों में सम्बोधन करें उनको, जिन्होंने अपने नश्वर वैभव और विलास की रक्षा के लिए अपनी बहिनों और बेटियों को गौ-भक्षक यवनों की दासियाँ बना दिया। ये पंक्तियाँ हम स्याही से नहीं, किन्तु आँसुओं से लिख रहे हैं। हम हृदय से चाहते हैं कि इतिहास इन दुखद स्मृतियों को चिराङ्कित नहीं करता।

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट हो गया होगा कि राजपूताने में जिन आर्य आदर्शों की आशा की जा सकती है, क्यों नहीं मिलते। वर्तमान राजपूताना वास्तव में संसार के किसी सभ्य देश में परिगणित नहीं हो सकता। यहाँ शिक्षा का प्रायः अभाव है। जन-जागृति का केवल आरम्भ मात्र हुआ है। स्त्रियों की घोर दुर्दशा है। जाति-भेद की विपुलता है। दासता का कलङ्क है। निर्धनता का साम्राज्य है और विचार-सङ्कीर्णता का प्राचुर्य है। लिखते हुए दुख होता है, परन्तु सत्य को छिपाने से और अपने आपको धोखा देने से भी क्या लाभ? राजपूताने का शासन ब्रिटिश भारत के शासन से भी पिछड़ा हुआ है। पाठक अन्यत्र पढ़ेंगे कि जनता की गाढ़ी कमाई का एक बहुत बड़ा हिस्सा नरेशों के विलास में ख़र्च होता है। नरेशों के शासन का कोई ध्येय नहीं। प्रजातन्त्र-वाद का कई नरेश खुले शब्दों में विरोध कर चुके हैं। प्राचीन आर्य-आदर्श की कहीं चर्चा ही नहीं। नागरिकों के साधारण अधिकारों को भी घोषित करने में महाराजा लोग पीछे हटते हैं। फ़ेडरल-विधान में नाम-मात्र को सम्मिलित होने के लिए महाराजा बीकानेर और उनके मित्रगण तैयार अवश्य मालूम होते हैं, लेकिन साथ ही ऐसी माँगें भी पेश कर रहे हैं, जिनको ब्रिटिश भारत के नेता शायद ही स्वीकार करें। फ़ेडरेशन में शामिल होने पर भी नरेश लोग अपने निरङ्कुश अधिकारों को अनियन्त्रित ही रखना चाहते हैं। भविष्य में उनके शासन का स्वरूप कैसा होगा, इस विषय में न महाराजा बीकानेर अपने मुखारविन्द से कोई अमृत-वाणी निकालते हैं, न नवाब भोपाल अपनी ज़बाने-मुबारिक से कुछ इरशाद फ़रमाते हैं। हाँ, बीकानेर के जङ्गलधर बादशाह ने शायद एक समय अपने राज्य की व्यवस्थापिका सभा में, जिसके अधिकांश सदस्य अङ्गरेज़ी नहीं समझते, उसमें अङ्गरेज़ी भाषा में भाषण देते हुए कहा था कि 'हम क्या सुधार करेंगे, और कब करेंगे, इसके निर्णायक केवल हमीं हो सकते हैं।' आपने अपने गम्भीर स्वर में और भारी-भारी शब्दों में कई बार यह भी कहा है कि 'कोई एक-दो रियासत का शासक शायद पिछड़ा होगा, शेष राज्यों में ख़ूब आनन्द-मङ्गल है।' इसका क्या जवाब दिया जाय? जो गवर्नमेण्ट महात्मा गाँधी के कथन को असत्य बतला सकती है, उसकी पाठशाला में महाराजा साहब ने दीक्षा ली है। बहुत सम्भव है, महाराजा साहब की प्रजा और अन्य रियासतों की प्रजा भी झूठी हो और इन झूठों के बादशाह सच्चे हों।

अगर शासन उत्तम है, तो टोंक के नवाब के अधिकार अभी हाल ही में क्यों छीने गए? बूँदी में गत जुलाई मास में ग्यारह दिन तक हड़ताल क्यों रही? प्रजा ने उस नरेश को, जिसके पूर्वज लगभग १,००० वर्ष से निरन्तर राज्य कर रहे थे, गद्दी से हटा देने की एक विदेशी हाकिम के सामने क्यों दरख़्वास्त पेश की? दिन-दहाड़े पुलिस के सिपाहियों ने हज़ारों आदमियों के सामने अत्यन्त नृशंसता के साथ रामनाथ कुदाल की क्यों हत्या की? और उसके नन्हें से बच्चे को तथा अन्य कुटुम्बियों को क्यों निर्दयतापूर्वक पीटा? जयपुर में पिछले दस-बारह वर्ष के अन्दर कई बार क्यों हड़तालें हुईं? बिजोलिया में तीन-चार साल तक घोर सत्याग्रह क्यों जारी रहा? वैसा सत्याग्रह नहीं, जैसा ब्रिटिश भारत में हुआ है, परन्तु ऐसा कि तीन वर्ष तक किसानों ने बिल्कुल लगान नहीं दिया। सैकड़ों कृषक धन-जन-हीन होगए, सैकड़ों ने क़ैद और कट्ठे की नारकीय यातनाएँ भोगीं, परन्तु सत्याग्रह से पीछे नहीं हटे। सन् १९ और २० में बूँदी की प्रजा में क्यों खलबली मची थी? रियासत की पुलिस और फ़ौज को अबलाओं पर भाले और बर्छियों के उपयोग की क्यों आवश्यकता हुई थी? सिरोही, जोधपुर, ईडर और दाँता के भीलों ने मोतीलाल के नेतृत्व में क्यों ऐसा घोर आन्दोलन किया था, जिसके कारण उन पर

गोलियों की बौछार करनी पड़ी और मैशीनगन का प्रदर्शन करना पड़ा !

राजपूताने में एक-दो रियासतों का प्रबन्ध काफ़ी अच्छा है, इसको हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। हम हृदय के गहन तल से चाहते हैं कि अन्य रियासतों का प्रबन्ध भी ऐसा ही होता, सब नरेश प्रजाप्रिय और उदार हृदय होते, सबको पुत्रवत् प्यारी प्रजा की कमाई को ख़र्च करने में तरस आता और सबको रात-दिन चिन्ता होती अपने राज्य को उन्नत बनाने की। क्या ही अच्छा होता कि हमको दुख और लज्जा के साथ ये पंक्तियाँ न लिखनी पड़तीं और ऊँचा मस्तक करके संसार से कहते कि देखो, यह है आर्य-आदर्श, यह है आर्य शासन-पद्धति, यह है आर्य-वीरता, यह है आर्य महिला-स्वातन्त्र्य, यह है आर्य-धर्म, और यह है पुरातन आर्य-समाज। परन्तु हमारा ऐसा भाग्य कहाँ ? हमारे भाग्य में हैं अनेक प्रकार के अत्याचार, जिनके विरुद्ध यदि आन्दोलन करते हैं तो महाराजा लोग हमें लुच्चे, लफङ्गे, गुण्डे, निर्वासित, धूर्त, ग़ैर-ज़िम्मेवार, बदमाश और बेकार निकम्मे आदि नाम देते हैं। क्या राजस्थान की प्रजा को अपने नरेशों को बदनाम करने की आदत पड़ गई है? क्या बैठे-बिठाए जेल जाने में, जूतियाँ खाने में, अपनी सम्पत्ति का हरण करवाने में, अपने खेतों को उजड़वाने में, यहाँ तक कि अपने प्राणों की भी बलि दे देने में उनको कोई आनन्द आता है ? राजपूताने के राजा और प्रजा दोनों हिन्दू हैं, दोनों का धर्म एक है, दोनों की नस्ल एक है, दोनों एक भाषा बोलते हैं, दोनों एक ही जगह पलते हैं और एक ही जगह मरते हैं। स्वाभाविक रूप से इस सदियों के सम्पर्क के कारण और संस्कृति की एकता के कारण राजा-प्रजा में पारस्परिक ममता होनी चाहिए थी। स्नेह-श्रृङ्खला इतनी मज़बूत होनी चाहिए थी कि किसी भी परिस्थिति के धक्के से वह न टूटती। आज से सौ वर्ष पूर्व तक थी भी यही बात ; परन्तु अब आख़िर हो क्या गया ? या तो प्रजा पागल हो गई है या नरेश पागल हो गए हैं। जिनके पूर्वजों का राज्य सदियों से चला आ रहा है, उनके वंशधरों के ख़िलाफ़ सत्याग्रह-आन्दोलन, हड़तालें, जुलूस, उत्तेजक गाने और विदेशी हाकिमों के सामने अर्ज़ियाँ ! इस विषम स्थिति के कारण अवश्य हैं। महाराजा बीकानेर अपनी डरावनी भाषा में सिंहनाद करते हुए चाहे कहें 'कि राजपूताने की अधिकांश रियासतों के शासन उत्तम हैं।' परन्तु आख़िर जनता की आँखों पर पर्दा कब तक डाला जा सकता है ? अत्याचार स्वयं बोल उठते हैं। तभी तो कहा है कि :—

'जो चुप रहेगी ज़बाने ख़ञ्जर—
लहू पुकारेगा आस्तीं का।'

कौन नहीं जानता कि राजपूताने के नरेश महाराजा बीकानेर के नेतृत्व में जहाँ फ़ेडरेशन में शामिल होने की बातें करते हैं, वहाँ इङ्गलैण्ड के बादशाह से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित करने की तान भी पञ्चम-स्वर में अलापते हैं। महाराजा साहब को यह भी मालूम है कि उन्नत कहलाने वाले नरेश प्रजा पर टैक्स लगा कर महाराज-कुमारों और महाराज-कुमारियों की शादियाँ किया करते हैं। आप यह भी जानते हैं कि राजपूताने में दास-प्रथा ख़ूब जारी है। स्वयं महाराजा साहब के ही अन्तःपुर में सैकड़ों दासियाँ हैं और मर्दानेपुर में सैकड़ों दास हैं। दुनिया भर से ग़ुलामी उठ गई। जगत् के एक कोने में स्थित, उच्च पर्वत-श्रेणियों से परिवेष्टित, आधुनिक विचार-धाराओं से वञ्चित एकान्त नेपाल ने भी ग़ुलामी को हटा दिया, परन्तु बार-बार इङ्गलैण्ड जाने वाले, अङ्गरेज़ी नहीं जानने वालों से भी अङ्गरेज़ी बोलने वाले, राजनीति के मर्म को समझने वाले, वायसरॉय को सलाह देने वाले, अपनी रियासत में रेल, तार, टेलीफ़ोन, सड़कें और शिकार के अनेक प्रकार के आयोजनों को जुटाने वाले महाराजाधिराज महिमहेन्द्रों के यहाँ अब भी ग़ुलामी जारी है।

बेगार-प्रथा इतनी व्यापक है कि केवल एक-दो रियासतें ही इससे मुक्त हैं और वे भी किसी हद तक ही। चमार जाति का काम तो बेगार करना ही है। इनके अतिरिक्त राज-कर्मचारी और नरेशों के दौरों में सब से, विशेषकर कृषकों से बेहद बेगार ली जाती है। इससे कितनों ही की ज़मीन पड़ती रह जाती है, अनेकों की खेती नष्ट हो जाती है और कई रुग्णावस्था में अत्यधिक परिश्रम करने के कारण तथा शीत और धूप में शक्ति से अधिक काम करने के कारण रोगों के शिकार हो जाते हैं। प्रायः देखा गया है कि घर में चाहे स्त्री या बच्चे बीमार हों, खेती की देख-रेख करने वाला या खेतों की

रखवाली करने वाला अन्य कोई न हो; परन्तु सरकारी बेगार नहीं टल सकती। अपना आवश्यक से आवश्यक काम छोड़ कर तथा स्त्री और बच्चों को बीमार और अकेले छोड़ कर भी आदमी को बेगार में जाना ही पड़ता है। बेगार भी किस काम की? इसलिए नहीं कि राजसङ्कट में है या कोई ऐसी परिस्थिति है जिसका तत्काल निवारण होना चाहिए, बल्कि इसलिए कि किसी हाकिम को अपनी चीज़ एक गाँव से दूसरे गाँव पहुँचानी है, उसकी मोटर के लिए रास्ता साफ़ करना है, उसके डेरे लगाने हैं, उसके लिए पानी भरना है या बर्तन साफ़ करना है या कपड़े धोना है, या महाराजा साहब शिकार में जा रहे हैं और वहाँ हाँके के लिए सैकड़ों आदमियों की आवश्यकता है। नरेशों का क्षणिक विनोद है और कृषकों की तथा श्रमजीवियों की बरबादी। बेगार की एवज़ में चमारों को तो कुछ भी नहीं मिलता, गाँवों में जो पशु मरते हैं, उनका चमड़ा केवल उनके हाथ लगता है। कुछ रियासतों में तो इस चमड़े पर भी राज्य का टैक्स है। कृषक लोगों को तथा अन्य बेगारियों को कई रियासतों में खाने के लिए अपने साथ आटा बाँध कर ले जाना पड़ता है और कई दिन के निरन्तर परिश्रम के बदले उनको फूटी कौड़ी भी प्राप्त नहीं होती। दो-चार रियासतों में अब नाम-मात्र का पारिश्रमिक मिलने लगा है, पर इसको मज़दूरी नहीं कहा जा सकता। कहीं एक आना रोज़ मिलता है और कहीं दो आना। ठिकानों में बेगार के और भी भयङ्कर स्वरूप दिखाई देते हैं। ठिकानों में नाई, कुम्हार, चमार, दर्ज़ी, ब्राह्मण, बनिए सब से बेगार ली जाती है। जोधपुर रियासत के कई ठिकानों में ठाकुर साहब और उनके कुटुम्ब के सब लोग अपने गाँवों के चमारों से मुफ़्त में जूती बनवा कर पहिनते हैं, कुम्हार बेगार में पानी भरते हैं और मिट्टी के बर्तन देते हैं, नाई पत्तल-दोने देते हैं और हजामत बनाते हैं तथा मेहमानों की धोतियाँ धोते हैं। कृषक लोग लकड़ियाँ काट कर लाते हैं, कवेलूपोश मकानों को सारते हैं, रस्से बुनते हैं, घास ढोते हैं, मकान चुनते हैं, पत्थर ढोते हैं, चूना पाड़ते हैं और शिकार में हाँका देते हैं। जोधपुर के कई ठिकानों में तो ब्राह्मणों से भोजन भी बेगार में बनवाया जाता है।

राजपूताने के करों की ठीक गणना कराना कठिन है। एक छोटी सी रियासत में ३१ प्रकार के कर हैं और एक अत्यन्त उन्नत होने का दावा रखने वाले महाराजा की रियासत में १६ प्रकार के कर हैं, जिसमें महाराज कुमार और बाई साहब की शादी का कर, श्राद्धों का कर और तीज का कर शामिल है। कई रियासतों में शादियों पर और दावतों पर भी कर है। मेवाड़ और मारवाड़ के ठिकानों में वसूली के लिए जो सिपाही गाँव में जाते हैं और शहने चपरासी आदि जो गाँव में रहते हैं, वे लोग अपना अलग ही टैक्स कृषकों से वसूल करते हैं। इससे रियासतों को यह लाभ है कि उनको तनख़्वाह केवल नाम मात्र की देनी पड़ती है। जयपुर के कई ठिकानों में जो ठाकुरों के मन्दिर हैं, उनका ख़र्चा भी किसानों से कर-रूप में वसूल किया जाता है। 'कागली' अर्थात् विधवा-विवाह और तलाक़ का कर तो कई रियासतों में जारी है। ज़मीन का लगान पिछले चालीस वर्षों में कई रियासतों ने बार-बार बन्दोबस्त करके पहिले से ड्योढ़ा कर दिया है। एक अत्यन्त उन्नत और विशालकाय तथा राजनीति-विशारद महाराजाधिराज अपनी प्रजा से समय-समय पर चन्दे के नाम से टैक्स वसूल किया करते हैं।

भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम से किसी नरेश को सहानुभूति नहीं है। सन् १६१६ के सत्याग्रह संग्राम की तो जङ्गल-धर बादशाह ने ख़ूब निन्दा की थी और अपने व्योम-चुम्बी तथा इन्द्र-भवन-विनिन्दक लालगढ़ पैलेस में लॉर्ड रेडिङ्ग को दावत देने के बाद अङ्गरेज़ प्रभुओं का स्तोत्र पाठ करते हुए, अपने भाषण में कहा था कि भारत के राजनैतिक उपद्रव को दबाने के लिए बीकानेर की वीर-सेना हमेशा हाज़िर है। एक बार जब जमनालाल जी बजाज़ और एक महिला बीकानेर राज्य में होकर कहीं जा रहे थे और किसी स्टेशन पर विश्राम कर रहे थे तो बीकानेर की पुलीस ने उनको तत्काल गाड़ी में बैठ कर प्रस्थान कर देने के लिए बाध्य किया था। श्री० अर्जुनलाल सेठी और रामनारायण चौधरी को उनके उग्र राजनैतिक विचारों के कारण जयपुर रियासत ने देश-निर्वासित सा ही कर रक्खा है। यह ग़नीमत है कि वर्तमान सत्याग्रह-संग्राम के विरुद्ध कम से कम परोक्ष में तो राजपूताने के किसी नरेश ने आवाज़ नहीं उठाई। हाँ, स्वतन्त्रता देवी के अनन्य उपासक महाराणा प्रताप के वंशधर महाराणा

भीमसिंह जिस समय गद्दी पर विराजे तो उन्होंने अङ्गरेज़ों के प्रति अपनी अनन्याश्रित भक्ति और राजपूतों की सहज वफ़ादारी की बड़े उच्च स्वर से घोषणा की थी। महाराजा बीकानेर भी मौक़ा-बेमौक़ा प्रभु पञ्चम जॉर्ज के प्रति अपनी अविचल भक्ति का प्रत्येक भाषण में ज़रूर ज़िक्र फ़रमाते हैं, परन्तु ये तो राजपूतों का परम्परागत धर्म बतलाया जाता है, बल्कि मुग़ल-सम्राटों के प्रति तो इनकी भक्ति और भी बढ़ी-चढ़ी थी। जब से अङ्गरेज़ों का राज्य हुआ है, तब से महाराजागण की भक्ति अपने उच्च शिखर से कुछ खिसक पड़ी है। हमारे ख़्याल से प्रभु पञ्चम जॉर्ज की भक्ति करते हुए भी नरेश अपनी प्यारी जन्म-भूमि भारतवर्ष को आज़ाद बनाने की चिन्ता कर सकते हैं। प्रायः सब नरेशों को हिन्दू-धर्म से प्रेम है। लगभग सबने ही हिन्दू विश्वविद्यालय को पुष्कल आर्थिक सहायता देकर जाति-हित किया है, लेकिन आज़ादी की लहर से नरेश लोग न जाने क्यों विदकते हैं? शायद इनको यह भय है कि स्वतन्त्र भारत में इनका अस्तित्व न रहे, परन्तु हमारा ख़्याल है कि जिस वक्त देश को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी, नरेशों का सम्मान और भी अधिक होगा। इस समय अङ्गरेज़ अफ़सरों की उनको ख़ुशामद करनी पड़ती है, उनकी अँगुलियों पर नाचना पड़ता है और उनकी मेमों और मिसों को अनेक प्रकार से सन्तुष्ट रखना पड़ता है। फिर भी जिस समय गोरा अफ़सर आँख बदलता है तो बात की बात में बड़े से बड़े नरेश की आबरू को मिट्टी में मिला देता है। आज़ाद भारत में यह न होगा, क्योंकि उस समय वे भी अपने राज्य में स्वतन्त्र होंगे। यदि प्रजा-हित में रत रह कर ये लोग अपना कर्तव्य-पालन करते रहे, तो प्रजा इनको अपनी आँख की पुतली समझेगी और अपनी-अपनी रियासतों में नरेश लोग अमीर काबुल, बादशाह फ़ऊद, फ़ैसल, इब्न सऊद, नेपाल-सम्राट और बेल्जियम-नरेश की भाँति पूर्ण स्वतन्त्र और प्रजा के स्नेह-भाजन होंगे।

नरेशों में अधिकांश बड़े सज्जन हैं, उदार-हृदय हैं और गुण-ग्राहक हैं, लेकिन वे सब ऐसी परिस्थिति में हैं कि उनके दिव्य गुण प्रकट नहीं हो पाते। ब्रिटिश सरकार ने सङ्कट के समय इनको सैनिक सहायता देने का वचन दे रक्खा है, इससे वे चैन से सोते हैं। कुप्रबन्ध, अन्याय या अपव्यय के कारण राज्य-भ्रष्ट होने का तो उनको भय है ही नहीं। सदियों से कुचली हुई निरक्षर प्रजा कभी सिर उठा ही नहीं सकती और जो उठावे तो त्रास उत्पन्न करने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य की शस्त्रास्त्र-सुसज्जित दुर्धर्ष सेना तैयार है। अङ्गरेज़ों को इस बात की चिन्ता ही नहीं कि आन्तरिक प्रबन्ध अच्छा है या बुरा। हाँ, यदि कोई नरेश शायद कभी अच्छाई की तरफ़ बढ़ने लगे तो रेज़िडेण्ट साहब सतर्क होकर तथा आँखें फाड़-फाड़ कर उधर की ओर देखने लगें। परन्तु ऐसी नौबत ही क्यों आने लगी? जब कुप्रबन्ध की अत्यधिक शिकायत होती है,तब प्रजा को मशीनगनों द्वारा त्रस्त कर दिया जाता है। परन्तु यदि स्थिति और नाज़ुक हो जाय और महाराजा से गोरे अफ़सर नाराज़ हों तो उसको गद्दी से उतार दिया जाता है। इस अवस्था में भी उसको लाखों रुपए सालाना अपने निर्वाह के लिए दिए जाते हैं। इस स्थिति में महाराजा को कर्तव्य-परायण होने की क्या आवश्यकता है? प्रजा का उसे भय नहीं और अपने प्रभुओं की नाराज़गी का उसे ख़ौफ़ नहीं। हाँ, यदि किसी नरेश को परलोक का भय हो और भगवान ही उसको प्रेरणा करे तो अपनी प्रजा के कल्याण की ओर उसका ध्यान जा सकता है। सो ऐसा होना भी राजाओं की दूषित शिक्षा-पद्धति, चापलूसों के संसर्ग और कृत्रिम वायु-मण्डल के कारण कम सम्भव है।

राजपूताने की प्रायः सब रियासतों में निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। जहाँ तक हमको मालूम है, जयपुर रियासत ने शिक्षा पर फ़ीस जारी करके राजपूताने में सर्व-प्रथम नाम कमाया है। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर और कोटा में कॉलेज हैं और शेष सब रियासतों में एक-एक हाई स्कूल हैं। आठ-दस रियासतों में लड़कियों के लिए भी स्कूल खुले हुए हैं, जिनमें ऊँची से ऊँची शिक्षा हिन्दी मिडिल तक दी जाती है। दुख की बात यह है कि इस समय भी राजपूताने में शिक्षा बहुत कम है। प्रायः समस्त रियासतों के दीवान और बड़े-बड़े अफ़सर बाहर से आए हुए हैं। इतना ही नहीं, ५०) रु० मासिक से अधिक वेतन पाने वाले रियासती लोग राजपूताने भर में बहुत कम हैं। अब प्रति वर्ष मेट्रिक, एफ़० ए०, बी० ए० और एम० ए० पास करने वालों की संख्या

बढ़ने लगी है। लेकिन इससे समस्या और भी विकट होती जाती है। राज्य की नौकरियों पर तो बाहर के लोग पहिले से जमे ही हुए हैं और जो स्थान ख़ाली होते हैं उन पर हाकिम लोग अपने रिश्तेदारों को या दोस्तों को बाहर से बुला कर अपनी जड़ जमी रखने के लिए स्थापित कर देते हैं और रियासतों के लोगों में बेकारी बढ़ती जाती है। यह स्थिति जयपुर, जोधपुर, उदयपुर और कोटे में अधिक पाई जाती है।

स्त्री-शिक्षा तो नाम मात्र को है। राजपूत महिलाओं और जैन-देवियों में साक्षरता अच्छी है, परन्तु इनमें ऐसी देवियाँ इनी-गिनी ही मिलेंगी, जो हिन्दी की साधारण पुस्तक को समझ सकें या कोई अख़बार पढ़ सकें। जो स्त्रियाँ साक्षर हैं, वे केवल मारवाड़ी अक्षरों में टूटा-फूटा पत्र लिख सकती हैं। इस शिक्षा के अभाव के कारण हैं पर्दा, बाल-विवाह और पाठशालाओं की कमी तथा राजपूताने की व्यापक निर्धनता। पाठकों को यह जान कर अचम्भा होगा कि ख़ास राजपूताने में रहने वाली देवियों में से अब तक केवल एक महिला ने मेट्रिक पास किया है। कुछ रियासतों से जो दस-पाँच लड़कियाँ प्रति वर्ष हिन्दी मिडिल पास करती हैं,उनमें से अधिकांश बाहर से पधारे हुए हाकिमों की और अन्य कर्मचारियों की पुत्रियाँ होती हैं। अब तक लोकमत स्त्री-शिक्षा के प्रतिकूल बना हुआ है।

किसी भी रियासत में सभा करने की, भाषण देने की या प्रबन्ध की मीमांसा करने की आज़ादी नहीं है। बीकानेर के महाराजा को भाषण देने का बड़ा शौक़ है,लेकिन पाठकों ने शायद ही कभी सुना हो कि उनके राज्य में कभी किसी का भाषण हुआ था। अभी थोड़ा ही समय हुआ, जब जोधपुर महाराज ने जोधपुर राज्य में सभा करने और भाषण देने के अपराध में तीन वक्ताओं को कई साल के लिए जेल में बन्द कर दिया था। कोटा राज्य में क़ानून के मुआफ़िक़ तो शायद रामायण की कथा करने के लिए भी पुलिस से इजाज़त हासिल करनी पड़ती है। वैसे व्यवहार में कभी इस क़ानून का उपयोग नहीं हुआ। बड़ी-बड़ी रियासतों में कोटा के अतिरिक्त सर्वत्र किसी न किसी अख़बार को कभी न कभी अवश्य ज़ब्त किया है, यहाँ तक कि जयपुर-दरबार ने तो एक समय 'लीडर', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'प्रताप', 'कर्मवीर', 'माधुरी' और 'सरस्वती' को भी अपनी पवित्र भूमि में प्रवेश करने से रोक दिया था।

राजपूताना वीर-भूमि कहाता है, लेकिन यहाँ के लोगों का स्वास्थ्य जितना ख़राब रहता है, अन्यत्र कहीं नहीं रहता। कई रियासतों के बड़े-बड़े क़स्बों में सफ़ाई का कोई प्रबन्ध नहीं। बूँदी नगर में रात के समय सड़कों पर ही क्या, राजमहल के सामने के बाज़ार तक में रोशनी का कोई प्रबन्ध नहीं है। परन्तु श्री० महाराव राजा साहब को मोटर दौड़ाने का बड़ा शौक़ है। कई उन्नत रियासतों के गाँवों में पीने को पानी तक नहीं मिलता। लोग बैलों पर लाद कर कई मील से पानी लाते हैं, तब पीते हैं। ऐसी दशा में स्नान का कहाँ ठिकाना? बूँदी रियासत में आज से कुछ वर्ष पूर्व तक एक भी शफ़ाख़ाना नहीं था और यही दशा टोंक की थी। अब एक टूटा सा अस्पताल बन गया है, परन्तु उसमें औषधियों की हमेशा कमी रहती है और डॉक्टर रहता है प्रायः छुट्टी पर। हिन्दुओं के राज्यों में दूध और घी की नदियाँ बहनी चाहिए थीं, परन्तु मारवाड़ के अतिरिक्त सब रियासतों के पशु अत्यन्त दुर्बल, नाटे और क्षीण हैं। इनकी नस्ल को सुधारने का किसी महाराजाधिराज महिमहेन्द्र को ध्यान नहीं आता। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि सब रियासतों के अधीश्वर गोपाल-कृष्ण के भक्त बनने का दम भरते हैं। अधिकांश रियासतों में ज़नाने अस्पतालों का समुचित प्रबन्ध नहीं है। शिक्षित दाइयों का तो घोर अभाव है। स्त्री और बच्चे अज्ञानता के कारण प्रतिवर्ष भारी संख्या में मरते हैं।

संसार भर में भारत सबसे अधिक दरिद्र देश है, परन्तु भारत में सबसे अधिक निर्धन प्रान्त है राजपूताना। राजा-महाराजा लोग भोग और विलास में अपने दिन काटते हैं, व्योमचुम्बी महलों में रहते हैं, बहुमूल्य मोटरों में घूमते हैं, अपने दोस्त साहब, मेमों तथा मिसों की दावतें करते हैं, यूरोप में जा-जाकर ख़ुदा की शान देखते हैं, परन्तु साथ ही उनके महलों के ही नीचे उनकी प्रजा को देखिए। इनमें दो-चार सेठों को छोड़ कर,जिनका धन कलकत्ते और बम्बई की कमाई का फल है, शेष लोग अत्यन्त नारकी जीवन सहन कर रहे हैं। राजपूताने में एक आने रोज़ पर मज़दूर मिल सकता है, दस रुपए मासिक पर क्लार्क मिल सकता है

और सैकड़ों गाँवों को पार करने पर भी शायद ही कोई ऐसा कृषक मिले जिस पर क़र्ज़ा न हो। उद्योग-धन्धों का राजपूताने में नाम नहीं। किसी रियासत में न कोई मिल है, न फ़ैक्टरी, न व्यापार के अन्य साधन। ज़कात,चुङ्गी, चोर और डाकुओं का भय, सड़कों की कमी, जङ्गलों की भरमार, इन बाधाओं के कारण कोई व्यापार नहीं पनपने पाता।

यह करुण-कथा बहुत लम्बी है। हम लिखते नहीं थकेंगे,पर पाठक आख़िर कहाँ तक पढ़ेंगे? क्या ही अच्छा होता कि राजपूताने में आदर्श हिन्दू-शासन होता और यह दुख-कहानी अत्यन्त दुख के साथ पाठकों के सामने हमको पेश न करनी पड़ती। परन्तु भारत का अर्ध-नग्न फ़क़ीर—पूज्य नेता महात्मा गाँधी असीम आशावादी है। हमको भी उसके उपदेश ग्रहण करने चाहिए और आशावादी होना चाहिए। आख़िर राजपूताने के नरेश हमारे हैं और हम उनके हैं। एक दिन वे देश की स्वतन्त्रता पर अवश्य अभिमान करेंगे और प्रजा-हित-चिन्तन तथा कर्तव्य-परायणता को अपने जीवन का ध्येय समझेंगे। सदियों के दुखों का अन्त ज़रूर होगा। 'एक दिना नहीं एक दिना सुख के दिन कबहुँक फेर फिरेंगे।'

पद्मिनी

[श्री० बालकृष्ण जी थोलम्बिया]

सौन्दर्य सिन्धु की शोभा,
थी एक पद्मिनी तू ही।
किसको तुझसे समता दें,
थी तेरे सम बस तू ही।

तेरी वह सुरभि निराली,
मन मुग्ध न किसका करती?
तव रूप-सुधा पीने को,
थी सबकी आँख तरसती!

तेरे विनाश का कारण,
तेरी यह सुरभि निराली।
बतलाती है ख़िलजी की
अब भी करतूतें काली।

तेरी वह करुण कहानी
किसको क्या नहीं सिखाती?
किसका दिल नहीं हिलाती,
किसको हा! नहीं रुलाती?

छल से राणा को बन्दी
लख, तेरी भौंह तनी थी।
रिपु-दल को विषधर नागिन,
तेरी करवाल बनी थी।

उस अति प्रचण्ड ज्वाला में,
हँसते-हँसते धँस जाना।
कुन्दन सा गात गला कर,
प्राणों की भेंट चढ़ाना!!

यों पातिव्रत्य की वेदी
पर हँस कर बलि हो जाना।
तुमने सिखलाया जग को,
यों जीना, यों मर जाना।

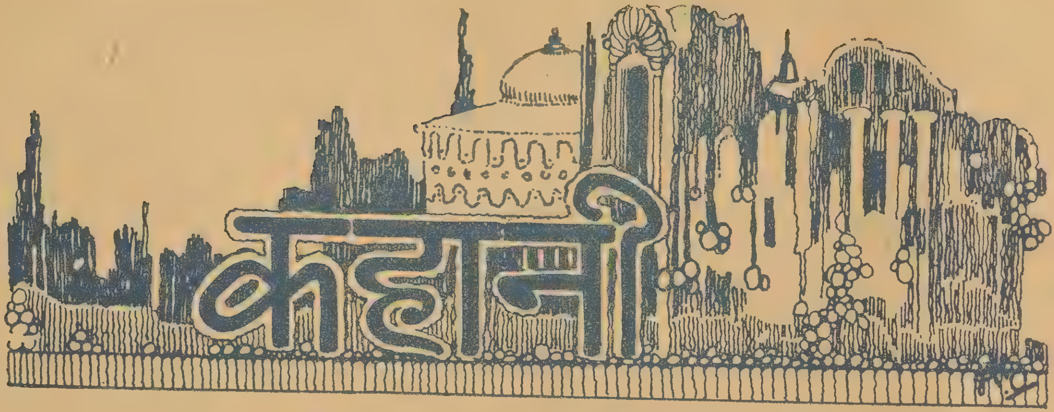

क्षत्राणी

[डॉ० धनीराम प्रेम]

औरङ्गज़ेब उन दिनों भारत का भाग्य-विधाता था। उसके अत्याचारों की कहानी इतिहास पढ़ने वालों से छिपी नहीं है। परन्तु उससे भी अधिक अत्याचारी थे वे राजपूत ज़मींदार, जो औरङ्गज़ेब से एक जागीर मिलने के लोभ के कारण ही अपने राजपूत-पन, अपनी जाति, अपना देश और अपनी आत्मा तक को बेच देते थे। इस जागीर की प्राप्ति के लिए, एक बड़ा ज़मींदार बनने की इच्छा को पूरा करने के लिए और बादशाह की कृपा का एक टुकड़ा प्राप्त करने के लिए, वे सब कुछ करने के लिए तैयार रहते थे। सबसे बड़ा काम, जिसे वे बड़े अभिमान के साथ सम्पन्न करते थे, था अपने उन राजपूत भाइयों पर अत्याचार करना जो उनसे दुर्बल थे, या जो बादशाह औरङ्गज़ेब की अधीनता स्वीकार करने में आनाकानी करते थे। बादशाह की सहायता इन कामों में उन्हें सदा मिलती थी। चाहे झूठा, चाहे सच्चा, उस ज़मींदार का अपराध सिद्ध हो जाय; बस फिर उसकी कुशल नहीं थी।

राजपूताने में, उस समय, एक छोटा सा राज्य था शिवगढ़। इसका राजा था मदनसिंह। मदनसिंह की ज़मींदारी बड़ी नहीं थी, परन्तु उसकी शक्ति बड़ी थी। और उसका कारण थी बादशाह की सहायता। उसी सहायता के बल पर मदनसिंह अपने को, उस बीच में, सर्व-शक्तिशाली समझता था। अपनी प्रजा पर जो उसके अत्याचार होते थे, वे सब पर विदित थे। सब रोते थे, परन्तु छिप कर। किसी में इतना साहस न था कि खुल्लमखुल्ला मदनसिंह के अत्याचारों का विरोध कर सके। अत्याचार सभी पर होते थे; क्या स्त्री, क्या पुरुष; क्या वृद्ध, क्या युवक; क्या ब्राह्मण, क्या शूद्र; क्या धनिक, क्या निर्धन। यहाँ तक कि वे लोग, जो राजा का सदा गुण-गान करते रहते थे और जिनका जन्म ही ख़ुशामद और चापलूसी में व्यतीत हुआ था, अपने को सुरक्षित न समझते थे। उनको भी यह खटका लगा रहता था कि कहीं किसी दिन राजा की कोप-दृष्टि उन पर भी न हो जाय।

यही नहीं कि प्रजा पर ही उसका इतना आतङ्क हो। पड़ोसी ज़मींदारों पर भी उसका आतङ्क छाया हुआ था। सब उससे डरते, जिनकी बड़ी ज़मींदारी थी, वे भी; और जिनकी छोटी ज़मींदारी थी, वे भी। वैसे यदि यह सारे ज़मींदार चाहते तो मिल कर मदनसिंह का सामना कर सकते थे, परन्तु मेल करना तो उस समय के ज़मींदारों ने सीखा ही नहीं था।

मदनसिंह का इतना आतङ्क होते हुए भी एक ऐसा ज़मींदार था जो मदनसिंह का सामना करने के लिए तैयार रहता था। इसका नाम था मोहनसिंह। अजयगढ़ की छोटी सी ज़मींदारी का यह अधिपति था। मोहनसिंह की रानी का देहान्त हो चुका था। उसकी दो सन्तानें थीं। राजकुमार की आयु लगभग दस वर्ष की थी और राजकुमारी मीरा की आयु थी लगभग चौदह वर्ष की। मोहनसिंह प्रजा को अपनी सन्तान के ही समान देखता था। इसीसे उसकी प्रजा सुखी और समृद्धिशाली थी। राजा के लिए हर एक व्यक्ति अपने प्राण तक देने के लिए तैयार रहता था।

परन्तु मोहनसिंह के ये गुण ही उस समय उसके शत्रु हुए। मदनसिंह के अत्याचार से तङ्ग आकर उसके राज्य के अनेकों निवासी अजयगढ़ में आकर रहने लगे थे। यह बात मदनसिंह को बहुत खटकती थी और वह कोई ऐसा अवसर देख रहा था, जबकि मोहनसिंह से कोई झगड़ा खड़ा कर ले।

२

मोहनसिंह और मदनसिंह के राज्य की सरहदें मिली हुई थीं। एक बार मदनसिंह ने एक जौहरी की जायदाद ज़ब्त करने की आज्ञा निकाल दी। सिपाहियों के पहुँचने के पहिले ही जौहरी अपनी मूल्यवान जवाहिरात लेकर अजयगढ़ को भाग गया। यह मदनसिंह कब सहन कर सकता था। अपने कुछ सिपाही अजयगढ़ भेज दिए कि वे उस जौहरी के मकान को लूट लें। मोहनसिंह भी अपनी ही नगरी में मदनसिंह के सिपाहियों द्वारा यह अत्याचार नहीं देख सकता था। उसने मदनसिंह के सिपाहियों को गिरफ़्तार कराके जेल में डाल दिया। मोहनसिंह ने समझा था कि उसने बड़ा न्याय किया था, परन्तु वही न्याय उसके लिए विनाश का साधन बन गया। मदनसिंह अवसर की ताक में था, इससे अच्छा अवसर उसे और कौन सा मिलता? वह इस अवसर को पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। चारों ओर मोहनसिंह ही एक ऐसा ज़मींदार था, जो मदनसिंह का लोहा नहीं मानता था और जिसने औरङ्गज़ेब की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। औरङ्गज़ेब के कारबारियों को मोहनसिंह काँटे की तरह खटकता था। वे चाहते तो उसे मटियामेट कर डालते, परन्तु वे कूटनीति से काम लेना चाहते थे। जहाँ तक हो सके, वे कोई ऐसा उपाय काम में लाना चाहते थे, जिससे उनका काम भी हो जाय और उन्हें न तो अधिक क्षति उठानी पड़े और न अधिक कष्ट। इसका एक मात्र उपाय यही था कि वे किसी राजपूत ज़मींदार को अपना अस्त्र बना कर उसके द्वारा मोहनसिंह जैसे विद्रोही और स्वतन्त्र प्रकृति के ज़मींदारों को कुचलना चाहते थे। सौभाग्यवश उन्हें उस प्रान्त में मदनसिंह इस काम के लिए मिल गया था। अब वे कोई ऐसा अवसर देख रहे थे कि मदनसिंह को मोहनसिंह के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार कर लें। यह अवसर उनके लिए स्वर्णावसर था। उन्होंने मदनसिंह के पास समाचार भेज दिया—

'तुम इतने बड़े ज़मींदार और बादशाह के जागीरदार होकर मोहनसिंह से डरते हो? उसने तुम्हारे सिपाहियों को क़ैद करके तुम्हारा महान अपमान किया है और साथ ही तुम्हारे बादशाह सलामत का भी अपमान किया है। क्या तुम इस अपमान को इस प्रकार सहन कर लोगे? क्या इसका बदला नहीं लोगे? बादशाह की फ़ौजें तुम्हारी सहायता के लिए तैयार हैं। बस, तुम चढ़ाई कर दो और मोहनसिंह की ज़मींदारी को भी अपनी जागीर में मिला लो।'

इस प्रकार के समाचार पाकर मदनसिंह का हौसला बढ़ गया। उसने अपने मन्त्री को बुला कर क्रोधित होकर कहा—वज़ीर साहब?

'महाराज?'

'यह क्या समाचार है?'

'मोहनसिंह ने हमारे उन सिपाहियों को क़ैद करके जेलख़ाने में डाल दिया है, जो महाराज के अपराधियों को दण्ड देने गए थे।'

'उसका इतना साहस?'

'महाराज!'

'वहाँ से कोई पत्र मिला?'

'नहीं, महाराज!'

'तुमने क्या किया है?'

'अभी तक तो कुछ भी नहीं किया है, महाराज!'

'इसका कारण?' मदनसिंह ने चिल्ला कर पूछा।

'महाराज जानते हैं।'

'सीमा के विद्रोही?'

'जी, महाराज! सीमाप्रान्त के लोग विद्रोह करने के लिए तैयार हैं। यही नहीं, वे मोहनसिंह का बड़ा मान करते हैं और उसके लिए लड़ने-मरने को तैयार रहते हैं। यदि युद्ध की घोषणा की गई तो हमें दो शत्रुओं का सामना करना पड़ेगा—एक तो अपनी विद्रोही प्रजा और दूसरी मोहनसिंह की सुखी और सन्तुष्ट प्रजा, जो अपने राजा पर जान देती है।'

'बादशाह की सेना किसलिए है? बादशाही अस्त्र-शस्त्र किसलिए हैं? बादशाह के नाम का आतङ्क किस लिए है?'

'जो महाराज की आज्ञा।'

'चढ़ाई कर दो।'

बिना किसी चेतावनी के ?'

'चेतावनी से क्या अर्थ सिद्ध होगा ?'

'शायद मोहनसिंह डर कर हमारे क़ैदियों को मुक्त कर दे।'

'केवल क़ैदियों को मुक्त कर देने से ही तो काम नहीं चलेगा। उनको क़ैद करने का अपराध जो उसने किया है, उसका दण्ड भी तो उसे मिलना चाहिए।'

'शायद उस अपराध के लिए भी वह क्षमा-याचना कर ले।'

मदनसिंह को यह बात जँच गई। उसने सोचा कि यदि एक पत्र के द्वारा ही मोहनसिंह का मान तोड़ा जा सके तो युद्ध का झञ्झट अपने सिर क्यों मोल लिया जाय। उसका वास्तविक उद्देश्य तो मोहनसिंह को येन-केन-प्रकारेण नीचा दिखाना था। वज़ीर साहब की इस सलाह से वह प्रसन्न ही हुआ। वज़ीर साहब को उसने पत्र लिखने की आज्ञा दे दी। पत्र जब पूरा हुआ तो इस प्रकार था :—

"हम महाराजा मदनसिंह, शिवगढ़ के राजा, अजयगढ़ के राजा मोहनसिंह को इस बात की सूचना देते हैं कि यदि उन्होंने हमारे क़ैदियों को इस चिट्ठी के मिलते ही न छोड़ दिया, और अपने अपराध के लिए क्षमा न माँग ली, तो हमारी सेना अजयगढ़ पर चढ़ाई कर देगी और सारे राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करके अपने अधिकार में ले लेगी।"

❀

मोहनसिंह की सभा लगी हुई थी। मदनसिंह का ख़रीता लेकर उसका एक दूत मोहनसिंह के सामने आया। उसे देख कर मोहनसिंह और उसके सभासद सभी समझ गए कि उसमें क्या था। परन्तु सब शान्त बैठे रहे। किसी ने क्रोध की झलक अपनी आकृति पर न दिखाई। मोहनसिंह ने ख़रीता अपने हाथ से मन्त्री को दिया। मन्त्री ने उसे धीरे-धीरे खोला और उसी प्रकार धीरे-धीरे उसे पढ़ने लगा। जहाँ क्षमा-याचना की बात आई, वहीं सबके मुख रक्तवर्ण हो गए और लगभग सभी के दाहिने हाथ अपनी-अपनी तलवार के म्यान पर पहुँच गए। उनमें से केवल एक सभासद था, जिसका हाथ तलवार की मूठ पर नहीं गया था। वह इसलिए कि उसके पास तलवार ही नहीं थी, तो उसकी मूठ पर हाथ कैसे पड़ता। वह राज-पण्डित थे।

राज-पण्डित चुपचाप बैठे रहे। उनकी आकृति पर वे भाव न आए, जो औरों की आकृतियों पर थे। यदि उनकी कमर में तलवार भी बँधी होती, तो भी कदाचित ही उनका हाथ उसे निकालने के लिए हिलता। थे तो बेचारे आख़िर पण्डित।

ख़रीता जब पढ़ा जा चुका तो मोहनसिंह ने हाथ का इशारा किया, शीघ्र ही मदनसिंह का दूत वहाँ से हटा दिया गया।

'आप सबने पत्र सुन लिया ?'— मोहनसिंह ने पूछा।

'जी हाँ !'—सबने एक स्वर में कहा।

'फिर क्या करना चाहिए ?'

'करना वही चाहिए, जो क्षत्रियों के करने योग्य है। यह पत्र नहीं, युद्ध के लिए आवाहन है। इस पत्र की भाषा महाराज के लिए ही नहीं, सारी प्रजा के लिए अपमान-जनक है। ऐसी दशा में हमारा एक ही कर्तव्य है और एक ही उत्तर है—युद्ध !' एक नवयुवक पार्षद ने बड़े आवेश से कहा।

'युद्ध !'— सारे सभासद चिल्ला उठे। उनके गगन-भेदी नाद से सारा सभा-भवन गूँज उठा। वे बोल चुके थे, परन्तु फिर भी उनके होठों का कम्पन बन्द नहीं हुआ था। होठ हिल रहे थे, मानो वे भी अपने कम्पन से 'युद्ध' शब्द के नारे लगा रहे हों। उन्होंने तलवारें म्यान से बाहर नहीं निकाली थीं, परन्तु उनके हाथों में ऐसी गति हो रही थी, मानो शत्रु सामने खड़ा उन्हें तलवार म्यान से निकालने के लिए ललकार रहा हो। उनके नेत्र गतिविहीन हो गए थे, मानों उनके सामने युद्ध के दृश्यों का सजीव चित्र खिंच गया हो। उनके कान महाराज की ओर लगे हुए थे, मानो वे महाराज के श्रीमुख से युद्ध की घोषणा सुनने के लिए व्याकुल हो रहे हों। इस प्रकार अपने सभासदों को युद्ध के लिए तैयार देख कर मोहनसिंह की आकृति प्रसन्नता से खिल उठी।

'तो क़ैदियों को मुक्त न किया जाय ?'—मोहनसिंह ने सभासदों की ओर देख कर पूछा।

'नहीं !'—सबके मुख से निकला।

'महाराज !' सभासदों में से किसी ने चिल्ला कर कहा।

सभा में शान्ति हो गई। मोहनसिंह ने सभासदों की ओर और सभासदों ने एक-दूसरे की ओर देखा, यह जानने के लिए कि ऐसा कौन व्यक्ति था, जो युद्ध के विरुद्ध कुछ कहना चाहता था।

'महाराज !'—फिर शब्द हुआ। इस बार सबने देखा, वह पण्डित जी का शब्द था।

'कहिए, पण्डित जी !'—मोहनसिंह ने कहा।

'क़ैदियों को मुक्त कर दीजिए।'

'परन्तु सभासदों की ऐसी इच्छा नहीं है।'

'यदि आपकी इच्छा होगी तो......'

'जो सभासदों की इच्छा है, वही मेरी इच्छा है !'

'परन्तु...?'

'कहिए !'

'इसका परिणाम बड़ा भयानक होगा। मदनसिंह की शक्ति के साथ बादशाह की शक्ति भी होगी। इन शक्तियों का सामना हमारा निर्बल राज्य किस प्रकार करेगा ? व्यर्थ में रक्तपात होगा। जिस प्रजा को आपने सुख और समृद्धि दी है, वही प्रजा आक्रमणकारियों द्वारा सताई जायगी, उस पर नाना प्रकार के अत्याचार किए जायँगे। आप में इतनी शक्ति कहाँ है कि इतने पराक्रमी शत्रुओं का लोहा ले सकें।'

पण्डित जी की बातें सुन कर सभी के मुखों पर क्रोध और ग्लानि के चिन्ह प्रकट हो रहे थे, परन्तु चूँकि महाराज शान्ति से पण्डित जी की बात सुन रहे थे, अतः किसी सभासद का इतना साहस न हुआ कि पण्डित जी को बीच ही में रोकता। यदि पण्डित जी के स्थान पर कोई और व्यक्ति होता तो उसे इतना लम्बा भाषण देने का अवसर न दिया जाता। जब पण्डित जी समाप्त कर चुके तो महाराज बोले—'पण्डित जी, आपने क्षत्रियोचित कोई बात नहीं कही। हम पहले क्षत्री हैं और पीछे मनुष्य। हमने क्षत्राणियों का दूध पिया है और हमारी नाड़ियों में क्षत्रियों का रक्त बह रहा है। सुख, समृद्धि, राज्य, धन, स्त्री, पुत्र, इन सबसे पहले हमें अपनी प्रतिष्ठा, आत्मसम्मान तथा अपनी आन प्यारी हैं। यदि यही नहीं रहे तो अन्य वस्तुओं का हमारे लिए क्या उपयोग ? आपने नहीं देखा कि इस पत्र में हमें किस प्रकार अपमानित किया गया है। क्या क्षत्री होकर हम इस अपमान को सहन कर सकते हैं ? क्या शरणागत को शत्रु के हाथ सौंप दे सकते हैं ? क्या अन्याय और अत्याचार करने वाले सैनिकों को मुक्त करके अपने न्याय के नाम में हम बट्टा लगा सकते हैं ? क्या इस न्यायपरायणता को अपराध मान कर हम शत्रु से क्षमायाचना कर सकते हैं ? नहीं, पण्डित जी, ऐसा कभी न हो सकेगा। चाहे मदनसिंह की सेना हम पर आक्रमण करे और चाहे बादशाह की, चाहे युद्ध में हमें पराजित होकर सर्वस्व अर्पण करना पड़े, चाहे विजय का सेहरा सर पर चढ़े, अपमान का एक ही उत्तर है, एक ही बदला है—युद्ध ! हम परिणाम की ओर नहीं देखते। हम देखें भी क्यों ? हम जो कुछ करते हैं, वह परिणाम के लिए नहीं करते, वरन् अपनी आन के लिए करते हैं; यही हमारी राजपूती है, यही हमारा क्षत्रियत्व है। अभी तक इसे हमने निभाया है, और अब भी इसे निभाएँगे। अभी तक, छोटा राज्य रहते हुए भी, हमने किसी का अपमान सहन नहीं किया, और न अब करेंगे।'

मोहनसिंह ने बड़े जोश के साथ यह वक्तृता दी। सारे सभासद हर्ष-ध्वनि करने लगे। पण्डित जी से आगे कुछ न कहते बना। कुछ काल बाद ही सारे सभासदों की तलवारें खटखटा रही थीं, परन्तु पण्डित जी के दाँत कटकटा रहे थे।

३

अजयगढ़ की सीमा पर मदनसिंह की सेना का पड़ाव पड़ गया। मोहनसिंह की सेना ने भी सारे उत्साह, सारी शक्ति और सारी वीरता के साथ युद्ध की तैयारी की। उसकी सेना भी शत्रु से मोरचा लेने के लिए सीमा पर आ गई। परन्तु युद्ध केवल इन दो शक्तियों—दो ज़मींदारों में ही नहीं था। यदि ऐसा होता तो मदनसिंह की पराजय अवश्यम्भावी थी, क्योंकि यद्यपि उसकी सेना संख्या में बड़ी थी, परन्तु सभी सैनिक विश्वासपात्र और अपने राजा के लिए सर्वस्व निछावर कर देने वाले न थे। यह हाल मोहनसिंह की सेना का न था। उसकी सेना का एक-एक सैनिक अपने स्वामी के

लिए मर मिटने को तैयार था। प्रत्येक सिपाही युद्ध में इस भाव को साथ लेकर आया था कि मानो युद्ध उसी के लिए लड़ा जा रहा था और युद्ध की पराजय या विजय उसी की पराजय या विजय होगी।

परन्तु युद्ध इन दो शक्तियों में ही न था। मदनसिंह की सहायता के लिए औरङ्गज़ेब की सेना की एक टुकड़ी भी आई थी। ये सैनिक बड़े नृशंस तथा अत्याचार-प्रिय थे। यही नहीं, ये शूरों की नीति का पालन भी न करते थे। धोखे से, दग़ा से, जाल से, सच-झूठ से, किसी न किसी प्रकार इन्हें शत्रु को पराजित करने का ही विचार रहता था। इन्हीं के साथ मदनसिंह ने मोहनसिंह के राज्य पर धावा बोल दिया। दोनों ओर की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ, परन्तु मोहनसिंह की सेना दो सेनाओं की सम्मिलित शक्तियों का सान्मुख्य बहुत देर तक न कर सकी। पहले तो उन्होंने मदनसिंह की सेना के छक्के छुड़ा दिए थे, परन्तु पीछे उनके पैर उखड़ने लगे और एक-एक करके प्रायः सभी विख्यात सेनापति काम आ गए।

मदनसिंह की सेना ने गढ़ को अपने अधिकार में कर लिया। मोहनसिंह, राजकुमार और मीरा क़ैद कर लिए गए। मोहनसिंह के सभासदों को यह आशङ्का न थी कि पराजय होने पर गढ़ की सरदारी मदनसिंह को छोड़ कर किसी अन्य व्यक्ति के हाथ में जायगी। इसीलिए स्त्रियों ने जौहर की प्रथा का अनुसरण नहीं किया था। वे समझते थे कि मदनसिंह है तो आख़िर क्षत्री ही और वह क्षत्राणियों की प्रतिष्ठा भङ्ग करने का दुःसाहस कभी न करेगा। परन्तु हुआ विपरीत। गढ़ मदनसिंह ने जीता था, परन्तु गढ़ का आधिपत्य उसके हाथ में न रहा। मुसलमानी सेना के नायक, अब्दुलसत्तार ने गढ़ की हुकूमत की बागडोर अपने हाथों में ली। वह बड़ा निर्दय और कामी पुरुष था। क़ैदियों के साथ बर्बरता और पशुता का व्यवहार करने के लिए वह प्रसिद्ध था। स्त्रियों के सतीत्व-हरण के लिए भी उसे सब जानते थे। उसका मुख देख कर और यह जान कर कि गढ़ पर उसका आधिपत्य था, मोहनसिंह के क़ैद किए गए नौकर अपना-अपना हृदय थाम कर रह गए। उन्हें सबसे बड़ी चिन्ता अपने महाराज, राजकुमार तथा राजकुमारी की थी। ये सब सत्तार के क़ैदी थे।

सत्तार अकेला एक कमरे में बैठा और क़ैदियों को सामने आने के लिए उसने नौकरों को आज्ञा दी। जिससे उसके पैशाचिक कृत्यों में विघ्न न पड़े, उसने मदनसिंह को भी उस कमरे में नहीं रक्खा था। मोहनसिंह और उनके बच्चे उसके सामने लाए गए।

'सो, तुम मोहनसिंह हो?'—सत्तार ने एक विकट और भयानक हँसी हँस कर मोहनसिंह की ओर देखा।

मोहनसिंह ने कुछ न कहा। छाती को तान कर उसी प्रकार वह खड़ा रहा।

'अब भी अभिमान बाक़ी है?'

'है।'

'पराजित होकर भी?'

'इसका नाम पराजय नहीं है।'

'फिर पराजय क्या है?'

'शत्रु का लोहा मान लेना।'

'अभी अरमान बाक़ी हैं?'

'अभी अरमान निकले ही कहाँ हैं? मेरे सैनिक वीरतापूर्वक लड़ कर धराशायी हुए, लेकिन उन्होंने पीठ पीछे नहीं फेरी। मैं जब तक जीवित हूँ, कोई यह नहीं कह सकता कि अजयगढ़ पराजित हो गया!'

'पराजित होने का इरादा है?'

'कभी नहीं!'

'यदि मैं नीचा दिखा कर पराजित कर दूँ, तो?'

'यह हो नहीं सकता। किसी प्रकार का नीचा देखने से पूर्व मैं भी वीरता से धराशायी हो जाऊँगा।'

'वह नीचा नहीं।'

मोहनसिंह का माथा ठनका। जिस बात की वह आशङ्का कर रहा था, वही सत्तार के मुँह से निकलने वाली थी। वह चुप रहा।

'सुना नहीं, उस तरह का नीचा नहीं। मैं अपना क़ैदी पहचान जाता हूँ। तुम्हारे लिए दूसरी तरह का नीचा दिखाने का इरादा है।'

'मेरे जीते जी नहीं!'

'अभी तक मुग़लों से बचा कौन है? सभी राजपूत, किसी न किसी रूप में, अपनी स्त्रियाँ मुग़लों को दे चुके हैं। तुम्हारी क्या हस्ती है, जो सब से अलग रह सको। यह तुम्हारी बला की ख़ूबसूरत लड़की......।'

'ख़बरदार, जो लड़की का पवित्र नाम अपनी अपवित्र जिह्वा से लिया तो !'

'इसमें क्या बिगड़ेगा ? मैं उसे अपनी बेगम बना लूँगा। तुम्हारी रियासत तुम्हें ज्यों की त्यों वापस कर दी जायगी।'

'मैं तुम्हारे पापी-मुख से ऐसी कोई भी बात नहीं सुनना चाहता।'

सत्तार ने मानो इस बात पर कुछ ध्यान ही न दिया हो। वह आगे बढ़ कर मीरा की ओर चला। मीरा के पास पहुँच कर उधर हाथ बढ़ाना ही चाहता था कि मीरा दहाड़ कर बोली—ख़बरदार, नारकी कुत्ते, यदि एक क़दम भी आगे बढ़ा।

सत्तार खिलखिला कर हँस पड़ा। उसने मीरा के तेज को नहीं पहचाना। उसके शब्दों में जो ज़ोर था, उसका अन्दाज़ा सत्तार को न लगा। जिसने पहले कभी अग्नि की लपकों की तेज़ी का अनुभव नहीं किया, वह उस ओर निधड़क बढ़ा चला जाता है और फलतः अपने शरीर को जला लेता है। उसी प्रकार जिन पुरुषों ने स्त्रियों के तेज और सतीत्व के प्रताप का कभी अनुभव नहीं किया, वह उनकी बात को मज़ाक़ या खेलवाड़ समझ बैठता है। सत्तार भी यही सोच कर हँसता हुआ आगे बढ़ा। वह मीरा के शरीर पर हाथ रखना ही चाहता था कि पीछे से मोहनसिंह ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। इतने ही में सत्तार ने इशारा किया और कई सशस्त्र नौकर दोनों ओर से कमरे के भीतर आ गए।

'देखा, मैं बिलकुल ही अकेला नहीं हूँ।'—सत्तार बोला।

'इसकी मुझे चिन्ता नहीं। जब तक मेरा वश है, मैं तुझे दण्ड देने का प्रयत्न करूँगा।'—मोहनसिंह ने वीर वाणी में कहा।

'इसके हाथ बाँध दो।'—कह कर सत्तार ने अपने दो नौकरों से मोहनसिंह को बँधवा कर एक ओर डलवा दिया। नौकर चले गए। फिर सत्तार मीरा की ओर बढ़ा।

'मुझसे हाथ न लगाना, राक्षस !' कह कर मीरा एक ओर को हटी।

'तुम मेरी क़ैदी हो। मुझे सब कुछ करने का अधिकार है।'

'कभी नहीं।'

'आख़िर इस रूप को लेकर कहाँ जाओगी ? हम लोग ही तो इसकी इज़्ज़त जानते हैं।'

यह कह कर सत्तार ने मीरा का हाथ पकड़ लिया। मीरा हाथ छुड़ाने के लिए जूझी ही थी कि राजकुमार मीरा और सत्तार के बीच आ गया। उसका मुख क्रोध से लाल हो रहा था। उसका श्वास वेग से चल रहा था। उसने अपने छोटे-छोटे हाथों से सत्तार की कलाई पकड़ ली और एक लात उसके पेट में देकर बोला—दुष्ट, मेरी बहिन से, मेरे रहते, हाथ लगाने का साहस ?

राजकुमार के नेत्रों में कुछ ऐसी ज्योति थी कि सत्तार कुछ देर तक तो किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर उसकी ओर देखता रहा। जब वह सँभला तो उसे एक लड़के द्वारा अपना अपमान बहुत अखरा।

'एक तरफ़ हट जा, लड़के, नहीं तो तलवार के घाट अभी उतार दूँगा।' सत्तार ने बड़े क्रोध से कहा।

राजकुमार हटा नहीं। मोहनसिंह अपने पुत्र की इस वीरता पर हर्षित हो रहा था। परन्तु उसे कुछ भय हो रहा था कि कहीं सत्तार उस पर वार न कर दे। उधर मीरा का भी यही हाल था। हाँ, वह इतना अवश्य सोच रही थी कि कुमार की यह दशा उसी के कारण हो रही थी। अतः वह अपने को रोक न सकी। कहने लगी—कुमार, तुम एक ओर हट जाओ। मैं अपनी रक्षा स्वयं कर लूँगी।

कुमार ने नहीं सुना। वह वहीं खड़ा रहा। सत्तार के क्रोध का क्या ठिकाना था ? उसने मनुष्यता का तनिक भी विचार न किया। उसे दया नहीं आई। उसने तलवार निकाल कर कुमार को दिखाई।

'नहीं हटेगा सामने से ?'

'नहीं।'

'झन, झन !'

सत्तार की तलवार से दो टुकड़े हुआ कुमार का शरीर तड़पने लगा। मीरा ने 'हाय ! कह कर कुमार का शरीर अपनी गोद में रख लिया। मोहनसिंह अब तक बहुत दृढ़ था। परन्तु था तो वह मनुष्य ! उसका पितृ-प्रेम उमड़ आया। उसका एकमात्र पुत्र, उसके गृह

का प्रकाश, उसके राज्य की आशा का बध हो गया था। उसके नेत्रों की कोर में दो बूँदें आँसुओं की आ गईं। उसके हाथ-पैर बँधे थे। फिर भी वह सरक-सरक कर पुत्र के शव की ओर को बढ़ा। सत्तार ने एक विकट हँसी हँसी और मोहनसिंह को एक लात मार कर उधर से एक ओर को हटा दिया।

'अभी तेरी रक्त की प्यास नहीं बुझी?'

'रक्त की प्यास? मैं रक्त का प्यासा नहीं, मैं तो रूप का प्यासा हूँ। जो कोई मुझे उस प्यास को शान्त करने से रोकने का उद्योग करेगा, उसी का रक्त मेरी तलवार पिएगी।'

मोहनसिंह एक ओर विवश पड़ा था। वह अपनी पुत्री की रक्षा के लिए कुछ भी नहीं कर सकता था। सत्तार ने उसकी इस विवशता से लाभ उठाना चाहा। उसे यह विश्वास हो गया कि राजपूत-कुमारियाँ जब धर्म की रक्षा करने पर तुल जाती हैं, तो वे अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करतीं। इसलिए उसने दूसरा उपाय सोचा।

'देखो, राजकुमारी, यदि तुम इस प्रकार मेरी बात न मानोगी तो मैं फिर और उपाय काम में लाऊँगा।' वह मीरा से बोला।

'मैं इस बात की चिन्ता नहीं करती, मैं प्राण भी दे दूँगी, परन्तु तुझ जैसे कुत्ते की कुत्सित कामना की ओर ध्यान भी न दूँगी।'—मीरा ने गरज कर कहा।

'नहीं मानोगी?'

'नहीं, कभी नहीं।'

'क्या तुम्हें अपने पिता का प्राण प्यारा नहीं?'

मीरा समझ गई कि सत्तार का क्या अर्थ था। उसने पिता की ओर दृष्टि डाली। उसके लिए भाई का प्राण गया था। क्या पिता का भी प्राण उसके लिए जायगा। उसका हृदय विचलित होने लगा, उसके नेत्र आँसू बहाने की तैयारी करने लगे। उसका मुख चीत्कार करने पर तुल गया। हम अपने कष्टों को वीरतापूर्वक सहन कर सकते हैं, परन्तु यदि हमारे लिए, हमारे कारण, हमारे निकटतम बन्धुओं को कोई हमारे सामने ही पीड़ा देता है, तो हम सिहुर जाते हैं, हमारी वह वीरता लुप्त-प्राय हो जाती है, यह मनुष्य-स्वभाव है। मीरा क्षत्राणी थी, वीरा थी, प्राणों का मोह करना उसने सीखा नहीं था। परन्तु थी वह मानवी। कातर दृष्टि से उसने पिता की ओर देखा। मोहनसिंह के मुख पर सत्तार ने कपड़ा बाँध दिया था। वह कुछ कह नहीं सकता था, परन्तु नेत्रों के इशारों से उसने मीरा को दृढ़ रहने के लिए कह दिया।

'बोलो, क्या पिता का प्राण बचाना नहीं चाहती हो? क्या तुम्हारी यह इच्छा है कि तुम्हारे अभिमान और तुम्हारी आन के पीछे तुम्हारे पिता का मेरे हाथों से बध हो? बोलो, क्या पिता को बचाना नहीं चाहती हो?'

'नहीं।'—मीरा ने पिता की ओर एक बार फिर देख दृढ़तापूर्वक कहा।

'यह सौदा है, एक चीज़ बचा सकती हो तुम। या तो अपने आपको या अपने पिता को। तुम्हारे इस दुराग्रह का मूल्य तुम्हारे पिता को, तुम्हारे सामने ही, चुकाना पड़ेगा।'

'हम दोनों ही मूल्य चुकाने को तैयार हैं, मैं तुमसे कहे देती हूँ कि मैं अपने पथ से कभी भी विचलित न हूँगी। इसके बदले तुम मेरा और पिता का प्राण ले सकते हो।'

'तुम्हारा प्राण? तुम्हारे प्राण की मुझे आवश्यकता नहीं है। मैं तो तुम्हारे पिता का बध तुम्हारे नेत्रों के सामने ही करके आनन्द उठाना चाहता हूँ। उसकी लाश को तड़पते देख कर और तुम्हें कलपते देख कर ही मेरा बदला पूरा हो सकता है।'

मीरा ने कुछ कहा नहीं। वह आँखें बन्द करके ईश्वर से दृढ़ता के लिए प्रार्थना करने लगी।

सत्तार ने मोहनसिंह के शरीर को अपनी ओर खींच लिया और तलवार खोल कर खड़ा हो गया।

'अब भी नहीं?'—उसने पूछा।

'नहीं।'—मीरा ने सर नीचा करके उत्तर दिया।

तलवार मोहनसिंह की भुजा में छिदी।

तलवार मोहनसिंह की जङ्घा में छिदी।

तलवार मोहनसिंह की छाती में छिदी।

मोहनसिंह शान्त पड़ा रहा, उसके शरीर का एक भी अवयव न हिला, उसके नेत्रों में एक भी आँसू न आया, उसके मस्तक पर एक भी शिकन न पड़ी। मीरा भी चुपचाप कोने में खड़ी रही। वह रोई नहीं, वह

चिल्लाई नहीं। सत्तार की पाशविक वृत्ति का वह वीभत्समय नाटक उसने दृढ़ता और साहस से देखा। कहीं से उसके हृदय में एक अपूर्व बल आ गया था, एक अपूर्व शान्ति आ गई थी।

सत्तार ने मोहनसिंह के मुख से रूमाल उठा लिया, इसलिए कि शायद मोहनसिंह आहें भरे, सिसकारियाँ ले और सत्तार अपने कृत्य की सफलता पर प्रसन्न हो। परन्तु मोहनसिंह ने आहें नहीं भरीं। धीमे स्वर में वह बोला—मीरा!

'पिता जी!'—मीरा ने उत्तर दिया।

'मैं कुँवर के पास जा रहा हूँ। दुःख न करना। पथ पर दृढ़ रहना।'

'प्राण रहते तक।'

'एक प्रतिज्ञा करोगी?'

'कहिए।'

'यदि जीवित रहो तो कुँवर के रक्त का बदला लेना, क्षत्राणी का कर्तव्य निभा देना।'

'बदला लूँगी, पिता जी, या प्राण दे दूँगी।'

मोहनसिंह ने जब अन्तिम श्वास ली तो उसकी आकृति पर शान्ति, सन्तोष तथा उल्लास के भाव थे।

सत्तार इस दृश्य को देख कर प्रसन्न हो रहा था, मानो वह कोई हास्य-रस का नाटक देख रहा हो।

'बदला? बदला लोगी?'—वह हँस कर मीरा से बोला और उसकी ओर चला।

'मेरे पास आया तो रक्त पी लूँगी।'—मीरा ने कहा।

सत्तार ने कुछ ध्यान नहीं दिया। वह आगे बढ़ता ही गया। परन्तु ज्योंही वह मीरा के पास पहुँचा, मीरा ने एक लात उसकी छाती में इतने ज़ोर से लगाई कि वह चारों कोने चित पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गए। उसकी पगड़ी एक ओर जा पड़ी। उसके नेत्रों के सुरमे के स्थान पर छोटे-छोटे घाव हो गए। दाढ़ी को ठीक करता हुआ वह कुछ देर बाद उठा। उसने ताली बजाई और फ़ौरन ही कई सिपाही वहाँ आ गए।

'बस एक ही लात में भूल गई सारी बहादुरी?'—मीरा बोली।

'इसका मूल्य तुम्हें चुकाना पड़ेगा।'—सत्तार बोला।

'इतने आदमियों द्वारा मूल्य लेगा, निकम्मा, कापुरुष! यदि साहस है तो अकेला आ। एक स्त्री से इतना भय?'

सत्तार ने लज्जित होकर सिपाहियों को बाहर भेज दिया। वह सारा साहस सञ्चित करके मीरा की ओर बढ़ा।

'तेरे हाथ में तलवार है। मेरे हाथ में यदि एक छुरी ही होती तो तुझे बता देती।'

सत्तार ने ध्यान न दिया। वह मीरा के पास पहुँच कर ज्योंही वार करना चाहता था कि पीछे से किसी ने उसके हाथ से तलवार छीन कर उसके मुख पर रूमाल बाँध दिया।

४

दूसरे दिन मीरा अपने राज्य से दूर एक दूसरे ही राज्य में बैठी थी। इसी राज्य के राजकुमार विजयसिंह के साथ मीरा की मँगनी हो चुकी थी। मोहनसिंह और मदनसिंह के युद्ध की सूचना विजयसिंह को मिल चुकी थी। विजयसिंह का राज्य मोहनसिंह के राज्य से भी छोटा था। विजयसिंह अपनी छोटी-सी सेना लेकर मोहनसिंह की सहायता के लिए निकले थे, परन्तु वहाँ पहुँचने के पूर्व ही मोहनसिंह की पराजय हो चुकी थी। विजयसिंह की सेना की यह सामर्थ्य न थी कि अकेले वह मदनसिंह और सत्तार की सेना के साथ युद्ध करते। अतः उन्होंने कौशल से अजयगढ़ में प्रवेश किया। वह मीरा के लिए विशेष चिन्तित थे, अतः उन्होंने मुसलमान का रूप धारण कर, अब्दुल सत्तार के यहाँ गति पाई और कौशल से मीरा का उद्धार किया।

मीरा ने विजयसिंह का नाम सुना था, परन्तु कभी उन्हें देखा नहीं था। अभी तक विजयसिंह ने अपनी मुसलमानी पोशाक नहीं उतारी थी। मीरा कुछ आराम कर चुकी थी और कमरे के सामने लगे हुए छोटे-से बाग़ की घास पर बैठी हुई थी। कुँवर मुसलमानी पोशाक में ही वहाँ आए।

मीरा कुँवर को उस वेश में देख कर चौंक पड़ी और एक ओर को हो गई। वह विस्मय कर रही थी कि वह मुसलमान वहाँ कहाँ से आ गया।

'यहाँ आप क्या कर रहे हैं?'—मीरा ने पूछा।

'यह मेरा घर है।'

'आपका घर ?'

'हाँ।'

'आप कौन हैं ?'

'पहचान नहीं सकती हो ?'

'एक मुसलमान को मैं पहचान कैसे सकती हूँ ?'

'कल मैंने ही आपकी रक्षा की थी।'

'आपने ?'

'हाँ।'

'तो क्या मैं यहाँ फिर एक मुसलमान की बन्दी हूँ ?'

'नहीं !'

'तो किसकी बन्दी हूँ ?'

'किसी की भी नहीं।'

'मुझे यहाँ से जाने दीजिए !'

'कहाँ को ?'

'कहीं को भी, जहाँ मेरा जी चाहेगा।'

'क्यों ?'

'एक क्षत्राणी इस प्रकार एक मुसलमान के घर में नहीं रह सकती।'

'और यदि यह घर एक क्षत्री का हुआ ?'

'इसका अर्थ ?'

'इसका अर्थ है यह......।'—कह कर विजयसिंह ने पगड़ी और दाढ़ी उतार दी।

'एक क्षत्री !'—मीरा चिल्ला उठी !

'हाँ, मीरा !'—कुँवर बोले।

'मेरा नाम आप जानते हैं ?'

'तभी तो रक्षा की थी।'

'क्यों मेरी रक्षा की थी आपने ? मुझे भी क्यों न वहीं मर जाने दिया।'

'तुम्हें मरने का पूरा अधिकार तो नहीं है, मीरा !'

'क्यों ?'

'क्या तुम पर किसी और का अधिकार नहीं है ?'

'कुछ-कुछ।'—मीरा ने शिर नीचा करके कहा।

'उसी अधिकार से तुम्हारी रक्षा की है, मीरा !'

'कुँवर ?'—मीरा ने चौंक कर कहा, मानो कोई भूकम्प आ गया हो।

'हाँ, मीरा, मैं विजयसिंह हूँ।'

मीरा वहाँ से लज्जित होकर एक ओर को जाने लगी।

'कहाँ चल दीं ?'

'आपसे छिपने के लिए।'

'अब नहीं, मीरे ! अब कहाँ जाकर छिपोगी ?'

'कोई स्थान तलाश कर लूँगी।'

'पहले से स्थान खोजा नहीं था ?'

'आप क्या जानते नहीं हैं, कुँवर ?'

'अच्छा, आज न छिपो। तुम उदास हो, इतनी विपत्तियाँ देख कर आई हो। तुम्हें कुछ विश्रान्ति की आवश्यकता है। चलो थोड़ी देर नाव ही खेलें।'

'चलिए।'

कुँवर और मीरा, दोनों, नाव में बैठ कर नदी की सैर करने लगे। कुँवर नाव खे रहे थे और मीरा उनके सामने बैठी थी। सन्ध्या का सुहावना समय था। सूर्य देव धीरे-धीरे अपना मुख आँचल में छिपा रहे थे। शीतल समीर बह रहा था। ऐसे सुहावने समय में मीरा अपना दुख भूल गई। नीरव, निस्तब्ध वे दोनों बहे चले जा रहे थे। कुँवर ने वह शान्ति भङ्ग की।

'मीरा !'

'कुँवर !'

'यदि यह दुर्घटना न होती तो कुछ ही दिनों में हम एक दूसरे के हो गए होते।'

दुर्घटना की बात ने मीरा के हृदय में चोट सी लगा दी। उसके नेत्रों से दो बड़े-बड़े आँसू टपक पड़े। धीरे से बोली—हाँ, कुँवर, परन्तु शायद भगवान को यह स्वीकार न था।

'रोओ मत, मीरा ! समय का हेर-फेर है। कभी कुछ, कभी कुछ। कभी फिर अच्छा समय देखने को मिलेगा।'

'मिलेगा, कुँवर ?'

'क्यों नहीं ?'

'मुझे सन्देह है।'

'जब हम दोनों एक हो जायँगे, तो......'

'एक हो जायँगे तब न ? परन्तु इसी में तो मुझे सन्देह है।'

'सन्देह ? तो क्या तुम इस विवाह के लिए अपनी स्वीकृति न दोगी ?'

'अभी नहीं, कुँवर।'

'फिर कब ?'

'शायद कुछ महीनों में, शायद कुछ वर्षों में, शायद कभी नहीं।'

'क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है? या मुझमें कोई दोष है? या मुझे तुम प्रेम कर ही नहीं सकतीं?'

'यह बात नहीं है, कुँवर! मेरे ऊपर तुम्हारा बड़ा एहसान है। तुमने मेरी रक्षा की है, मुझे अत्याचार से बचाया है। तुम इतने सहृदय हो, गुणवान हो, और फिर, आज से नहीं, महीनों पूर्व से मैं तुम्हें......।'

'मीरा!'—कह कर कुँवर ने उसकी ओर देखा। आँखों ने कोई प्रश्न पूछा। मीरा ने भी आँखों द्वारा ही उत्तर दे दिया—हाँ, कुँवर, यह ठीक है।

'फिर क्या बात है?'

'मैं विवाह का विचार भी कैसे कर सकती हूँ?'

'क्यों?'

'मेरी प्रतिज्ञा! पिता की मृत्यु के समय मैंने भाई के रक्त का बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी। सत्तार की छाती में जब तक छुरी नहीं भोंकती, तब तक विवाह-सुख, विलास, ये सब मेरे किस काम के? मेरा इस समय केवल एक ध्येय है—बदला, बदला, बदला! मैं चारों ओर भाई की 'तड़पती हुई' लाश देखती हूँ, मेरा रक्त खौल उठता है। जब पिता जी की मृत्यु का दृश्य याद आता है तो प्रतिहिंसा की भावना प्रबल हो जाती है। पहले मेरे लिए बदला है, पीछे विवाह, कुँवर।'

'क्या यह कार्य मुझे न सौंपोगी, मीरा? मैं प्रतिज्ञा कर सकता हूँ कि जब तक मैं तुम्हारे भाई के रक्त का बदला न ले लूँगा, तब तक विवाह की बात न छेड़ूँगा।'

'तुम इसे नहीं कर सकते, कुँवर! इस कार्य के लिए बड़ी शक्ति का सामना करना पड़ेगा। तुम वह न कर सकोगे। अपने लिए मैं तुम्हें और तुम्हारी प्रजा को नष्ट नहीं करना चाहती। यह कार्य वर्षों ले लेगा, शायद है कि पूरे जीवन भर भी न हो सके। फिर भी, मैं स्वयं उद्योग करूँगी। तुम इसमें न पड़ो।'

'यह नहीं हो सकता। जहाँ तुम, वहीं मैं, यदि अधिकार के भाव से नहीं, तो कम से कम आतिथ्य की नीति के भाव से सही। तुम्हारी रक्षा का भार मेरे ऊपर है। अतः तुम्हारी सहायता का भार भी मेरे ही ऊपर है।'

'परन्तु मैं प्रतिज्ञा-बद्ध हूँ, तुम तो प्रतिज्ञा-बद्ध नहीं हो। मान जाओ कुँवर! मैं सब कुछ खो चुकी हूँ, अब तुम कुछ अपने कहाने वाले रहे हो, तुम अपने ऊपर यह ख़तरा न लो।'

'तुम अकेली क्या कर सकोगी?'

'मैं क्षत्राणी हूँ, कुँवर! यही मेरे लिए काफ़ी है। क्षत्राणी का कर्तव्य प्रतिज्ञा का पालन करना होता है।'

'मैं भी क्षत्री हूँ, मीरा! एक क्षत्री प्राण रहते, एक क्षत्राणी युवती को इस प्रकार युद्ध में नहीं भेज सकता!'

'युद्ध करोगे?'

'हाँ मीरा! उद्योग करूँगा, फल चाहे कुछ भी हो। सत्तार का रक्त तुम्हारे सामने रखना है।'

'अकेले युद्ध में जाओगे, कुँवर?'

'हाँ, मीरा!'

'यह नहीं हो सकेगा।'

'फिर?'

'मीरा साथ जायगी।'

'यह नहीं हो सकता, मीरा! यह क्षत्री का धर्म नहीं है। जब तक पुरुषों के हाथ में तलवारें हैं, और उनका शिर उनके शरीर पर है, तब तक स्त्रियों को रण में ले जाना एक क्षत्री कभी सहन नहीं कर सकता।'

'अच्छा कुँवर! भगवान तुम्हें विजयी करें।' कह कर मीरा ने एक चाक़ू निकाला और अपनी अँगुली काट कर रक्त से कुँवर के मस्तक पर टीका कर दिया!

नाव महलों के पास तक आ पहुँची थी। कुँवर ने खेना बन्द कर दिया।

'कुँवर!'—मीरा बोली।

कुँवर ने मीरा की ओर देखा।

'कब मिल सकेंगे अब?'—मीरा ने पूछा।

'तुम मेरा स्मरण करोगी, मीरा?'

'पूछो मत, कुँवर! ओफ़, इस जीवन में तुमने कौन सा स्थान प्राप्त कर लिया है।'

'शायद तुम्हारी यह स्मृति मुझे विजयी बना कर फिर तुमसे मिला दे।'

'शायद यह अन्तिम मिलन हो!'

दोनों नाव से उतर कर महलों में चले गए।

५

कुँवर विजयसिंह का पड़ाव अजयगढ़ की सरहद पर पड़ा हुआ था। उसकी सेना में अनेकों ऐसे व्यक्ति सम्मिलित हुए थे, जो पहले मोहनसिंह की सेना में थे। अनेकों ऐसे व्यक्ति भी थे, जो कभी युद्ध-क्षेत्र में भी न गए थे और न जिन्हें युद्ध विषयक शिक्षा ही मिली थी। ये व्यक्ति केवल अपने स्वर्गीय राजा की मृत्यु का बदला लेने की भावना से ही सेना में सम्मिलित हुए थे।

कुछ दिनों में ही विजयसिंह ने सीमाप्रान्त के कई ग्रामों पर अपना अधिकार जमा लिया। सत्तार की सेना के लिए विजयसिंह का आक्रमण एक आश्चर्य था, क्योंकि उन्हें कभी यह आशा नहीं थी कि इतना छोटा ज़मींदार, सत्तार और मदनसिंह की सम्मिलित सेना का सामना करने आएगा। अतः वे निःशङ्क थे। उन पर विजयसिंह का धावा अचानक हुआ था। इसके अतिरिक्त सीमाप्रान्त की सारी प्रजा सत्तार के विरुद्ध थी। उनके राजा और राजकुमार की पाशविक हत्याओं के वृत्तान्त ने उनमें सत्तार के विरुद्ध प्रतिहिंसा की अग्नि प्रज्वलित कर दी थी। अतः वे विजयसिंह को बड़ी प्रसन्नता से, जैसी भी होती सहायता दे रहे थे।

पहली विजय के बाद विजयसिंह ने सेना का निरीक्षण किया। एक अल्पवयस्क सैनिक के पास जाकर वह ठहर गया। केवल इसी लिए नहीं कि वह अल्पवयस्क था, किन्तु इसलिए कि विजयसिंह को उसके प्रति कुछ अनुराग पैदा होने लगा।

'यह सैनिक कौन है?' उसने उस टुकड़ी के नायक से पूछा।

'यह इसी राज्य का रहने वाला नवयुवक है, कुँवर?'

'कब भर्ती हुआ था?'

'तीन दिन हुए।'

'आयु कितनी है?'

'सोलह वर्ष।'

'इतनी अल्पायु के सैनिक को तुमने भर्ती किया?'

नायक उत्तर दे भी न पाया था कि वह सैनिक बोल उठा--एक क्षत्री के लिए आयु का सवाल नहीं होता, महाराज!

विजयसिंह स्तम्भित हो गए। युवक के पास जाकर पूछा—तुम्हारा नाम क्या है?

'हरीसिंह।'

'माता-पिता हैं?'

'नहीं, महाराज! पिता जी का अन्त हमारे युद्ध में हुआ था, माता पहले ही संसार को छोड़ चुकी थीं।'

'तुम किस लिए युद्ध में आए हो?'

'अपने देश की रक्षा के लिए, महाराज, और राजकुमार की मृत्यु का बदला लेने के लिए!'

'तुम्हें प्राणों का मोह नहीं है?'

'एक क्षत्री को क्या प्राणों का मोह होना चाहिए, महाराज?'

विजयसिंह कुछ देर तक विचारते रहे, फिर टुकड़ी-नायक से पूछा—इस धावे में हरीसिंह ने भाग लिया था?

'जी हाँ, कुँवर!'

'कैसा काम किया था?'

'बड़ी वीरता का।'

'हरीसिंह को हमारी अर्दली में भेजो!'

हरीसिंह कुँवर की अर्दली का काम करने लगा। कई दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गए। एक दिन हरीसिंह विजयसिंह के साथ अकेला था। विजयसिंह ने उसे पुकारा।

'हरीसिंह!'

'महाराज!'

'तुमने पहले कभी मुझे देखा था?'

नहीं, महाराज, यहाँ मैंने आपको पहले कभी नहीं देखा।'

'मैंने तुम्हें पहले कभी देखा है?'

'मैं तो नहीं समझता, महाराज!'

'फिर क्या बात है कि मुझे रह-रह कर ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने तुम्हें कहीं देखा है।'

'कोई और होगा, महाराज। शायद कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसकी आकृति से मेरी आकृति कुछ मिलती है और जिसका स्मरण आपको बहुत हो।'

'है, हरीसिंह। इसीलिए तो मुझे आश्चर्य होता है। वह व्यक्ति बड़ी दूर है।' कह कर विजयसिंह ने एक आह भरी।

'क्या वह आपका भाई है ?' हरीसिंह ने पूछा।

'नहीं।'

'कोई मित्र है ?'

'नहीं, हरीसिंह, तुम अभी बच्चे हो, तुम उन बातों को न समझ सकोगे।'

'इतना तो समझता हूँ कि शायद वह व्यक्ति आपको बहुत प्यारा है।'

'प्यारा ! संसार में सबसे अधिक। उसी के लिए यह युद्ध हो रहा है।'

'वह बड़ा भाग्यशाली व्यक्ति है।'

'क्यों ?'

इसका उत्तर हरीसिंह दे भी न पाया था कि रण-भेरी बजने लगी। उसी समय एक नायक ने आकर समाचार सुनाया—कुँवर, सत्तार की सेना बढ़ी चली आ रही है। सत्तार स्वयं साथ है।

'आने दो। सबको आगे बढ़ने को कहो। आज ही घमासान युद्ध होगा। आज या तो सत्तार का रक्त लेंगे या सब प्राण दे देंगे।'

नायक चला गया।

'कुँवर, आप बड़े वीर हैं। मैं भी यदि इतना ही वीर होता।' हरीसिंह ने कहा।

'इसमें इतनी वीरता नहीं है, जितना प्रेम है, हरी-सिंह।'

हरीसिंह चुप हो गया और कुँवर को तलवार आदि पहनाने लगा। जब कुँवर का पूरा बाना तैयार हो गया, तो हरीसिंह अपना बाना भी पहनने लगा। विजयसिंह यह देख कर बोले—यह क्यों ?

'युद्ध के लिए।'

'तुम यहीं रहो।'

'यहाँ ? यहाँ मेरा स्थान नहीं है। कुँवर ! मैं आपके साथ चलूँगा।'

'हरीसिंह, मत चलो। मुझे तुम्हारा मुख देख कर बड़ा तरस आता है।'

'महाराज, यह अन्तिम भिक्षा दे दो ! न जाने आज क्या होगा ! सच्चा क्षत्रियत्व दिखाने की लालसा साथ ही चली जायगी।'

'अच्छा चलो, परन्तु पीछे रहना।'

दोनों ओर की सेनाओं में घमासान युद्ध होने लगा। विजयसिंह और उनके साथी उस अगणित सेना के साथ जी तोड़ कर लड़ रहे थे। मारो-काटो की ध्वनि चारों ओर से आ रही थी। विजयसिंह ने एक ओर के शत्रुओं की टुकड़ी को परास्त करके दूसरी ओर को मुख फिराया ही था कि वह क्या देखते हैं कि हरीसिंह सत्तार से जुट रहा है। विजयसिंह अपने घोड़े को दौड़ाते हुए उधर जा निकले। बीच में उन्हें मदन-सिंह मिल गया। दोनों के पैंतरे बदलने लगे। कभी मदनसिंह आगे रहता, कभी विजयसिंह। अन्त में मदन-सिंह को विजयसिंह ने पृथ्वी पर गिरा दिया, परन्तु स्वयं भी एक घातक आघात के शिकार हुए। पेट की अन्तड़ियाँ बाहर निकलने लगीं। विजयसिंह शिथिल होकर गिरने ही वाले थे कि उनकी दृष्टि फिर हरीसिंह पर पड़ी। हरीसिंह और सत्तार में अभी तक हाथ चल रहे थे। विजयसिंह की शिथिलता दूर हो गई। पेट पर एक हाथ रक्खे वे दौड़े। परन्तु उनके जाने के पूर्व ही हरीसिंह और सत्तार दोनों ही एक दूसरे के द्वारा आहत होकर धराशायी हो चुके थे।

जब विजयसिंह वहाँ पहुँचे तो देखा कि सत्तार का मृत देह पड़ा है और निकट ही हरीसिंह की छाती से रक्त की धार बह रही थी।

'हरीसिंह !' कह कर कुँवर ने हरीसिंह के सिर को एक हाथ से अपनी जङ्घा पर रख लिया, दूसरे हाथ से वे अब भी अपना पेट पकड़े हुए थे।

'कुँवर !' कह कर हरीसिंह ने धीरे-धीरे अपने सर की पगड़ी उतार दी। स्त्रियों जैसे बालों की एक लट खुल गई।

'मीरा !'—कुँवर चिल्ला उठे।

'हाँ, कुँवर ! मैं हूँ तुम्हारी मीरा !'

कुँवर के नेत्रों से आँसू बहने लगे।

'तुम रोते हो, कुँवर ? मेरे लिए तो यह बड़ा सौभाग्य का दिवस है। मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है और मैं एक क्षत्राणी की गति को प्राप्त हो रही हूँ।'

मीरा ने अपना हाथ कुँवर की ओर बढ़ाया। कुँवर ने अपने दुःख को भूल कर दोनों हाथों से मीरा का हाथ दबा लिया।

'मदनसिंह का क्या हुआ ?'—मीरा ने पूछा।

'मैंने उसे वध कर दिया।' कुँवर बोले।

'तुम तो सकुशल हो, कुँवर?'

'हाँ, मीरा मैं......।'

कुँवर पूरा न कह पाए। अँतड़ियाँ फिर बाहर निकलने लगीं। उन्हें शिथिलता फिर प्रतीत होने लगी।

'यह क्या, कुँवर! हाय, तुम्हारे वस्त्रों से रक्त निकल रहा है! तुम भी आहत हुए?' मीरा बड़े कष्ट से कह पाई!

'इसे आहत होना न कहो, मीरा, यह वीर गति को प्राप्त होना है। मैं एक सच्चे क्षत्री की मृत्यु मर रहा हूँ।' यह कह कर कुँवर मीरा की बग़ल में ही गिर पड़े। एक बार दोनों ने एक दूसरे की दृष्टि से दृष्टि मिलाई। जब वे अपने अन्तिम श्वास ले रहे थे, तो दोनों के मुख से एक-एक शब्द निकला।

'क्षत्री!'—मीरा ने कहा।

'क्षत्राणी!' कुँवर ने कहा।

जॉनबुल का खिलौना

आर्य-शासन के आदर्श

[प्रोफ़ेसर ज्वालाप्रसाद जी, साहित्याचार्य]

राजा की उत्पत्ति

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि सृष्टि के आरम्भ में जब मनुष्य उत्पन्न हुए, तो वे सर्वथा असभ्य थे। जङ्गलों में घूमा करते और फलादि खाकर उदर-पूर्ति कर लिया करते थे। उनकी सभ्यता की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ ही साथ उनकी आवश्यकताएँ भी बढ़ती गईं। उन्होंने हथियार बनाए और शिकार खेल कर अपना जीवन-निर्वाह सुगमता से करने लगे। क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक जन्तु है, अतः समाज के बिना उसका जीना दुस्साध्य है। मनुष्य क्या, पशु-पक्षी भी अपना समाज बना कर रहते हैं, अतः वह भी अपना समाज बना कर रहने लगा। क्रोध, घृणा और मत्सरता आदि अनेक मनुष्य के ऐसे स्वाभाविक गुण हैं, जिनके वशीभूत होकर वे परस्पर एक-दूसरे के शत्रु बन जाते हैं और सदा अपने प्रतिपक्षी से बदला लेने के लिए उद्यत रहते हैं। जैसे-जैसे उन समाजों में यह प्रवृत्ति बढ़ती गई, वैसे ही वैसे पारस्परिक कलह भी ज़ोर पकड़ती गई। फल यह हुआ कि उन्हें इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि वे अपने समाज में से किसी एक को अपना मुखिया बनावें, जो उनके समाज का प्रबन्ध सुचारु रूप से करे और जिसकी अधीनता में रह कर वे अपने शत्रुओं का सामना अच्छी तरह कर सकें। इस तरह भिन्न-भिन्न समाजों के भिन्न-भिन्न नायक निर्वाचित हुए, जो शनैः-शनैः अपने-अपने समाज के स्वामी बन बैठे और इस तरह राजतन्त्र की नींव पड़ी।

इस विषय में आर्ष ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न मत वर्णित हैं। वैदिक मत ऐतरेय ब्राह्मण में पाया जाता है। उसमें प्रतिपादित है कि आरम्भ में आर्यों का कोई राजा न था। असुरों के साथ युद्ध करते हुए जब वे बार-बार पराजित होने लगे, तब वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हमारी पराजय का कारण यही है कि हमारा कोई नायक नहीं है। असुरों का नायक है, इसीलिए वे लगातार सफल हो रहे हैं। अतः उन्होंने इसी अनुभव को कार्य-रूप में परिणत करने का प्रयत्न किया और सर्व-सम्मति से राजा निर्वाचित किया गया। इससे इस मत की पुष्टि होती है कि आरम्भ में आर्यों का शासन-विधान अराजक था। राजा के निर्वाचन का पाठ उन्होंने द्राविड़ों से सीखा। इस मत में ऐतिहासिक सत्यता का अंश चाहे कितना ही हो, किन्तु यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि आदिम काल में राजा निर्वाचित हुआ करता था।

महाभारत में भी अराजक शासन-विधान का वर्णन है। उसमें लिखा है कि आदिम काल में कोई राजा न था। प्रजा का पारस्परिक व्यवहार धर्मानुकूल होता था। मानवी शासक की आवश्यकता न थी। किन्तु पारस्परिक विश्वास की कमी के कारण यह विधान निभ न सका और राजा की उत्पत्ति हुई।

अराजक विधान वस्तुतः हिन्दुओं के मस्तिष्क से निकली हुई सर्व-श्रेष्ठ शासन-पद्धति थी। स्वर्गीय होगा वह राज्य, जिसमें प्रजा धर्म को शासक मानती होगी। मानव हृदय एक-दूसरे के प्रति करुणा एवं सहानुभूति से आप्लावित होगा। आज हम लोगों के लिए यह विधान कल्पना से बाह्य है। किन्तु सदा से ही भले और बुरे इस सृष्टि पर रहे हैं। देवताओं के साथ-साथ राक्षसों की भी अवतारणा यहाँ हुई। ख़ुद ख़ुदा को भी शैतान की साज़िशों का मुक़ाबला करना पड़ा। फिर यह स्वर्गीय शासन चलता तो कैसे चलता? प्रजा एक-दूसरे के ज़ुल्म से तङ्ग आ गई। जब अराजक शासन-पद्धति ही विप्लवकारिणी होने लगी, तब पाप एवं उत्तरोत्तर बढ़ती हुई क्रान्ति की रोक-थाम के लिए प्रजा ने एक सभा करके प्रस्ताव पास किए। समस्त जातियाँ पारस्परिक सहानुभूति के साथ रहने के लिए सहमत हो गईं, किन्तु स्वार्थियों की स्वार्थपरता एवं कुटिलों की कुटिलता के कारण जब पुनः जनता में असन्तोष की मात्रा बढ़ने लगी तब वे एक स्मृति-शास्त्रकार के पास गए और उसने उन्हें एक राजा को निर्वाचित करने की सम्मति दी।

राजा-निर्वाचन की पद्धति धीरे-धीरे लोप होने लगी और राजा को ईश्वर का विशेषांश माना जाने लगा। ईश्वर ने राजा को मनुष्यों के ऊपर शासन करने के लिए ही बनाया है, वह बड़ा देवता है, माननीय है, इत्यादि सिद्धान्तों का प्रचार होने लगा। मानव-धर्मशास्त्र में उपदेश किया गया है कि मनुष्य समझ कर बालक राजा का भी अपमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह कोई बड़ा देवता है, जो मनुष्य के रूप में स्थित है। राजा की उत्पत्ति के विषय में भी मनु का सिद्धान्त पूर्व-प्रतिपादित मतों से सर्वथा भिन्न है। वह कहते हैं कि जनता को अराजकता से बचाने के लिए ही परमात्मा ने राजा को उत्पन्न किया। उसने इन्द्र, यम, सूर्य, पवन, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर, इन सब श्रेष्ठ देवताओं के अंश से राजा को बनाया है, इसीलिए वह पराक्रम में सब प्राणियों से अधिक होता है। उन्होंने अपने राजा को देवता का स्वरूप दे दिया और उसे एक अनियन्त्रित शासक बना दिया। अपने प्रति घृणा प्रदर्शित करने वाले को राजा मनमानी सज़ा दे सकता था। वस्तुतः मनु महाराज ने अनियन्त्रित शासन-पद्धति का उपदेश किया।

मानव-धर्मशास्त्र का निर्माण शुङ्गवंशीय राजा पुष्पमित्र के समय में हुआ है। यह राजा गुप्त-वंशीय अन्तिम सम्राट वृहद्रथ को मार कर गद्दी पर बैठा था। सम्भव है, राजा के मारे जाने से प्रजा भड़क उठी हो और उसको शान्त करने के लिए ही राजा में देवता की कल्पना की गई हो। क्योंकि मनु के मत का समर्थन उसके पूर्व के साहित्य में कहीं नहीं मिलता। कुछ भी हो, इस समय से निर्वाचन की प्रथा उठ गई और राजा लोग अनियन्त्रित शासक हो गए।

राज्याभिषेक

उपरोक्त प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि वैदिक काल में राजा का निर्वाचन होता था। यह निर्वाचन समिति द्वारा होता था, जो वस्तुतः जनता के प्रतिनिधियों की एक परिषद थी। उसे ही राजा को निर्वाचन करने के पूर्ण अधिकार थे। निर्वाचन के मन्त्रों से ज्ञात होता है कि समिति चाहती थी कि उसका राजा अत्यन्त दृढ़ हो। वह राष्ट्र के शत्रुओं का सामना बड़ी दृढ़ता से करे और उन्हें पददलित कर दे। सब ओर उसका आदर हो।

यह नियम था कि एकत्रित हुए सदस्य एवं राजकार राजा को उसके सिंहासनारूढ़ होने से पहिले एक साङ्केतिक वलय प्रदान करते थे। यह साङ्केतिक चिह्न मणि या पर्ण कहलाता था। इन मणिदाताओं में कोषाध्यक्ष, सेनानी, ग्रामिणी इत्यादि सम्मिलित होते थे। राजा उस मणि को ग्रहण करके जनता की रक्षा के लिए प्रतिज्ञा करता था।

वैदिक काल का निर्वाचन वाह्य आडम्बर से शून्य था। उसमें जो कुछ भी किया जाता था, वह बहुत साधारण एवं व्यावहारिक रूप से। जनता एक मनुष्य को अपना स्वामी बनाती थी और उससे राष्ट्र के प्रति भक्ति रखने की प्रतिज्ञा कराती थी। इसके एवज़ में उसे कुछ विशेष अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान की जाती थीं।

ब्राह्मण-काल में आकर यह राज्याभिषेक की प्रथा कुछ अधिक श्रमसाध्य एवम् नैयमिक हो गई। नई-नई रीतियों का निर्माण हुआ। वाह्याडम्बर बढ़ा, किन्तु मूल में वही वैदिक काल की प्रथा रही। यह पद्धति उन्हीं विचारों का विकास-स्वरूप थी। इस काल में राज्याभिषेक की ऐसी पद्धति निर्मित हुई, जो सदा के लिए स्थिर हो गई। तब से प्रत्येक हिन्दू राजा का राज्याभिषेक इसी पद्धति के अनुसार होता रहा है। १७वीं शताब्दी के क़ानून बनाने वालों ने इस पद्धति को उन हिन्दू-राजाओं के लिए लिखा है, जिनका अभिषेक मुसलमान बादशाहों के राजत्व-काल में हुआ।

इस काल में अभिषेक का मुख्य संस्कार राजसूय यज्ञ माना जाता था। राजसूय यज्ञ करके ही राजा मनुष्य से राजा बनता था। इस राजसूय यज्ञ के तीन भाग होते थे। एक आहुति-दान, दूसरा राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा अभिषेचन और तीसरा पुरोहित द्वारा अभिषेचन।

यज्ञ-कुण्ड में आहुतियाँ देते समय राजा को ११ आहुतियाँ विशेष रूप से ११ रत्निन् के नाम की देनी पड़ती थीं। यह रत्निन् ही राजकार थे, और राजा को साङ्केतिक मणि दिया करते थे। उनमें सभी जातियों के मनुष्य शामिल थे, इससे ज्ञात होता है कि उस समय

प्रत्येक जाति को अपने-अपने प्रतिनिधि द्वारा राजा के निर्वाचन में सम्मति देने का पूरा-पूरा हक़ हासिल था। राष्ट्र द्वारा निर्वाचित इन रत्नों के प्रति राजा को बड़ी श्रद्धा एवम् भक्ति रखनी पड़ती थी। एक तरह उसको इन लोगों के अधीन होकर रहना पड़ता था।

अभिषेचन दो बार हुआ करता था। एक बार तो राष्ट्र द्वारा और दूसरी बार राजा के सिंहासन पर आरूढ़ होने से पहिले पुरोहित द्वारा। मित्रावरुणौ के अग्नि-कुण्ड के सामने सिंहचर्म्म बिछाया जाता था और राजा उस पर चरण रखता था। चार आदमी, जिनमें से एक ब्राह्मण, दूसरा राजा का सम्बन्धी, तीसरा क्षत्रिय एवं चौथा वैश्य हुआ करता था, क्रमशः उस पर जल छिड़कते थे, राजा उस समय एक धोती, एक डुपट्टा धारण किए हुए होता था और उसके शिर पर उष्णीश (पगड़ी) हुआ करती थी।

इस संस्कार के समाप्त हो जाने के पश्चात् राजा सिंहासन पर बैठता था, किन्तु ऐसा करने से पहिले उसे प्रजाहित की शपथ लेनी पड़ती थी। यह संस्कार महाभिषेक कहलाता था। यह शपथ बड़ी भयानक एवं कड़ी थी। राजा कहता था कि यदि मैं राष्ट्र को हानि पहुँचाऊँ, तो मेरे जीवन के सब शुभ कर्म, मेरा परलोक एवं मेरी सन्तान सभी नष्ट हो जायँ।

यह शपथ सर्वथा ध्यान देने योग्य है। इसमें कोई बात भी ईश्वर पर नहीं छोड़ी गई। शपथ करने वाले का हृदय बिल्कुल खुला हुआ है। मेरे विचार से इससे बड़ी शपथ हो ही नहीं सकती। जनता ने अपने अधिकार को ख़ूब समझा था। उसने ख़ूब हिला-झुला कर राष्ट्र का भार मानव हाथों में दिया था। इस पर भी जब वह सिंहासन की ३ सीढ़ियाँ चढ़ लेता था, तब फिर उसे ख़बरदार किया जाता था कि याद रखना, यह राष्ट्र कुशल-क्षेम एवं धनधान्य की वृद्धि के लिए तुम्हें सौंपा गया है।

इसके पश्चात् राजा चार घोड़ों के रथ में बैठ कर बड़ी शान के साथ नगर में घूमता था। मालूम होता है कि यह भी एक प्रकार की घोषणा ही थी, जिससे प्रत्येक आदमी को मालूम हो जाय कि अमुक हमारा राजा है।

भ्रमण से लौट कर राजा फिर सिंहासन पर बैठता था। उस समय उसके साथ एक विचित्र व्यवहार किया जाता था। राजा की पीठ धीरे-धीरे एक बेत से ताड़ित की जाती थी, जोकि न्याय-दण्ड का चिह्न कहा जाता था। इस व्यवहार से यह ध्वनि निकलती है कि वस्तुतः राजा भी धर्म का उल्लङ्घन नहीं कर सकता और यदि करेगा तो इस न्याय-दण्ड का अन्य मनुष्यों की तरह उसके लिए भी प्रयोग होगा।

इन सब बातों से सिद्ध होता है कि हिन्दुओं का शासन-विधान एवं उनके राजा-निर्वाचन की पद्धति आदर्श पद्धति थी। राज्य-भार ग्रहण करने से प्रथम राजा को प्रजाहित के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध होना पड़ता था। राज्याधिकार वस्तुतः एक धरोहर थी, जो उस मनुष्य को सौंपी जाती थी, जो उसकी भली प्रकार रक्षा कर सके। राजा को भी धर्म की आज्ञा माननीय थी। उच्छृङ्खल होने पर उसे अपने अधिकार से हाथ धोना पड़ता था।

बाद के समय में अभिषेक के नियमों में आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्त्तन कर दिए गए। रामायण में हम पढ़ते हैं कि राम के युवराजपद पर अभिषिक्त करने के प्रस्ताव को सुनने के लिए राजा दशरथ को परिषद् बुलानी पड़ी। महाभारत में भी हम देखते हैं कि महाराज युधिष्ठिर अभिषेक से पहिले अपने मन्त्रियों को नमस्कार करते हैं। उस समय भी मुख्यामात्य चतुष्टय, जोकि चारों वर्णों के थे, राजा का अभिषेक किया करते थे। राजा को भी हाथी पर बैठ कर नगर की प्रदक्षिणा करनी पड़ती थी! नियम सब वही थे, जो ब्राह्मणकाल में थे, किन्तु उनमें कुछ घटा-बढ़ी अवश्य हो गई थी। उस समय भी राजा को प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह प्रजा को ब्रह्म के समान समझ कर उसका पालन करेगा। जो धर्मयुक्त, नीतियुक्त एवं दण्ड-नीति के अनुकूल बात होगी, उसे वह करेगा। उद्दण्डता से कोई कार्य नहीं करेगा।

राज्याभिषेक की प्रथा दूसरी जातियों में भी है। उनमें राजा से शपथ ली जाती है, किन्तु शपथ में कोई भी जाति राष्ट्र की भलाई के लिए इतनी ज़िम्मेवारी राजा के शिर पर नहीं रखती, जितनी कि हिन्दू जाति। राष्ट्र से द्रोह करना मानो परमात्मा से द्रोह करना था। पहिले तो शपथ लेकर कोई राजा उसे भूलता न था।

यदि कोई अपनी शपथ नहीं निभा सकता था तो वह असत्यसन्ध कहलाता था और सिंहासन से उतार दिया जाता था। मृच्छकटिक नाटक का राजा पालक निरपराधी आर्यक को क़ैद करने के अपराध में सिंहासन से उतार दिया गया था। महाभारत में तो असत्यसन्ध राजा को इससे भी अधिक अर्थात् मृत्यु-दण्ड का भागी माना गया है।

राज-कर्त्तव्य

राजा को प्रतिज्ञा-बद्ध करके ही हमारे पूर्वज सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने राजा के कर्त्तव्य भी नियत कर दिए थे, जिन्हें न पालन करने वाले राजा को दण्ड देने तक का भी अधिकार नहीं था। मनु महाराज मन्त्रियों से हीन, मूर्ख, लोभी, नीतिशास्त्रानभिज्ञ एवं विषयी राजा को दण्ड देने का अधिकारी ही नहीं मानते।

राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए मनु भगवान बतलाते हैं कि राजा को प्रतिदिन प्रातःकाल उठ कर ऋक्, यजु एवं साम नाम वाली तीनों विद्याओं से अभिज्ञ तथा नीति-शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों की आज्ञा से कार्य करना एवं स्वाभाविक बुद्धि तथा अर्थशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करके नम्र होने पर भी उसे अधिक नम्र होने के विनय का अधिक अभ्यास करना चाहिए। उसे वेदज्ञ ब्राह्मणों से वेदत्रयी का अभ्यास करना एवं नीतिशास्त्र, तर्कविद्या, ब्रह्मविद्या, पशु-पालन तथा वाणिज्य को विशेषज्ञों से सीखना चाहिए। क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजा को वश में रख सकता है, अतः राजा का जितेन्द्रिय होना अनिवार्य है। राजा को लोभ, काम तथा क्रोध का त्याग करना चाहिए, क्योंकि इनसे ही आखेट, द्यूत-क्रीड़ा, दिवानिद्रा (दिन में सोना), परदोष-कथन, स्त्री-सम्भोग, मद्यपान-जनित मद, नृत्य, गीत, वादित्रादि में संलग्नता, वृथा भ्रमण, अविज्ञात दोष का आविष्करण, छल से प्राणियों का बध करना, ईर्ष्या, असूया, धन को ले लेना, पर देना नहीं, वाक्पारुष्य आदि अवगुण उत्पन्न होते हैं! मद्यपान, द्यूतक्रीड़ा, स्त्री-सम्भोग एवं आखेट को तो मनु भगवान् ने अत्यन्त दुख का कारण मान कर सर्वथा त्याज्य बतलाया है और व्यसनों में लिप्ति को तो मृत्यु से भी अधिक कष्टकर कहा है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी राजा के कर्तव्यों पर दृष्टि डाली गई है। उसमें लिखा है कि राजा को सदा कर्मण्य रहना चाहिए, क्योंकि राजा के कर्मण्य रहने से ही राज-कर्मचारी अपने-अपने काम पर तत्पर रहते हैं और प्रमादी नहीं होने पाते। आवश्यक कार्यों को स्वयं ही देखे तथा सुने, दूसरों पर टालने का प्रयत्न न करे। कार्य में संलग्नता, यज्ञ करना, कार्य-सम्बन्धी आज्ञा देना, दान देना, सबके साथ समान व्यवहार करना, दीक्षा-प्राप्त लोगों का अभिषेक करना आदि भी राजा के कर्तव्य बतलाए गए हैं। कौटिल्य ने लिखा है कि राजा अपनी सामर्थ्य के अनुसार रात-दिन का विभाग कर ले अथवा धूप-घड़ी की छाया के अनुसार दिन-रात को आठ भागों में विभक्त करे :—

(१) दिन के प्रथम भाग में राष्ट्र का प्रबन्ध करे एवं आय-व्यय विषयक बातें सुने।

(२) दिन के दूसरे भाग में नागरिकों एवं ग्रामीणों के कार्यों का निरीक्षण करे।

(३) दिन के तीसरे भाग में न केवल उसे स्नान तथा भोजन करना चाहिए, बल्कि स्वाध्याय भी करना चाहिए।

(४) दिन के चौथे भाग में स्वर्ण-मुद्रा के रूप में राजस्व प्राप्त करने के अतिरिक्त विभागाध्यक्षों की भी नियुक्ति करे।

(५) पाँचवें भाग में पत्र-सम्प्रेषण द्वारा मन्त्रि-परिषद का आह्वान करे एवं गुप्तचरों से गुप्त सूचनाएँ प्राप्त करे।

(६) छठे भाग में स्वच्छन्द आमोद-प्रमोद करे।

(७) सातवें भाग में हाथी, घोड़े, रथ एवं पदातियों का निरीक्षण करे।

(८) आठवें भाग में सेनापति के साथ सैनिक कार्य तथा आक्रमण सम्बन्धी विचार करे और दिन की समाप्ति पर सन्ध्या करे।

(१) रात के प्रथम भाग में गुप्तचरों से बातचीत करे।

(२) द्वितीय भाग में स्नान, भोजन तथा स्वाध्याय करे।

(३) तृतीय भाग में भेरी के शब्द के साथ ही सोने के कमरे में जाय।

(४-५) चतुर्थ तथा पञ्चम भाग में निद्रा का आनन्द लूटे।

(६) छठे भाग में भेरी के शब्द के साथ ही उठे, शास्त्र का एवं आवश्यक कार्यों का विचार करे।

(७) सातवें भाग में मन्त्रणा करे एवं गुप्तचरों को इधर-उधर भेजे।

(८) आठवें भाग में ऋत्विग्, आचार्य तथा पुरोहित के साथ स्वस्त्ययन पाठ करे। वैद्य, मुख्य पाचक तथा ज्योतिषियों से बातचीत करे, पश्चात् बछड़े सहित गाय की प्रदक्षिणा करके राज-दरबार को जाय।

यह थी हिन्दू राजा की दिनचर्या। स्वराष्ट्र की चिन्ता के अतिरिक्त उसे कोई अन्य चिन्तनीय विषय नहीं था। परिषद एवं मन्त्री ही उसका समय-विभाग नियत कर देते थे और उसी पर चलना उसके लिए अनिवार्य था। राजा की दिनचर्या का यह उच्चादर्श अन्य जातियों में ढूँढ़ने पर भी कदाचित् ही मिले।

राजा प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था। उसकी शिक्षा एवं भरण-पोषण का भार उसी पर निर्भर था। कौटिल्य ने लिखा है कि प्रजा के सुख तथा हित से ही राजा का सुख तथा हित है। उसे नहीं विचारना चाहिए कि जो काम मुझे अच्छे लगते हैं, वे अच्छे हैं। उसे तो प्रजा के मनोविनोद में ही अपना मनोविनोद समझना चाहिए। मन्दिर, आश्रम, संन्यासी, श्रोत्रिय, याज्ञिक, पशु, तीर्थस्थान, बालक, वृद्ध, रोगी, दुखी, अनाथ एवं स्त्री आदि की दशा वह स्वयं जाकर देखे एवं जो काम आवश्यक और महत्वपूर्ण हो, उसका सब से पहले ध्यान रक्खे। वस्तुतः रक्षा करने से ही क्षत्री एवं प्रकृतिरञ्जन करने से ही राजा माना जाता था।

राजा को प्रजा में सदाचार की वृद्धि के लिए प्रयत्नशील होना पड़ता था। इस कार्य के लिए वह कठोर नीति का भी अवलम्बन कर सकता था। राजा को कभी-कभी धर्म शिक्षक का भी कार्य करना पड़ता था। वह वर्ष में दो बार प्रजा को एकत्रित करके उपदेश देता था कि, "दीनों को भिक्षा दो, सत्यता का व्यवहार करो, अपने कर्तव्यों का धर्मपूर्वक पालन करो, युवावस्था में शिक्षा प्राप्त करो, धन एकत्रित करो, धूर्त एवं कुत्तों का सा बर्ताव मत करो, कठोर तथा निर्दय मत बनो, माता-पिता की सेवा करो तथा कौटुम्बिक जीवन में अपने बड़ों का आदर करो।

राजा लोग प्रजा के हित-साधन एवं शिक्षण के लिए अस्पताल, अनाथालय एवं कॉलेज आदि की स्थापना किया करते थे—इसका एक ज्वलन्त उदाहरण गन्तूर ज़िले के मलकापुरम ग्राम के शिलालेख में पाया जाता है। यह शिलालेख हमें काकतीय वंशज राजाओं एवं पाशुपत अध्याय का, जो राजपुरोहित गौड़ देशीय विश्वेश्वर शिवाचार्य से पहिले हुए थे, विस्तृत ऐतिहासिक वृत्तान्त बतलाता है। इस धर्माचार्य ने मण्डलम् में सार्वजनिक हित-प्रतिपादिनी संस्थाएँ खोलने के लिए कितने ही राजकीय उपहारों का व्यय किया था। ये संस्थाएँ थीं मन्दिर, मठ, सदावर्त-भवन, ब्राह्मण परिवाराधिवासन एवं शिवपुराण का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के स्कूल, जिनके साथ एक-एक अस्पताल एवं छात्रालय भी था। तीन अध्यापक वेदत्रयी एवं पाँच अध्यापक न्याय, साहित्य तथा वेदाङ्गों को पढ़ाते थे। मठ एवं सदावर्त-भवन का प्रबन्ध करने के लिए ६ ब्राह्मण सेवक थे। भोजनालय में ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक को हर समय भोजन दिया जाता था। ऐसी और भी बहुत सी धार्मिक संस्थाओं के दृष्टान्त शिलालेखों में पाए जाते हैं। इनसे सिद्ध होता है कि राजा लोग किस तरह स्वयं प्रजा-हित-चिन्तन करते हुए, उपहारादि देकर जनता को परोपकार के लिए प्रोत्साहित करते थे। वस्तुतः हिन्दू राजा प्रजा के प्रति अपने कर्तव्यों का यथावत् पालन करते थे। वे भले प्रकार समझते थे—"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।"

राज्य का सञ्चालन

इस कार्य में भी राजा स्वतन्त्र नहीं था। उसे राष्ट्र का सञ्चालन मन्त्रि-परिषद की सहायता से करना पड़ता था। वैदिक काल में तो समिति ही राजा का निर्वाचन करती थी। कौटिल्य ने लिखा है कि जब कोई असाधारण राज्य-कार्य आ अटके, तब राजा मन्त्रि-परिषद का आह्वान कर सम्मति पूछे और जो कुछ बहुमत से निश्चित हो उसे करे। मनु के अनुसार राजा को एकान्त में पृथक्-पृथक् मन्त्रियों की सम्मति लेनी चाहिए, पश्चात् सबको एकत्रित कर सलाह करे। बृहस्पति का तो यहाँ तक

कहना है कि धार्मिक कार्यों को भी राजा बुद्धिमानों की सम्मति से करे।

मनु भगवान ने लिखा है कि कुल-क्रमागत, शास्त्र-विद्, शूर एवं शास्त्रज्ञ, आठ मन्त्रियों को राजा नियुक्त करे। मालूम होता है कि शुक्रनीति के निर्माण-काल तक यह संख्या नियत हो चुकी थी और इसी आधार पर शिवाजी के अष्ट प्रधानों की रचना हुई थी। शुक्र-नीति के अनुसार अष्ट प्रधान यह हैं—(१) सुमन्त्र (Minister of Finance), (२) पण्डितामात्य (Minister of Law), (३) मन्त्रिन् (Home Minister), (४) प्रधान (President of Council), (५) सचिव (Minister of War), (६) अमात्य (Minister ef Revenue), (७) प्राड्विवाक (Minister of Justice), (८) प्रतिनिधि (Representative)। इसी नीति में दो और मन्त्री बतलाए गए हैं—(१) पुरोहित (Minister of Religion), (२) दूत (Minister of Diplomacy)।

यह प्रतिनिधि कौन था, यह बात विचारणीय है। मालूम होता है कि या तो यह पौर और जानपद का प्रतिनिधि था, जो परिषद् में रहता था अथवा परिषद का प्रतिनिधि था, जो राजा के प्रति परिषद् का प्रति-निधित्व करता था।

राजा सर्वदा परिषद की आज्ञा मानने के लिए बाध्य था। यदि वह इसके विरुद्ध कार्य करता था, तो वह राजा ही नहीं रहता था। महाभारत में लिखा है कि राजा कभी स्वतन्त्र नहीं होता, उसे सदा मन्त्रि-परिषद की अधीनता में रहना पड़ता है।

मन्त्रि-परिषद का कर्तव्य लिखते हुए शुक्रनीति-सार में लिखा है कि यदि राज्य, प्रजा, बल, कोष एवं सुनृपत्व की वृद्धि नहीं होती तो ऐसे मन्त्रि-परिषद से क्या प्रयोजन? कहने का तात्पर्य यह है कि परिषद को राष्ट्र की उन्नति के लिए सदा सचेष्ट रहना पड़ता था। इसी पुस्तक में आगे जाकर लिखा है कि जिसके अधिकार में राजा न रहे, जिससे राजा न डरे, क्या ऐसे मन्त्रियों से राष्ट्र की उन्नति हो सकती है! कहने का मतलब यह है कि परिषद को इतना प्रभावशाली होना चाहिए कि वह राजा को उच्छृङ्खल न होने दे।

क्योंकि परिषद पर राष्ट्र की रक्षा का भार था, इस-लिए यह आवश्यक ही था कि शान्ति की रक्षा के लिए सेना रक्खी जाय, जो उसकी बाहर के आक्रमणकारियों एवं लुटेरों से रक्षा करे। परिषद की अधीनता में सेना रहा करती थी, इसके प्रमाण कौटिल्य-अर्थशास्त्र एवं महाभारत में पाए जाते हैं। पाणिनी ने भी आयुधजीवी संग्रह शब्द का व्यवहार इसी अर्थ में किया है। कौटिल्य ने कुछ श्रेणियों का वर्णन किया है, जो अपनी सैनिक शक्ति के लिए प्रसिद्ध थीं। उसने लिखा है कि काम्बोज, सुराष्ट्र और क्षत्रिय सैनिक जीवन व्यतीत करते थे। अपनी सैनिक शक्ति के कारण यह श्रेणियाँ राष्ट्र के लिए बड़ी आवश्यक थीं।

शासन-विधान को दृष्टि में रखते हुए यह कहना ही पड़ता है कि कर के विषय में हिन्दुओं का सिद्धान्त बड़े महत्व का था। चाहे कैसा ही शासन-विधान क्यों न रहा हो, कर का नियत करना शासक की इच्छा पर निर्भर नहीं था। इसीलिए कर के विषय में राजा और प्रजा के बीच कभी कोई झगड़ा खड़ा नहीं होता था। राजस्व से जो आय होती थी, वह मन्त्रि-परिषद के अधिकार में रहती थी, जिनको करों के इकट्ठा करने का अधिकार था। मेगस्थनीज़ से हमें पता लगता है कि ४ शताब्दी ईस्वी पूर्व तक राजस्व-कोष मन्त्रि-परिषद के अधीन था, और वही व्यय भी किया करती थी।

यही राजस्व राष्ट्र का प्रबन्ध करने के कारण राजा का वेतन समझ जाता था। महाभारत में लिखा है कि राजस्व का छठा भाग, विदेशों को जाने वाली एवं विदेशों से आने वाली वस्तुओं पर प्राप्त हुआ कर, जुर्माना, ज़ब्ती आदि द्वारा जो धन अपराधियों से शास्त्रानुकूल वसूल हो, तेरा वेतन है।

हिन्दू-शास्त्र-निर्माणकर्ताओं ने इस सिद्धान्त को और अधिक विकास दिया और राजा के वेतन का सिद्धान्त दैवी राजस्व में परिवर्तन हो गया। शुक्रनीति-सार में लिखा है कि परमात्मा ने राजा को जनता का सेवक स्वामि-रूप में बनाया है। प्रजा की रक्षा करने के बदले में उसे अपना वेतन राजस्व से लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि ईश्वर ने उस स्वामिसेवक के जीवन-निर्वाह के लिए उसका वेतन नियत कर दिया था। उसे नियत धन से अधिक लेने का अधिकार नहीं

था। वस्तुतः बात वही है, जो हम पहिले वर्णन कर चुके हैं कि राजा प्रजा की रक्षा किया करता था और उसके बदले में एक नियत धन उसे जीवन-निर्वाह के लिए मिलता था।

राजस्व वस्तुतः रक्षा करने की मज़दूरी थी। यदि राजा कभी रक्षा करने में असमर्थ होता था, तो प्रजा को अधिकार था कि जितनी उसकी हानि हुई हो उतना रुपया राजा से वापिस लेले। इस रुपए के वसूल करने में प्रजा को अधिकार था कि वह चाहे तो पूरा रुपया वसूल करले अथवा कुछ छूट कर दे। राजा के आमोद-प्रमोद, वेतन, रहन-सहन इत्यादि सब प्रजा के अधिकार में थे। महाभारत में तो यहाँ तक लिखा है कि जो राजा प्रजा की रक्षा न कर सके, प्रजा को अधिकार है कि वह उसे छोड़ दे।

प्रजा की संस्थाएँ

प्रजा की भी कुछ संस्थाएँ हुआ करती थीं, जिनमें समिति, सभा एवं गण मुख्य हैं। समिति का मुख्य कार्य राजा का निर्वाचन था। यह निर्वासित राजा का भी दुबारा निर्वाचन कर सकती थी। राष्ट्रीय विधान की दृष्टि से वास्तव में यही अधीश्वरी थी। राष्ट्र के सभी आवश्यक विषयों पर इसमें विचार किया जाता था। राजा की उपस्थिति समिति में परमावश्यक थी और उसे समिति की बैठक समाप्त होने तक वहाँ ठहरना पड़ता था। जो राजा ऐसा नहीं करता था, प्रजा के प्रति वह विश्वासघातक समझा जाता था।

दूसरी संस्था थी सभा। यह वर्त्तमान Criminal Court के समान थी। इसमें कुछ चुनीदा आदमी होते थे और यह समिति की अधीनता में होती थी। इस सभा का एक सभापति हुआ करता था। इसके सभ्य, राष्ट्र के वृद्ध एवं विचारशील मनुष्य ही हुआ करते थे। पारस्कर गृह्यसूत्र में सभा को क्लेश एवं चण्डता नामों से पुकारा गया है, क्योंकि यह अपराधियों के लिए क्लेशकर एवं चण्ड थी। शुक्ल यजुर्वेद के पुरुषमेध में 'धर्माय सभाचरम्' ऐसा पाठ आता है, जिससे प्रकट होता है कि लोग न्याय के लिए सभा में जाया करते थे।

तीसरी संस्था थी गण। यह वर्त्तमान Chamber of Commerce or Trade Unions के सदृश थी। राज्य को समृद्धिशाली बनाने के लिए इस संस्था की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। महाभारत में लिखा है कि 'व्यापार के लिए वणिक् लोगों को प्रोत्साहित किया जाय, वे राष्ट्र को शक्तिशाली बनाते हैं। राष्ट्र के व्यापार को उत्तेजना दी जानी चाहिए। राष्ट्र का व्यापारियों से बढ़ कर और कोई धन नहीं है।'

इन सब बातों का अन्त में यही निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय राजा, प्रजा का एक वैतनिक सेवक था। राष्ट्र का सम्पूर्ण राजस्व उसका वेतन नहीं था, किन्तु वह राष्ट्र की आय के अनुसार नियुक्त किया जाता था। उसे जो कुछ भी करना पड़ता था, वह समिति एवं सभा, जो पीछे से पौर और जानपद के रूप में परिणत हो गईं, की सम्मति से। राष्ट्र के किसी कार्य को वह अपनी इच्छा से नहीं कर सकता था। यदि वह कभी प्रजा की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य कर बैठता था, तो प्रजा उसे राजसिंहासन से च्युत कर देती थी। विश्वासघातक सिद्ध होने पर तो कभी-कभी प्रजा उसका वध करने में भी नहीं चूकती थी। भारत में उस समय वस्तुतः नियन्त्रित शासन (Limited Monarchy) था।

आज हम यूरोप के नए-नए शासन-विधानों को देख कर चकित हो जाते हैं। प्रशंसा करते-करते नहीं अघाते। लेकिन क्या कभी हमने अपने अतीत पर भी दृष्टि डाली है? क्या कभी उन ऋषि-मुनियों के बनाए हुए शासन-विधान पर भी विचार किया है, जिनका जीवन ही सार्वजनिक हित के लिए था, जो रात-दिन अपनी कुटियों में बैठे हुए, "परोपकाराय सतां विभूतयः" का पाठ पढ़ा करते थे? जिस मनुष्य की आँखों के आगे चकाचौंध आ जाता है, वह सामने रक्खी हुई वस्तु को भी नहीं देख सकता। यूरोप की नवीन सभ्यता ने हमारी आँखों में चकाचौंध पैदा कर दिया है, फिर हम अपने अतीत को देखें भी तो कैसे? आज अपने शासन-विधान की तारीफ़ करने वाले देखें कि उन्हीं के राज्य में धनिकों की उच्च अट्टालिकाओं के नीचे कितने दीन, भोजन की कमी के कारण, तड़प-तड़प कर जान दे रहे हैं। क्या उन्होंने कभी उनके लिए कोई आयोजन किया है?

नहीं ! उनका तो शासन-विधान ही ग़रीबों के ख़ून से अमीरों का पेट भरने वाला है। मनुष्य के रक्त की प्यासी यह सभ्यता क्या कभी शान्ति का स्वप्न देख सकती है ? कभी नहीं। जब तक जनता अपने प्राचीन आदर्श पर न आवेगी, जब तक "राष्ट्र की भलाई में ही हमारी भलाई है", यह ध्येय न होगा, तब तक संसार के किसी भी भाग में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

प्लेटफ़ॉर्म पर स्नान

सेठ जी—महाराज ! जल्दी करो, गाड़ी ने सीटी दे दी...

अङ्गरेज़ दर्शक—कैसा गधा आदमी है, औरत को ऐसा बेपर्दा कर रक्खा है !

बलिदान-भूमि—चित्तौड़

सिसोदिया पत्ता

राठौड़ जयमल

चित्तौड़गढ़

महाराणा कुम्भा (कुम्भकर्ण)

महाराणा साँगा (संग्रामसिंह)

कुम्भलगढ़ का दृश्य

चाँद

सत्यव्रत रावत चूँडा

चित्तौड़ का कीर्ति-स्तम्भ

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

पद्मिनी का प्राचीन महल

कुम्भलगढ़ का दूसरा दृश्य
(मन्दिरों के निकट का गुम्बज़ वाला स्थान 'वेदी' है)

वर्तमान उदयपूर

एकलिङ्ग जी का मन्दिर-समूह

त्रिपोलिया की तरफ़ से राजमहलों का दृश्य

वर्तमान उदयपुर

जलमहल (जगनिवास)

पिछोला तालाब और उसके पूर्वीय तट से नगर का दृश्य

वर्तमान उदयपूर

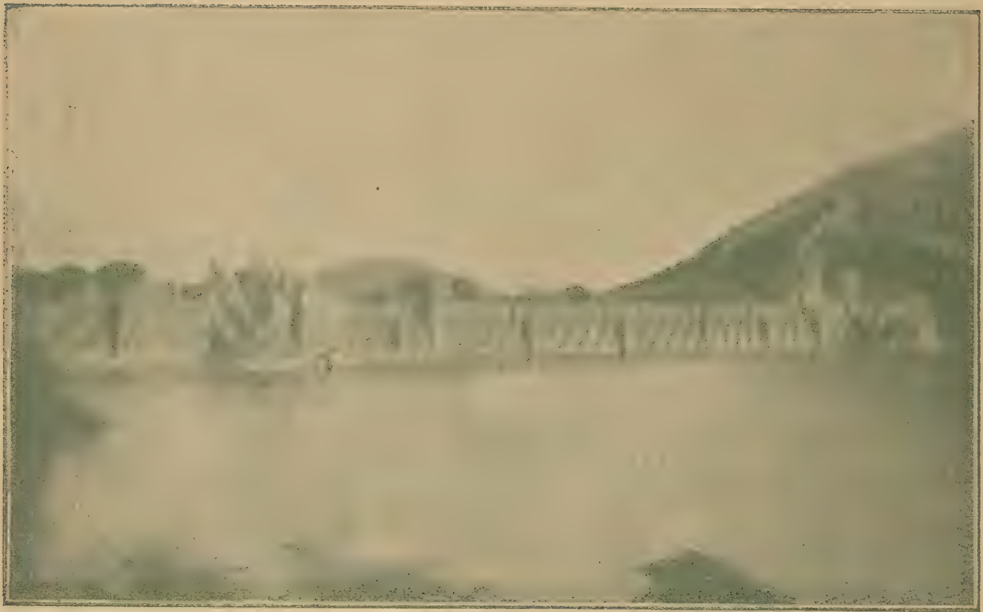

उदय सागर

फ़तह सागर

बूँदी के वर्तमान शासक हिज़ हाइनेस रायबहादुर ईसरी-सिंह जी।

बूँदी के विद्वान पुरोहित—स्व० श्री० रामनाथ जी कुदाल, जिनको, कहा जाता है, पुलिस के सिपा-हियों ने ९वीं जुलाई, १९३१ को सहस्रों नगरनिवासियों के सामने लाठी और लातों से मार डाला!

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

राजपूताने का शासन

[श्री० द्वारकालाल जी गुप्त]

'राजपूताना' क्षेत्रफल की दृष्टि से ब्रिटिश भारत के प्रान्तों से तुलना करने में बर्मा, बम्बई, मद्रास, पञ्जाब और बिलोचिस्तान, इन पाँच प्रान्तों को छोड़ कर, शेष सब प्रान्तों से बड़ा है। संसार के दूसरे देशों में यह प्रान्त फ़िनलैण्ड, नॉरवे, इटली, रूमेनिया, न्यूज़िलैण्ड और ट्रान्सवाल से बड़ा ठहरता है। इस प्रान्त के अन्तर्गत केवल मारवाड़ (जोधपुर) राज्य स्कॉटलैण्ड तथा आयर्लैण्ड से बड़ा है। बीकानेर तथा जैसलमेर, स्विट्ज़रलैण्ड, हॉलैण्ड और ईजिप्ट से बड़े हैं, और पिछले तीन देशों से तो जयपुर और मेवाड़ (राज्य) भी बड़े हैं।

जन-संख्या की दृष्टि से यह प्रान्त अन्य भारतीय प्रान्तों में केवल मध्य भारत से तथा दूसरे देशों में हङ्गरी, ऑस्ट्रेलिया, पोर्चुगाल और स्वीडन से बड़ा है।

इस प्रान्त की १,२८,६८७ वर्गमील वीरभूमि में बसने वाली लगभग १ करोड़ जनता पर, छोटे-मोटे २१ नरेशों के अतिरिक्त, प्रत्येक राज्य का बहुत कुछ हिस्सा जागीरदारों में बँटा हुआ होने से, सैकड़ों जागीरदार जो महाराजा साहब, आपजी साहब तथा ठाकुर साहब आदि कहलाते हैं, शासन करते हैं।

शासन का लक्ष्य

प्रत्येक राष्ट्र, जाति और व्यक्ति के सामने अपनी जीवन यात्रा को सुखी और उन्नत बनाने के लिए कोई न कोई लक्ष्य अवश्य रहता है, जिसको आधारभूत मान कर उसकी सफलता के लिए वह राष्ट्र, जाति और व्यक्ति प्रयत्न करता है। वास्तव में यदि कोई लक्ष्य सामने है, तो उसको पूरा करने की चिन्ता हो सकती है और वह आज नहीं तो १० वर्ष में, २० वर्ष में, ८० अथवा १०० वर्ष में कभी न कभी तो पूरा हो ही सकता है। एक बालक भी जब अपनी शिक्षा का ध्येय बना लेता है, तो कुछ समय बीतने पर वह अपने निश्चयानुसार ऊँची से ऊँची डिग्री प्राप्त कर ही लेता है। एक पैदल चलने वाला बटोही भी यदि लक्ष्य बना कर चल पड़े कि मुझे अमुक स्थान पर जाना ही है तो चाहे वह १,००० मील दूर भी क्यों न हो, कभी न कभी, अभीष्ट स्थान पर पहुँच ही जाएगा। लेकिन जब कोई लक्ष्य ही सामने न हो, तो कोई क्यों और किस के लिए उद्योग करे? इसलिए यह निश्चित है कि यदि किसी राष्ट्र को, जाति को अथवा व्यक्ति को संसार में सुखी रहना है, आदर प्राप्त करना है, और कीर्ति-लाभ करना है, तो उसे समय और स्थान के अनुसार अपना कोई एक लक्ष्य अवश्य क़ायम करना पड़ेगा!

अब देखना यह है कि राज्य का लक्ष्य क्या होना चाहिए? क्या राज्य का लक्ष्य सदैव 'राजा' के ऐशो-आराम के सामान जुटाना हो सकता है? प्राचीन काल के राजनीतिज्ञों ने राज्य का लक्ष्य प्रजा का अभ्युदय करना और राजा का कर्तव्य 'पुत्रवत प्रजा का पालन करना' बताया है। आधुनिक राजनीतिज्ञों का यह मत है कि "जनता ही वास्तविक शासक है। राजा में चाहे कितनी ही बुद्धि और शक्ति क्यों न हो, वह परिमित ही होगी, क्योंकि महान से महान व्यक्तियों की भी शक्ति और बुद्धि परिमित ही हुआ करती है। किसी भी राज्य में इसकी गारण्टी नहीं की जा सकती कि उसके शासक का प्रत्येक स्वेच्छाचारी उत्तराधिकारी वैसा ही प्रजा-हितैषी, शक्तिशाली और बुद्धिमान होगा।" यदि इस बात की गारण्टी भी की जा सके, तो भी स्वेच्छाचारी शासनों में चाहे वे प्रजा-हितैषी ही क्यों न हो, यह बड़ा दोष है कि वहाँ प्रायः शासक ही एक मात्र देशभक्त होता है, इसलिए वहाँ अन्य सब सम्भव देशभक्तों में सर्व साधारण की भलाई करने की शक्ति विकसित नहीं हो पाती और वह बेकार चली जाती है। इससे देश की और संसार की भी भारी हानि है। यही कारण है कि आजकल संसार के अधिकांश छोटे-बड़े देशों में प्रजातन्त्र राज्य है। साठ स्वाधीन देशों में ४९ प्रजातन्त्री हैं, बाक़ी राज्यों में अलबानिया, बेलजियम, बलगेरिया, डेनमार्क, ग्रेटब्रिटेन

और उत्तरी आयर्लैंण्ड, हङ्गरी, नैदरलेण्डस,नॉर्वे, रूमानिया, स्वीडन, जापान, अफ़ग़ानिस्तान में प्रतिनिधि संस्थाएँ हैं ! इनके अलावा आयरिश फ़्री स्टेट, यूनियन ऑफ़ साउथ अफ़्रीका, कैनडा, न्यूफ़ाउण्ड लैण्ड,ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड आदि में भी उत्तरदायी शासन संस्थाएँ हैं !"* इससे प्रकट है कि सर्वत्र प्रजामत का ही बोल बाला है।

इस लेख का उद्देश्य राजपूताने के शासन पर प्रकाश डालने का है, इसलिए यह जानना आवश्यक है कि राजपूताने के श्रीमन्त नरेशों का लक्ष्य क्या है ? इन पंक्तियों के लेखक ने बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु उसे पता न चला कि हमारे देशी नरेशों का लक्ष्य प्राचीन धर्मशास्त्रों के अनुसार पुत्रवत प्रजा-पालन करना है या आधुनिक राजनीतिज्ञों के मतानुसार प्रजातन्त्र शासन की स्थापना करना है। यदि ये प्रजा का पुत्रवत पालन करते होते, तो प्रजा पिछले वर्षों से अधिक शिक्षित, समृद्धिशाली तथा प्रसन्न होनी चाहिए थी। पर ऐसा नहीं है। अधिकांश प्रजा, जो केवल खेती पर बसर करती है, और जिसके कठिन परिश्रम के प्रताप से राजाओं को नाना प्रकार के वैभव प्राप्त हैं, आधे दिन भूखी रह-रह कर कृश शरीर बनी हुई है। उसको बदन ढाँकने के लिए फटे चिथड़े भी मुश्किल से नसीब होते हैं। उसके बच्चों को घी-दूध त्यौहारों पर भी नसीब नहीं होता। इस पर भी राज के लगान का उस पर भारी बोझ है। ग्रामों में शिक्षा का अभाव है, शफ़ाख़ानों की कमी है तथा रास्तों में सड़कें नहीं हैं। इसलिए नहीं कहा जा सकता कि "नरेश प्रजा का पुत्रवत पालन करते हैं !" और यदि प्रजातन्त्र शासन बनाने का लक्ष्य होता, तो जगह-जगह सभाएँ करने की मनादी और देशी राज्य-प्रजा की पुकार को राजाओं तक पहुँचने वाले अख़बारों के लिए राज्य में घुसने की रोक नहीं होती, बल्कि देशी राज्य-प्रजा परिषद बम्बई में न होकर किसी देशी राज्य में होती। रियासतों से सैकड़ों दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र निकलते होते। प्रजाजनों को म्युनिसिपैलिटियों तथा धारा-सभाओं में प्रतिनिधि चुनने के अधिकार होते। किन्तु इनमें से कुछ भी नहीं है। इसलिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि इनका लक्ष्य प्रजातन्त्र शासन की स्थापना करना है। फिर आख़िर वह लक्ष्य है क्या ? इनकी जीवनचर्या से, शासन-प्रणाली से तथा प्रजा की पिछड़ी हुई और गिरी हुई दशा से तो इनका केवल एक लक्ष्य मालूम होता है, और वह है खाना, पीना और ऐशो-आराम से रहना।

जब उनका लक्ष्य यह है, तो निकट भविष्य में भी सुधार की आशा रखना व्यर्थ है। जहाँ कोई नीति न हो, कोई लक्ष्य न हो, शासन का सारा कार्य केवल नरेश की इच्छा पर निर्भर हो, शासन के सभी विभाग जैसे प्रबन्ध, माल, न्याय तथा दूसरे विभागों के कर्मचारियों की नियुक्ति, तरक़्क़ी और बरख़ास्तगी के लिए नरेश की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता का आधार हो, जहाँ नरेश राज्य की सारी आय अथवा उसके विशेष भाग को अपने निजी ख़र्च और ऐशो-आराम में उड़ाने के लिए स्वतन्त्र हो, वहाँ कुछ भी सुधार होना सम्भव नहीं है। इस लक्ष्यविहीन और नीति-रहित एकतन्त्री स्वेच्छाचारी शासन का ही यह प्रतिफल है कि यहाँ की प्रजा संसार के दूसरे राज्यों की अपेक्षा अधिक अशिक्षित और नागरिकता के अधिकारों से वञ्चित है।

निम्न-लिखित पंक्तियों में अनियमित शासन के कुपरिणामों का दिग्दर्शन किया जाता है।

राजपूताने की कई रियासतें दूसरे देशों से विस्तार में बड़ी हैं, किन्तु फिर भी उनकी आमदनी अधिक नहीं, बल्कि बहुत कम है और प्रजा टैक्स के भार से इतनी दबी हुई है कि उसकी आधी संख्या आधे दिन भूखी रह कर जीवन बिताती है। इसका कारण है राज्य में उद्योग-धन्धे का अभाव। आमदनी के मुख्य साधन तीन हैं, कृषि, ज़कात और आबकारी।

ज़मीन का लगान अधिक होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे कई प्रकार के कर कृषकों पर लगे हुए हैं। निर्धनता तथा अज्ञान के कारण लोग आधुनिक आविष्कारों से खेती की उन्नति करने में असमर्थ हैं। वही पुरानी चाल के हल, ख़राब खाद और मृतप्राय बैलों से खेती करते रहते हैं। दूसरा एक कारण यह भी है कि यहाँ कृषकों को हमेशा यह भय बना रहता है कि यदि सैकड़ों रुपया

---

* देशी राज्य-प्रजा परिषद बम्बई के सभापति श्री० रामानन्द चटर्जी के भाषण से।

लगा कर पैदावार के लिए कृषि से उन्नति करने की कोशिश भी की जाय तो राज्यकी ओर से उसका लगान तुरन्त बढ़ा दिया जायगा। इसलिए कोई उन्नति करने की चेष्टा नहीं करता। राज्य की ओर से इसकी उन्नति के लिए कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं किया जा रहा है, बल्कि इसके विपरीत जहाँ ब्रिटिश भारत में ३० साल की अपेक्षा ४० साल में बन्दोबस्त होना निश्चय हुआ है, वहाँ राजपूताने की कृषि-प्रधान रियासतों में २० साला बन्दोबस्त की परिपाटी चालू है, जिसके कारण उत्तरोत्तर लगान बढ़ता जा रहा है। एक रियासत में २० वर्ष पहले २० लाख रुपए के लगभग कृषकों से लगान वसूल किया जाता था, अब वह रक़म बढ़ कर ३० लाख रुपए हो गई है, अर्थात् पहिले से ड्योढ़ा लगान वसूल किया जाता है। हालाँ कि इस बीच में कृषि-सम्बन्धी उपज की उन्नति के कोई नए साधन उपस्थित नहीं किए गए हैं। एक दूसरी रियासत में १० वर्ष पहिले १२ लाख रुपए कृषि-कर बैठता था, आजकल २६ लाख बैठता है। अर्थात् १० वर्ष में दुगने से भी अधिक हो गया है। इस तरह बढ़ते-बढ़ते इतना अधिक हो गया है कि यदि कृषि-सम्बन्धी आमदनी को उस राज्य की समस्त जन-संख्या पर फैलाया जावे तो १ मनुष्य पीछे ५) रुपए का औसत आता है।

कृषि के बाद आमदनी का दूसरा साधन है ज़क़ात का कर। इस कर का अर्थशास्त्रों के उसूलों के ख़िलाफ़ मनमाने तरीक़ों पर उपयोग करने के कारण प्रजा की औद्योगिक, व्यापारिक तथा आर्थिक दशा पर गहरा और बुरा प्रभाव पड़ रहा है। रियासतों के रहने वालों को, आयात माल पर भारी ज़क़ात होने के कारण ब्रिटिश भारत के निवासियों की अपेक्षा अधिक महँगी चीज़ें मिलती हैं। इनको विदेशों से आने वाले माल पर ज़क़ात के डबल महसूल का शिकार होना पड़ता है। एक बार ब्रिटिश सरकार ज़क़ात वसूल कर लेती है, दूसरी बार रियासत को महसूल देना पड़ता है। इसी प्रकार इनकी पैदावार, जो विदेशों में जाती है, निर्यात महसूल डबल होने के कारण इनको उसका मूल्य भी कम मिलता है। महसूल की अधिकता के दो-तीन उदाहरण उपस्थित किए जाते हैं। एक राज्य में ४॥) मन ऊन का भाव है, उसका निर्यात् महसूल भी ४॥) मन है। इसी राज्य में शकर पर जिसका भाव ८) मन है, महसूल ज़क़ात ३) मन है। इस तरह इस राज्य में बसने वाली नौ लाख प्रजा से उसकी की हुई पैदावार पर (लगान के अतिरिक्त) तथा उसकी आवश्यकताओं के लिए आने वाली वस्तुओं पर २० लाख रुपया ज़क़ात महसूल के नाम से कर वसूल किया जाता है, जिसको समस्त प्रजा पर फैलाने पर २) फ़ी मनुष्य औसत आता है। इस टैक्स देने के अलावा सफ़र करने वालों को रियासतों में ज़क़ात की वजह से जो तकलीफ़ें होती हैं, वह प्रत्येक व्यक्ति, जिसने रियासतों में सफ़र किया है भली प्रकार जानता है। इसलिए यहाँ उनका दिग्दर्शन कराना लेख को विस्तार देना है।

राजपूताने के अधिकांश नरेश शराब पीने में अधिक प्रसिद्ध हैं। "यथा राजा तथा प्रजा" के अनुसार इनकी प्रजा भी नशीली वस्तुओं का अधिक प्रयोग करती है। मारवाड़ में अफ़ीम खाने का बड़ा शौक़ है। विवाह-शादी तथा गोठों में भङ्ग पीना, पिलाना एक महत्वपूर्ण बात समझी जाती है। इस तरह प्रत्येक मादक पदार्थ का राजपूताने में विशेष प्रचार है। प्रमाण-स्वरूप एक राज्य में जिसमें ६ लाख से कुछ अधिक जन-संख्या है, शराब, गाँजा, भङ्ग, चरस आदि मादक पदार्थों की बिक्री पर दस लाख रुपयों की आमदनी आबकारी में होती है अर्थात् प्रति मनुष्य पीछे १) से कुछ अधिक की नशीली वस्तु से आमदनी है।

उपरोक्त आमदनी के सिवाय दूसरे कई टैक्स हैं, जैसे जङ्गल में से शहरों, क़स्बों और गाँवों में आने वाली जलाने की लकड़ियों पर, पशुओं के लिए आने वाले चारे पर, इमारत बनाने के लिए पत्थरों पर। और कहीं-कहीं तो हलवाइयों से शक्कर गला कर मिठाई बनाने पर भी टैक्स है। सिले हुए कपड़े भी टैक्स के भार से बचे हुए नहीं हैं। इस प्रकार के मुतफ़र्रिक़ महसूलों की आमदनी एक रियासत में, जिसकी जन-संख्या ६ लाख से कुछ अधिक है, ३ लाख रुपए के लगभग बैठती है। अर्थात् कुल आबादी पर ॥) प्रति मनुष्य का टैक्स उक्त चीज़ों पर होता है।

आमदनी का एक सीग़ा 'न्यायालय' भी है। एक राज्य में किसी भी दुखिया को अपना दुख सुनाने के लिए अथवा न्याय की भिक्षा चाहने के लिए आवश्यक

है कि वह अर्ज़ी पर ॥।) का टिकट लगावे। एक दूसरे राज्य में दीवानी की नालिश करने वाले को ११।) सैकड़े का स्टाम्प दावों पर लगाना पड़ता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि राजपूताने में न्याय कितना मँहगा है। इस बढ़े हुए स्टाम्प-ख़र्च का यह नतीजा हो रहा है कि रियाया ज़ुल्म सह लेती है, परन्तु न्याय के लिए पुकार करने में असमर्थ है। इस मद से एक राज्य को २ लाख रुपयों की आय होती है, जिसकी आबादी ९ लाख से कुछ अधिक है।

टैक्स वसूल करने वालों को अर्थात् शहने को, बलाई को, पटवारी को, ज़क़ाती को, नाकेदार को, ग़र्ज़ यह है कितने ही तत्सम्बन्धी मुलाज़िमान राज को नशा-पत्ता हम्क और चिट्ठावन के नाम से अधिक देना पड़ता है, जिसकी औसत कम से कम १) प्रति मनुष्य तो अवश्य ही पहुँच जाता है।

जो रियाया शहरों और क़स्बों में रहती है, और वहाँ म्युनिसिपैलिटी है, तो उक्त टैक्स के अलावा म्युनिसिपैलिटी की चुङ्गी (Octroi) और देनी पड़ती है। यह टैक्स उस शहरों और क़स्बों के निवासियों पर २) प्रति मनुष्य से कम नहीं पड़ता।

इन तमाम टैक्सों को जोड़ने पर राजपूताना के निवासियों पर जो केवल ग्रामों में रहते हैं १०) रुपए फ़ी मनुष्य और जो शहरों और क़स्बों में रहते हैं, उन पर १२) रुपया फ़ी मनुष्य का औसत आता है। दूसरे शब्दों में एक परिवार को, जिसमें ४ व्यक्ति होते हैं, ४०) तथा ६०) यानी ४) तथा ५) माहवार राज्य को टैक्स के रूप में देने पड़ते हैं।

यह औसत फिर भी कम है, क्योंकि इन पंक्तियों के लेखक ने उक्त औसत निकालने में उस जन-संख्या को भी शामिल कर लिया है, जिसको महसूल-ज़क़ात माफ़ है, जैसे बड़े-बड़े जागीरदार, बड़े-बड़े अफ़सर आदि और जिन को देना नहीं पड़ता, जैसे वह मुलाज़िमान राज कि जो छुट्टियों में अपने देश को जाते हैं, और वहाँ से अनेक प्रकार की चीज़ें ले आते हैं, जिन पर कुछ पुरानी के बहाने से और कुछ मुलाज़िम-राज होने के लिहाज़ से महसूल ज़क़ात वसूल नहीं हो पाता है! यदि इस प्रकार की जन-संख्या को निकाल कर औसत लगाया जाय तो उक्त औसत १०) और १२) प्रति मनुष्य से भी अधिक बढ़ सकता है। इस संख्या में सब प्रकार की आयु के स्त्री-पुरुष शामिल हैं।

पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि क्या उस प्रान्त की प्रजा, जहाँ उद्योग-धन्धों, मिहनत-मज़दूरी का अभाव हो, इतना महँगा टैक्स अदा करके पेट भर सकती है?

यह तो हुई आमदनी की करुण-कथा, अब ख़र्च की दयनीय दशा का हाल सुनिए।

राजाओं का व्यक्तिगत ख़र्च

प्रजा की गाढ़ी कमाई का पैसा राजाओं के भोग-विलास और मनोरञ्जन की सामग्रियों में पानी की तरह बहाया जाता है संसार में शायद ही कोई ऐसा शासक होगा, जो प्रजा के धन का इस बेदर्दी के साथ दुरुपयोग करता हो, जैसा भारतवर्ष के राजा, विशेषकर राजपूताने के नरेश करते हैं। उदाहरण के तौर पर एक राज्य की आमदनी १,३६,८०,०००) है और नरेश का ख़र्च १५,८३,०००) है अर्थात् ९ लाख प्रजा के माई-बाप कहलाने वाले नरेश अपनी प्रजा का ख़ून बहा कर की हुई कमाई का ११॥ फ़ी सदी अपने आमोद-प्रमोद में, अपने परिवार के पालन-पोषण तथा रक्षण में उड़ा देते हैं। एक दूसरे राज्य की आमदनी लगभग ४,५०,०००) है, और राज-परिवार का ख़र्च ४,५०,००) के लगभग है, अर्थात राज्य की आमदनी का १० फ़ी सदी। इस राज्य की जन-संख्या ६ लाख से कुछ ऊपर है! इन ख़र्चों की जब हम संसार के दूसरे देश के सम्राटों के ख़र्चों से तुलना करते हैं तो हमें ज़मीन-आसमान का अन्तर दिखाई देता है। अनेक देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरों के अधिपति सम्राट पञ्चम जॉर्ज अपने लिए केवल साम्राज्य की आय का ८ फ़ी हज़ार ख़र्च लेते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि राजपूताने के नरेश सम्राट पञ्चम जॉर्ज के मुक़ाबले में आमदनी के लिहाज़ से १३ गुना अधिक व्यय करते हैं। इसका कारण यह है कि सम्राट पञ्चम जॉर्ज के ख़र्च पर प्रजा-प्रतिनिधियों की संस्था का नियन्त्रण है, और राजपूताने के नरेश स्वेच्छाचारी हैं।

प्रजा के लिए ख़र्च

शिक्षा का महत्व और इस सम्बन्ध में राज्य का क्या कर्त्तव्य है, यह तो आगे बतलाया जायगा,

उदयपुर का राजवंश

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

[परिचय अन्यत्र देखिए

उपन्यास-प्रेमियों के लिए एक नूतन उपहार !

यह मनोहर, रोमाञ्चकारी सामाजिक उपन्यास है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को इसे एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए ! पुस्तक छप रही है, अभी से ऑर्डर रजिस्टर करा लीजिए !

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक — इलाहाबाद

यहाँ केवल ख़र्च के ही आँकड़े उपस्थित किए जाते है। एक राज्य, जिसकी आमदनी सवा करोड़ से ऊपर है, केवल २ लाख रुपया अर्थात् कुल आमदनी का ११ फ़ी सदी और दूसरा राज्य, जिसकी आमदनी ५५ लाख से ऊपर है, २॥ लाख के लगभग अर्थात् कुल आमदनी का ४॥ फ़ी सदी ख़र्च करता है। राजपूताने में केवल एक ही रियासत ऐसी है जहाँ देहातों में भी स्कूलों की सन्तोषप्रद संख्या है।

स्वास्थ्य-रक्षा पर शिक्षा के मुक़ाबले में किसी राज्य में बराबर और किसी में और भी कम ख़र्च होता है। इस ओर राजाओं का तनिक भी ध्यान नहीं है। अधिकांश प्रजा अकाल-मृत्यु की गोद में सोती है! इस सम्बन्ध में विश्वास करने योग्य आँकड़े मर्दुमशुमारी के महकमे को भी नहीं मिल सके हैं। इसलिए यहाँ भी पाठकों की जानकारी के लिए सच्चे आँकड़े रखने में मजबूरी है। किन्तु इससे यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि राजपूताने के नरेश प्रजा के मरने और जीने के हालात से कितने अनभिज्ञ रहते हैं।

इञ्जिनियरिङ्ग विभाग में अधिकतर रुपया उन इमारतों पर ख़र्च होता है, जिनसे नरेश के रहने का तथा मेहमानों के ठहराने का सम्बन्ध होता है। सड़कें भी उन्हीं रास्तों पर बनवाई जाती हैं, जिन पर नरेश का आना-जाना अधिक होता है। प्रजा की सुविधा की दृष्टि से कहीं कुछ नहीं बनाया जाता! राजपूताने के देहातों में सफ़र करने वाले लोग जान सकते हैं कि वहाँ सड़कों के अभाव में कहीं ऊँची, कहीं नीची पगडण्डियाँ हैं, जिनमें बैल गाड़ी के गिरने-चढ़ने से पेट की सारी आँतें हिल जाती हैं, और राम-राम करके सफ़र को तय किया जाता है। इस सम्बन्ध में विशेष आँकड़े प्राप्त नहीं हो सके, इसलिए नहीं दिए जा सके हैं।

ब्रिटिश भारत की तरह देशी राज्यों में फ़ौज का काफ़ी ख़र्च है। जितनी फ़ौज रक्खी जाती है, वास्तव में उसकी ज़रूरत नहीं है। प्रत्येक रियासत अपनी आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा इसमें व्यर्थ खर्च करती है। एक राज्य, जिसकी आमदनी ५५ लाख रुपया है, इस मद में लगभग ८ लाख रुपया ख़र्च करता है।

ऊपर बताए हुए खर्च के अलावा पुलिस का खर्च भी प्रधान है। और दूसरे ख़र्च भी अनेक हैं, विशेष कर राज्य-कर्मचारियों की बड़ी-बड़ी तनख़्वाहों का ख़र्च है, जिस पर राज्य की ६० फ़ी सदी आमदनी खर्च होती है।

आमदनी और खर्च का हिसाब पाठकों के सामने है। जिस ग़रीब बेबस प्रजा से इतनी अधिक मात्रा में टैक्स वसूल किया जाता है, उसके मुक़ाबले में उसके हित के कामों में नहीं के बराबर खर्च किया जाता है। इसीका नाम स्वेच्छाचार है!

उद्योग-धन्धों के अभाव का कारण

राजपूताने के मारवाड़ी लोग भारत के मुख्य-मुख्य शहरों तथा सुदूरस्थ देशों में जाकर ज़ोरों से व्यापार करते हैं और लाखों-करोड़ों रुपए कमाते हैं, किन्तु अपनी जन्मभूमि में वे व्यापार नहीं करते। यह बात आश्चर्य में डालने वाली ज़रूर है, किन्तु आश्चर्य की कोई बात नहीं है। ऊपर बताया जा चुका है कि यहाँ का शासन नीति-रहित और स्वेच्छाचारी है, इसलिए लोगों को हमेशा नरेश की प्रसन्नता और अप्रसन्नता का डर लगा रहता है, पता नहीं कब नाराज़ होकर टैक्स बढ़ा दें, मुक़दमे चलवा दें, जायदाद ज़ब्त कर लें, कारख़ाने के मज़दूरों को बेगार में पकड़ लें, ख़र्च के लिए चाहे जितना रुपया क़र्ज माँग लें, दे दिया जावे तो वापस माँगने पर नाराज़ होकर अनिष्ट करने की कुचेष्टा करें, इत्यादि पचासों तरह की मुसीबतों का सामना करना पड़ता है अर्थात् किसी को इन राज्यों के न्याय पर विश्वास नहीं होता। इसलिए यहाँ लोग अपना कारोबार फैलाते हुए हिचकते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि यहाँ प्रजा में औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा का अभाव है, जिसकी ओर हमारे राजपूताने के माननीय नरेशों का कुछ भी ध्यान नहीं है। जिन नरेशों को शराब का शौक़ है, उनको शराब के नशे से अवकाश नहीं मिलता और जिनको शिकार खेलने का शौक़ है, उनको शिकार खेलने से फ़ुर्सत नहीं मिलती; जिनको दूसरे देशों की राजनीति में दिलचस्पी है, उनको अपनी वक्तृत्व-कला का कौशल दिखाते फिरने से समय नहीं मिलता और जो विलायत में रहने के आदी हैं, उनको अपने राज्य में रहना सुहाता ही नहीं है। आख़िर फिर इसकी चिन्ता करे कौन? दीवान! वह बेचारा अकेला क्या-क्या करे? नरेशों की

फ़रमाइशों को पूरी करने के लिए ऋण लेने का प्रयत्न करे या शासन का सञ्चालन या रात-दिन के मुक़दमों का फ़ैसला ! ग़र्ज़ यह है कि किसी को इस बात की चिन्ता नहीं है कि प्रजा भूखों मरे या भरपेट खावे, नङ्गी रहे या कपड़े पहिने। भविष्य में राष्ट्रीय धन्धों के लिए क्षेत्र तथा क्षमता क़ायम रखने के हेतु यूगोस्लेविया, जर्मनी और फ़िनलैण्ड में विशेष साधन हैं। वहाँ की सरकारों को अपने नागरिकों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की दस्तकारी सिखाने के हेतु मदरसे खोलने पड़ते हैं और ऐसे मदरसों में होनहार बालकों के लिए शिक्षा प्राप्त करना आसान बनाने के वास्ते उनके ग़रीब माँ-बापों को, यदि आवश्यकता होती है तो, सहायता दी जाती है।

जहाँ इस प्रकार औद्योगिक शिक्षा का सुन्दर प्रबन्ध हो, वहाँ की कला-कौशल और व्यापार यदि उन्नति के शिखर पर हों और वहाँ सोने-चाँदी की नदियाँ बहें, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ?

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि राजपूताने में अधिकतर मरुभूमि है और यहाँ प्राकृतिक द्रव्य-साधनों का अभाव है, जिसकी वजह से वहाँ कोई उद्योग-धन्धा चल नहीं सकता। यह भ्रम है। हम जानते हैं कि किसी ज़माने में यूरोप के कई देश अनाज के लिए भारत का मुँह ताका करते थे और भारत से असंख्य मन नाज बाहर जाता था। लड़ाई के ज़माने में उन देशों को नाज की कमी और महँगाई से जो दुख उठाना पड़ा था, उसको वह भूले नहीं। शान्ति स्थापित होने के बाद सब से पहले उन्होंने यही प्रयत्न किया कि अनाज की पैदावार कैसे बढ़ाई जाय। इसमें उनको भारी सफलता हुई। इसीका फल है कि आज भारत के बन्दरगाहों पर विदेशों का अपरिमाण अन्न पड़ा हुआ है, जिसकी वजह से सस्ताई अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई है। इसलिए सामूहिक प्रयत्न ऐसा साधन है, जो सब कुछ सम्भव कर सकता है।

शिक्षा का अभाव

शिक्षा में राजपूताना संसार के सब देशों से पीछे है। सदियों से पिछड़े हुए जापान ने अपनी काया पलट डाली, और संसार के चमकते हुए तथा प्रगतिशील राष्ट्रों की श्रेणी में आकर खड़ा हो गया ; चीन राष्ट्रीय उत्थान के विरोधी तथा विदेशी रोड़ों को उखाड़ फेंकने के लिए जूझ पड़ा है; टर्की ने पुरानी हुकूमत का अन्त करके प्रजातन्त्र शासन की स्थापना कर ली है; मिश्र, परशिया और अफ़ग़ानिस्तान आदि आधुनिक उन्नतिशील राष्ट्रों की श्रेणी में खड़े होने के लिए बड़ी तेज़ी से परिवर्तन करते जा रहे हैं ; ब्रिटिश भारत भी परतन्त्रता से पीछा छुड़ाने के प्रयत्न में तन, मन और धन से तल्लीन हो रहा है ; पर राजपूताना में अभी जागृति के चिह्न-मात्र दिखाई देने लगे हैं।

नीचे लिखे आँकड़ों से पाठक राजपूताने की शिक्षा के असली रूप का अनुमान स्वयं लगा सकते हैं।

साक्षरता आबादी का प्रतिशत			स्कूल		विद्यार्थी आबादी का प्रतिशत	
देश	पुरुष	स्त्री	आबादी	स्कूल	देश	संख्या
इङ्गलैण्ड	९३·४	९१·५	४४२ लाख	८६ हज़ार	जर्मनी ...	३९·५
अमेरिका	९५·५	९३	१० करोड़	३ लाख १७ हज़ार	इङ्गलैण्ड ...	२८·२
जापान	९८	९६	६॥ "	१ " ७६ "	अमेरिका ...	२७·५
ब्रिटिश भारत	७·७	·८	३२ "	२ " ६ "	फ़्रान्स ...	२८·५
राजपूताना	३·६	·५	९८॥ लाख	१८४७	डेनमार्क ...	३५·४
					जापान ...	२७·४
					ब्रिटिश भारत ...	३·२
					राजपूताना ...	·८२

उक्त आँकड़ों से मालूम होता है कि राजपूताना शिक्षा में दूसरे देशों से कितना पिछड़ा हुआ है। जहाँ जर्मनी में आबादी के ३६ फ़ी सैकड़ा से भी अधिक लड़के-लड़कियाँ स्कूलों में शिक्षा पाते हैं, वहाँ राजपूताने में १फ़ी सैकड़ा भी शिक्षा नहीं पाते। यह दशा प्रजा के माई-बाप कहलाने वाले शासकों के लिए लज्जा-जनक है। यहाँ हमें एग्नेस स्मेडली का यह वाक्य याद आता है :—

"जब कोई देश या प्रजा किसी के अधीन हो जाय तो यह निश्चित समझना चाहिए कि सब से पहली जो बात विजेता लोग करेंगे, वह यही है कि अधीनस्थ प्रजा की शिक्षा को या तो बिल्कुल नष्ट कर देंगे या अनुत्साहित करेंगे अथवा बड़ी सख़्ती के साथ उसका नियन्त्रण करेंगे ; क्योंकि ज्ञान और अधीनता साथ-साथ नहीं चल सकते।"

शिक्षा के अभाव के कारण

शिक्षा के अभाव के कारण मालूम करने के लिए पहले यह आवश्यक है कि जिन देशों में शिक्षा उन्नति पर है, वहाँ की सरकारें इसके लिए क्या-क्या प्रयत्न करती हैं ? तत्पश्चात् स्थानीय कारणों पर प्रकाश डालना उचित होगा।

जर्मनी तथा दूसरे देशों में ऊँची शिक्षा का कारण यह है कि वहाँ प्रजातन्त्र सरकार है और वह अपनी रियाया को शिक्षित बनाना केवल कर्त्तव्य ही नहीं समझती, बल्कि अनिवार्य ज़िम्मेदारी समझती है ; जैसा कि नीचे के उद्धरण से प्रकट होता है।

"Education is looked upon as a function of the state. The Government does not only supervise, it is responsible for providing pubilc instruction, and such instruction must form an organized whole.

"Education throughout the country must therefore be uniform; attendance at school is compulsory at elementry schools for eight years, and at the continuation schools until the completion of eighteenth year.

"Instruction is free in elementary schools and the state or municipality must provide assistance to poor parents for the further education of their children, if they are deemed qualified for instruction in the secondary or higher schools *"

अर्थात्—(जर्मनी में) शिक्षा राज्य का परम कर्त्तव्य समझा गया है ; सरकार केवल शासन करने के लिए ही नहीं है, उस पर प्रजा को ऐसी शिक्षा देने की भारी ज़िम्मेदारी है, जो समस्त देश में एक समान हो। वहाँ प्रारम्भिक स्कूलों में ८ वर्ष और ऊँचे स्कूलों में १८ वर्ष पूर्ण होने तक हाज़िरी अनिवार्य है। और प्रारम्भिक शिक्षा बिना शुल्क दी जाती है और प्रत्येक राज्य तथा म्युनिसिपैलिटी का कर्त्तव्य होता है कि वह ग़रीब माँ-बापों को, यदि उनके लड़के ऊँची शिक्षा पाने के योग्य समझे जायँ, सहायता प्रदान करे।

पाठक राजपूताने की रियासतों में शिक्षा पर व्यय होने वाली रक़म और स्कूलों की संख्या के आँकड़े देख चुके हैं। यदि आपसे यह पूछा जाय कि यहाँ के नरेश अपनी प्रजा को शिक्षित बनाने के लिए अपने कर्त्तव्य का कहाँ तक पालन करते हैं, तो शायद आपका उत्तर होगा, 'नहीं के बराबर !'

अधिकांश प्रजा निर्धन होने के कारण अपने बच्चों को बाहर भेज कर पढ़ाने में असमर्थ है, इसलिए बहुत कम ऊँची शिक्षा प्राप्त नवयुवक इन राज्यों में मिलेंगे ! जो माँ-बाप आधे पेट भूखे रह कर भी अपने बच्चों को बाहर भेज कर ऊँची शिक्षा दिलाना चाहते हैं, उनके सामने अनेकों बाधाएँ आ उपस्थित होती हैं, जैसे बाहरी स्कूलों में बच्चों के प्रवेश पाने में कठिनाई तथा डिग्री मिलने पर नौकरी न मिलना आदि।

प्रत्येक राज्य में दीवान से लेकर छोटी-छोटी जगहों पर भी अधिकतर रियासत के बाहर के आए हुए लोग ही मिलेंगे। स्थानीय लोगों पर यदि किसी आगन्तुक अफ़सर महोदय ने कृपा की तो कोई छोटी जगह दे दी जाती है। ऊँची और ज़िम्मेदारी की जगहों पर उसी रियासत का

* German constitution art. 145. (The new democratic constitution of Europe, page 53-54).

निवासी हो, यह नामुमकिन है। राजपूताने में अभी शिक्षा का श्रीगणेश ही है, परन्तु अभी से शिक्षित लोगों को उनकी योग्यतानुसार स्थान नहीं मिलेगा और वे बेकार बैठे रहेंगे, तो इसका परिणाम यह होगा कि भविष्य में यहाँ शिक्षा की उन्नति में रुकावट होगी और लोग अपने बच्चों को पढ़ाना पसन्द नहीं करेंगे।

ब्रिटिश भारत में शिक्षितों के लिए बेकार रहने की नौबत आज २०० वर्ष बाद आई है, आरम्भ में तो वहाँ के सभी पढ़े लिखों को अच्छी-अच्छी नौकरियाँ मिल जाती थीं, जिससे कुछ शिक्षा बढ़ती गई। किन्तु राजपूताने में शिक्षा का पहला ही प्रयास है। यदि इसी अवसर पर शिक्षितों को हताश कर दिया जावेगा, तो दूसरे शब्दों में यही समझा जायगा कि यहाँ के नरेश और हाकिम लोग नहीं चाहते कि उनकी रियाया पढ़-लिख कर योग्य बने।

राज्य का कर्तव्य केवल टैक्स वसूल करने और हुकूमत करने तक ही महदूद नहीं है, बल्कि उस पर इस बात की पूरी-पूरी ज़िम्मेदारी है कि वह अपनी समस्त प्रजा को अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने के योग्य बनावे और योग्यतानुसार सारे राष्ट्र को धन्धे पर लगाए।

जर्मनी में सरकार से इस बात की आशा की जाती है कि वह, न केवल बेकार नागरिक के लिए ही काम तलाश करे, बल्कि जिसको अपनी योग्यतानुसार कार्य नहीं मिला उसे भी समुचित रोज़गार में लगावे।

साधारण स्वतन्त्रता का अभाव

राजपूताने की रियासतों में सभाएँ करने तथा प्रजा के लिए विचार-विनिमय करने तक की भी आज़ादी नहीं है। जयपुर के राजनैतिक और न्याय-विभाग ने जयपुर राज्य में सभाओं का होना और जुलूस निकालना नाजायज़ क़रार दे दिया है। वहाँ यदि कोई मीटिङ्ग करना चाहे, तो उसे ३ दिन पहले आज्ञा लेनी चाहिए। यह ज़रूरी नहीं है कि आज्ञा मिल ही जाय। बिना आज्ञा सभा या जुलूस का आयोजन करने वालों को या तो २००) तक जुर्माना हो सकता है या (जेल नहीं) देशनिकाला। जोधपुर राज्य, मारवाड़ प्रजा-परिषद का अपने राज्य में होना रोक कर काफ़ी नाम पा चुका है। यहाँ के 'सेडीशन ऐक्ट' के अनुसार कोई भी सभा (जिनमें कम से कम १० आदमी हाज़िर हों) ज़बानी या लिखित आज्ञा से भङ्ग की जा सकती है इस पर भी पिछले छः मास से लगातार सभा रोकने की आज्ञा निकाल रक्खी है। दो मास की अवधि तो कुँवर महाराजसिंह साहब के पहुँचने के बाद बढ़ाई गई है। अलवर राज्य ने सभा का अर्थ उस जन-समूह से लिया है, जिसमें कम से कम ५ व्यक्ति शामिल हों, और ऐसी सभा में भी राजनैतिक विचार प्रकट करना वहाँ अपराध है। प्रजा की आवाज़ का गला घोटने के लिए 'राजद्रोह' क़ानून जारी है। इसी तरह से कई रियासतों में पहले 'तरुण राजस्थान', 'प्रताप' इत्यादि कई राष्ट्रीय पत्रों का राज्यों की सीमा में घुसना भी बन्द था! तात्पर्य यह कि 'मारे और रोने न दे' वाली कहावत यहाँ अक्षरशः घटती है! यही स्वेच्छाचारी शासन का नग्न-स्वरूप है।

थोथी दलीलें

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इन राज्यों में कोई प्रतिनिधि शासन-संस्था नहीं है। यहाँ तक कि अधिकांश राज्यों की म्युनिसिपैलिटियों में भी अभी तक प्रजा को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं है। इसके लिए यदि कोई आवाज़ उठाता भी है, तो यह कहा जाता है कि यहाँ की प्रजा राजनैतिक ज्ञान तथा अनुभव से रहित, और अशिक्षित है, इसलिए वह अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन नहीं कर सकती। दूसरे इन छोटी-छोटी रियासतों में प्रजा-प्रतिनिधि संस्थाएँ क़ायम होना असम्भव है। और यदि क़ायम की जावेंगी तो उनसे सुचारु रूप से कार्य नहीं चल सकेगा। इसके उत्तर में यहाँ कुछ ऐसी छोटी-छोटी रियासतों के उदाहरण उपस्थित किए जाते हैं, जो क्षेत्रफल और आबादी की दृष्टि से जयपुर, मेवाड़ और मारवाड़ से छोटी हैं और जिनमें विशेषकर कृषक लोग रहते हैं, परन्तु जिनमें बड़ी सुन्दर, सरल प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली प्रचलित है। इन रियासतों के नाम हैं, लेटेविया, लिथवेनिया, जिनकी आबादी २० लाख के लगभग है, और इस्टोनिया, जिसकी जन-संख्या १२ लाख से अधिक नहीं है। राजपूताने में जयपुर की आबादी

२३ लाख से ऊपर तथा मेवाड़ और मारवाड़ की १३ और १८ लाख से ऊपर है।

उक्त राज्यों के सामने एक मुश्किल यह है कि इनकी जनसंख्या का काफ़ी बड़ा हिस्सा राजनैतिक ज्ञान और अनुभव से क़तई शून्य है। यूगोस्लेविया में अधिक संख्या अशिक्षितों की है। जनता की अशिक्षा के कारण ही यूगोस्लेविया में चुनाव की प्रथा एक विशेष प्रकार की है! वहाँ चुनाव के स्थान पर प्रत्येक पार्टी के लिए एक बड़ा भारी बर्तन (सुराहीनुमा) रक्खा जाता है। मत-दाता को एक लकड़ी का छोटा गेंद दे दिया जाता है, जिसको कि वह उस पार्टी के बर्तन में डाल दे, जिसके लिए वह राय देना चाहता है। अपने मत को गुप्त रखने के लिए वह अपना हाथ तमाम पार्टियों के बर्तनों में डाल सकता है। हरएक पार्टी के उम्मीदवारों के नाम की लिस्ट तत्सम्बन्धी बर्तन पर साफ़-साफ़ अक्षरों में लिखी हुई टँगी रहती है और उस पार्टी का मेम्बर अपने बर्तन के पीछे खड़ा रहता है, जो अपढ़ मत-दाताओं को उसे पढ़ कर सुनाता जाता है!

वास्तव में माँ के पेट में से कोई सीख कर नहीं आता। आदमी व्यावहारिक ज्ञान से सिखाते-सिखाते काम के लायक़ बहुत-कुछ सीख सकता है? इसके अतिरिक्त जिन राज्यों की प्रजा शिक्षित नहीं है, इसमें दोष उन राज्यों के शासकों का है, न कि प्रजा का; किन्तु जहाँ प्रजा के अधिकारों को स्वीकार ही न किया जाय, वहाँ सैकड़ों प्रकार के बहाने बनाए जा सकते हैं।

उपसंहार

अब तक जो लिखा गया है, उसका यह मतलब नहीं है कि राजपूताने में सभी राज्यों में अन्धेरगर्दी है और ज़ुल्म है या सभी नरेश दुर्गुणों से युक्त हैं या बाहर से आए हुए सभी हाकिम राज्य-प्रजा को उन्नति में रोड़ा अटकाते हैं। ऐसी भी रियासतें हैं, जहाँ प्रजा की सुविधा के लिए उचित ध्यान दिया जाता है और उसको न्याय मिले, शिक्षा मिले तथा वह स्वस्थ रहे, इन सब बातों का प्रयत्न भी किया जाता है। नरेश भी ऐसे हैं कि जिनके हृदय में प्रजा के प्रति गाढ़ा प्रेम है और जो प्रजा के सुख से प्रसन्न और दुख से दुखी हैं, तथा जिनकी इच्छा सदा प्रजा के साथ भलाई करने की रहती है।

आजकल संसार में अनेक प्रकार की शासन-प्रथाएँ प्रचलित हैं। कोई प्रजातन्त्र का हामी है, कोई साम्यवाद का; कोई समाजवाद का पृष्ठ-पोषक है तो कोई धर्म-शास्त्रानुकूल, परम्परागत स्वेच्छाचारी राजसत्ता को पसन्द करता है। किन्तु हमें इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि शासन का स्वरूप क्या हो! हमारी तरफ़ से कोई भी स्वरूप हो, यदि माननीय नरेश परम्परागत राज्य-प्रणाली रखना ही पसन्द करते हैं, तो हमें इसमें भी कोई आपत्ति नहीं है। प्राचीन राज्य-प्रणाली में राजा और प्रजा का सम्बन्ध पिता और पुत्र का सा बतलाया गया है। संसार में इससे बढ़ कर ऊँचा, पवित्र और अधिक प्रेमपूर्ण कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। राजनीति-विशारद कौटिल्य ने प्राचीन राजधर्म के विषय में वर्णन करते हुए आदर्श राजा के गुण यह बतलाए हैं:—

तस्मात् स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।
स्वधर्मं सन्दधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति॥
व्यवस्थितार्य मर्यादः कृत वर्णाश्रम स्थितिः।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदातेन सीदति॥
विद्या विनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूत हिते रतः॥
राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञ कार्यानुशासनम्।
दक्षिणा वृत्ति साम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम्॥
प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हितेहितम्।
नात्म प्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥

तात्पर्य यह कि राजा प्रजा के स्वधर्म को भ्रष्ट न करे। स्वधर्म का अनुसन्धान करने वाला राजा इस लोक और परलोक में सुख पाता है। जहाँ आर्य-मर्यादा की व्यवस्था हो, वर्णाश्रम की दृढ़ स्थिति हो, और वेद-धर्म का अनुसरण किया जाता हो, वहीं लोक का कल्याण है। विद्या-विनीत राजा, जो प्रजा के शिक्षण में कटिबद्ध हो सब प्राणियों के हित-चिन्तन में निरत रहता है, वह शत्रु-शून्या पृथ्वी का भोग करता है। अपने राज्य के समुत्थानार्थ प्रयत्न करना ही राजा का पवित्र व्रत है। राज-काज का अनुशासन करना ही उसका यज्ञ है। प्रजा के सभी वर्गों पर समान वृत्ति रखना ही उसके यज्ञ की दक्षिणा है। प्रजा के सुख में ही राजा

का सुख, प्रजा के हित में ही उसका हित है। अपने स्वार्थ-सम्पादन में राजा का हित नहीं, किन्तु प्रजा के लिए जो प्रिय हो, उसमें ही राजा की भलाई है !

जो राजा उक्त गुणों से युक्त हो, उसके राज्य में रहना प्रत्येक व्यक्ति अपना सौभाग्य समझेगा। आवश्यकता इस बात की है कि राजा और प्रजा

श्री० द्वारिकालाल जी गुप्त
(इस लेख के लेखक)

दोनों अपने-अपने पवित्र और आदर्श धर्मों का आचरण करें। केवल प्रजा से तो राजा के प्रति पितृ-तुल्य भक्ति की आशा रक्खी जाय, और राजा लोग अपनी प्रजा के प्रति पुत्रवत् कर्तव्यों का पालन करने में अवहेलना करें, इसका नाम अन्याय और अत्याचार है। इसलिए इन पंक्तियों का लेखक विनीत भाव से माननीय नरेशों की सेवा में अपील करता है कि आप अपनी एक नीति क़ायम कर लें, अपना एक ध्येय बना लें, और तदनुसार ऐसा व्यवहार करें कि जिससे समस्त प्रजा समान रूप से सुखी रहे, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से होती रहे और उसके लिखने-पढ़ने तथा बोलने के स्वाभाविक अधिकार सुरक्षित रहें! परन्तु यदि आपने अपनी कोई नीति क़ायम नहीं की, तो विवश होकर आपकी प्रजा को अपनी नीति अवश्य क़ायम करनी पड़ेगी। वह नीति क्या होगी, यह भविष्य के गर्भ में है। चन्दन जैसी शीतल वस्तु भी अधिक रगड़ से आग उगलने लगती है। पड़ोस की हवा से देशी रियासतें अछूती नहीं रह सकतीं। प्रमाण के लिए ताज़ा उदाहरण स्पेन का मौजूद है। अस्तु।

अब हम शूद्रक के शब्दों में यह प्रार्थना करते हुए इस लेख को समाप्त करते हैं—

क्षीरिण्य सन्तु गावो भवतु
 वसुमती सर्व सम्पन्न सस्या;
पर्जन्यः कालवर्षी सकल जन
 मनो मोदिनो वान्तुवाताः।
मोदन्तां जन्म भाग सतत
 मभिमताः ब्राह्मणा सन्तु सन्तः,
राजा नः परिपाल यन्तु
 वसुधां शश्वत्स्वधर्मे स्थितः।

—मृच्छकटिक

अर्थात्–गो दूध वाली हो, पृथ्वी सब प्रकार के अन्न से हरी-भरी हो, मेह उचित समय पर बरसे, शरीर को सुख देने वाले मन्द समीर का सदा सञ्चार हुआ करे और सारे प्राणी प्रसन्न रहें, ब्राह्मण सच्चरित्र और पण्डित हों और राजा लोग अपने धर्म में सदा निरत होकर इस वसुन्धरा का पालन करें।

राव सीहाजी

[श्री० विश्वेश्वरनाथ जी रेऊ]

राव सीहाजी मारवाड़ में राठोड़ राज्य के संस्थापक थे। राजपूताने में बीकानेर और किशनगढ़; गुजरात में ईडर; और मालवे में रतलाम, सीतामऊ, सैलाना और झाबुआ के नरेश इन्हीं के वंशज हैं। शहाबुद्दीन ग़ोरी के हमले में राठोड़-नरेश जयचन्द्र के मारे जाने पर भी कन्नौज के आस-पास का प्रदेश उस (जयचन्द्र) के पुत्र हरिश्चन्द्र के अधिकार में ही रहा था। सम्भवतः इसी हरिश्चन्द्र की उपाधि या दूसरा नाम वरदायी सेन* था। परन्तु वि० सं० १२५३ के बाद जब मुसलमानों के आक्रमणों से हरिश्चन्द्र का रहा-सहा राज्य भी जाता रहा, तब वरदायी सेन के पुत्र सेतराम और सीहाजी, खोर (शम्साबाद) की तरफ़ चले गए और कुछ दिन बाद गाँव मोधा की तरफ़ होते हुए महुई† में जा रहे। परन्तु जब उक्त प्रदेश में भी मुसलमानों का उपद्रव प्रारम्भ हो गया, तब इन्हें और सेतराम को मारवाड़ की तरफ़ आना पड़ा‡। सम्भव है, विदेश में आ जाने पर सेतराम ने अपने छोटे भाई सीहा जी को ही अपना दत्तक पुत्र मान लिया हो।

---

* यह भी सम्भव है कि वरदायी सेन हरिश्चन्द्र का छोटा भाई हो। परन्तु रामपुर और खिमसेपुर के इतिहासों में सीहाजी को प्रहस्त का पौत्र लिखा है। यह प्रहस्त शायद हरिश्चन्द्र का ही बिगड़ा हुआ रूप है। इसीसे हमने भी हरिश्चन्द्र और वरदायी सेन को एक ही व्यक्ति अनुमान किया है।

† महुई गाँव फ़र्रुख़ाबाद ज़िले में है। वहाँ पर काली नदी के किनारे बने सीहाजी के निवासस्थान के खण्डहर अब तक विद्यमान हैं, और लोग उन्हें 'सीहा राव का खेड़ा' के नाम से पुकारते हैं।

‡ शम्सुद्दीन अल्तमश वि० सं० १२६८ (ई० स० १२११) में दिल्ली के तख़्त पर बैठा था और उसके बाद उसकी सेना ने खोर विजय किया था। खोर (शम्साबाद) की तरफ़ के लोग इस घटना का समय वि० सं० १२७१ की चैत्र (सुदि) २ रविवार अनुमान करते हैं। परन्तु श्रीयुत आर० डी० बैनर्जी शम्सुद्दीन के कन्नौज विजय करने का समय वि० सं० १२८३ (ई० सं० १२२६) मानते हैं। (जर्नल बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२ नं० ११, पृ० ७६६)

मारवाड़ की ख्यातों में सीहाजी का वि० सं० १२१२ में मारवाड़ में आना लिखा है। परन्तु जब कन्नौज-नरेश जयचन्द्र स्वयं ही वि० सं० १२५० में मारा गया था, तब उसकी सन्तान का इस घटना से ३८ वर्ष पूर्व मारवाड़ में आना कैसे सम्भव हो सकता है।

कर्नल टॉड ने अपने 'ऐनल्स ऐण्ड ऐण्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान' नामक इतिहास (भा० २, पृ० ९४०) में सीहाजी के कन्नौज छोड़ कर मारवाड़ में आने का समय वि० सं० १२६८ (ई० स० १२१२) लिखा है। जनरल कनिङ्गहम इस घटना का वि० सं० १२८३ (ई० स० १२२६) में होना मानते हैं। (कनिङ्गहम की आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भा० ११, पृ० १२३)

विक्रम की १७वीं शताब्दी के लेखक मुहणोत नैणसी ने अपने इतिहास में एक स्थल पर सीहाजी का विवाह सोलङ्की जयसिंह की कन्या से होना लिखा है। यदि उसका यह लिखना ठीक हो, तो यह जयसिंह (जयन्तसिंह) द्वितीय की कन्या ही होगी। इस जयसिंह द्वितीय का, वि० सं० १२८० की पौष सुदि ३ (२६ दिसम्बर १२२३) का, एक ताम्रपत्र भी काडी से मिला है। (इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ६, पृ० १९६) इसने इसी समय के क़रीब गुजरात-नरेश सोलङ्की भीमदेव द्वितीय के राज्य पर कुछ समय के लिए अधिकार कर लिया था।

इस घटना से भी जनरल कनिङ्गहम के मत की ही पुष्टि होती है। परन्तु मारवाड़ की सारी ही ख्यातों में

जर्नल बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी (सन् १६२०) के अनुसार बीकानेर के महाराजा रायसिंह जी का वि०सं० १६२० (ई० स० १५६३) का एक लेख मिला है। इस लेख में नारायण से विजयचन्द्र के पूर्व तक

सीहाजी के पुत्र आसथान जी का जन्म उनके मारवाड़ में आने के बाद होना लिखा मिलता है। यदि यह सत्य हो तो सीहाजी का मारवाड़ में आना वि० सं० १२६८ (ई० स० १२१२) के क़रीब ही मानना होगा; क्योंकि हम आसथान जी का जन्म वि० सं० १२६६ (ई० स० १२१२) के क़रीब मान लेने को बाध्य हैं। इसके बिना मारवाड़ के राठोड़ों का सारा का सारा प्रारम्भिक इतिहास गड़बड़ हो जाता है। हमारे मतानुसार जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र से लेकर राव चूँडाजी तक के नरेशों के जन्म-सम्वत् इस प्रकार मानने होंगे :—

जयचन्द्र

हरिश्चन्द्र [जन्म वि० सं० १२३२, जयचन्द्र के ताम्रपत्रों के आधार पर]

वरदायी सेन [या तो यह हरिश्चन्द्र का ही उपनाम होगा या उसका छोटा भाई होगा। पिछली हालत में इसका जन्म वि० सं० १२३३ में माना जा सकता है।]

सेतराम [जन्म वि० सं० १२५०]

राव सीहा [जन्म वि० सं० १२५१]

राव आसथान [जन्म वि० सं १२६६]

राव धूहड़ [जन्म वि० सं० १२८७]

राव रायपाल [जन्म वि० सं० १३०५]

राव कनपाल [जन्म वि० सं० १३२३]

राव जालण [जन्म वि० सं० १३४१]

राव छाडा [जन्म वि० सं० १३५६]

राव तीडा [जन्म वि० सं० १३७७]

राव कान्हड [जन्म वि० सं० १३६५]

राव त्रिभुवन [जन्म वि० सं० १३६६]

राव सलखा [जन्म वि० सं० १३६७]

रावल मल्लिनाथ [जन्म वि० सं० १४१५]

राव वीरम [जन्म वि० सं० १४१६]

राव चूँडा [जन्म वि० सं० १४३४, ख्यातों के आधार पर]

(सम्भव है, बीच के सम्वतों में एक-दो वर्षों का अन्तर हो)

की पीढ़ियाँ भाटों के आधार पर लिखी हुई प्रतीत होती हैं। इसीसे वे लेखों की पीढ़ियों से नहीं मिलती हैं। उस लेख में लिखा है :—

> तस्माद्विजयचन्द्रोऽभूज्जयचन्द्रस्ततोऽभवत्।
> वरदायीसेन नामा तत्पुत्रोऽतुलविक्रमः
> तदात्मजः सीतरामो रामभक्ति परायणः।
> सीतरामस्य तनयो नृपचक्रशिरोमणिः।
> राजासीह इति ख्यातः शौर्यवीर्यसमन्वितः।

अर्थात्—उसका पुत्र विजयचन्द्र हुआ और विजयचन्द्र का जयचन्द्र। जयचन्द्र का पुत्र वरदायी सेन था और उसका सीतराम हुआ। इसी सीतराम का पुत्र सीहा था।

कर्नल टॉड ने अपने 'ऐनल्स ऐण्ड ऐण्टिक्टिीज़ ऑफ़ राजस्थान' नामक इतिहास में सीहाजी को कहीं जयचन्द्र का भतीजा, कहीं पुत्र और कहीं पौत्र तथा सेतराम का भाई लिखा है, परन्तु मारवाड़ की ख्यातों और सीहाजी के वि० सं० १३३० के लेख में उन्हें सेतराम का पुत्र लिखा है।

इस लेख में जयचन्द्र के पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र न देकर वरदायी सेन दिया है। इससे ज्ञात होता है कि या तो इस वंश का सम्बन्ध हरिश्चन्द्र के छोटे भाई वरदायी सेन से था, या वरदायी सेन हरिश्चन्द्र का ही उपनाम था। इसीसे उक्त लेख में हरिश्चन्द्र का नाम नहीं लिखा गया है।

'आईने अकबरी' में लिखा है कि मोइज़ुद्दीन साम (गोरी) ने जब राय पिथोरा की लड़ाई से फ़ुरसत पाई, तब वह कन्नौज के राजा जयचन्द के मुक़ाबले को चला। जयचन्द हार कर भागा और गङ्गा में डूब गया। उसका भतीजा सीहा भी, जो शम्साबाद में रहता था, बहुत से आदमियों के साथ मारा गया। इसके बाद सीहा के तीनों बेटे—सोनग, अश्वत्थामा और अज गुजरात की तरफ़ जाते हुए पाली में आकर ठहरे। कुछ दिन बाद उन्होंने गोयलों से खेड़ छीन लिया। इसके बाद सोनग ने ईडर में और अज ने बगलाने में अपना अधिकार जमाया (भा० २, पृ० ४०७), परन्तु सीहाजी का उस समय मारा जाना सिद्ध नहीं होता है।

इतिहास से ज्ञात होता है कि जिस समय सीहाजी क़रीब २०० साथियों के साथ महुई से पश्चिम की तरफ़ चले थे, उस समय इनका विचार द्वारका की तरफ़ जाने का था। परन्तु मार्ग में जब यह पुष्कर में ठहरे, तब वहीं पर इनकी भेंट तीर्थ-यात्रार्थ आए हुए भीनमाल (मारवाड़ के दक्षिणी प्रान्त के नगर) के ब्राह्मणों से हो गई। उन दिनों मुलतान की तरफ़ के मुसलमान अक्सर भीनमाल पर आक्रमण कर लूट-मार किया करते थे। इसीसे सीहाजी को अपने दल-बल सहित देख कर उन ब्राह्मणों ने इनसे सहायता की प्रार्थना की। सीहाजी ने भी इसको सहर्ष स्वीकार कर लिया और भीनमाल जाकर आक्रमणकारी मुसलमानों के मुखियाओं को मार डाला।

इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में अब तक प्रसिद्ध है: —

> भीनमाल लीधी भड़ै, सीहै सेल बजाय।
> दत दीन्हौ सत संग्रह्यो, औ जस कदे न जाय॥

अर्थात्—वीर सीहाजी ने तलवार के ज़ोर से भीनमाल पर अधिकार कर लिया और इसके बाद उन्हें (ब्राह्मणों को) दान देकर पुण्य का सञ्चय किया। इनका यह यश सदा ही अमर रहेगा।

इस प्रकार भीनमाल के ब्राह्मणों का कष्ट दूर कर सीहाजी ने द्वारका (गुजरात) की यात्रा की और वहाँ से लौटते हुए* कुछ दिन पाटन (अनहिलवाड़ा) में ठहरे। वहाँ पर उस समय सोलङ्कियों का राज्य था †।

ख्यातों में लिखा है कि सीहाजी ने पाटन के राजा

---

* ख्यातों में यह भी लिखा है कि सीहाजी ने द्वारका से लौटते समय भुज के सामा भाटी; थिराद के शासक; साँचोर के चौहान; पीलूडा गाँव के कोली मेघा; करड़ा पर्वत के करतर (जाति के) हरदास छोगाला; और भीलड़ा गाँव के डाभी आसा (ईडर के दीवान) को भी दण्ड दिया था।

ख्यातों में सीहाजी का द्वारका को जाते समय भी पाटन होकर जाना लिखा है।

† मुहणोत नैणसी ने पाटन के राजा मूलराज को चावड़ा जाति का लिखा है।

मूलराज सोलङ्की की सहायता कर कच्छ के राजा लाखा फूलानी को मारा था और इसके एवज़ में मूलराज ने अपनी कन्या इन्हें ब्याह दी थी। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता; क्योंकि जैनाचार्य हेमचन्द्र रचित 'द्वयाश्रय काव्य'* के पाँचवें सर्ग में लिखा है :—

तौ गूर्जरत्राकच्छस्य द्वारका कुण्डनस्यनु
नाथौ शरोर्मिमालाभिर्गङ्गाशोणं प्रचक्रतुः ॥१२१॥

× × ×

कुन्तेन सवसारेणावधील्लक्षं चुलुक्यराट् ॥१२७॥

अर्थात्—गुजरात के सोलङ्की राजा मूलराज और कच्छ के राजा लाखा के बीच भीषण युद्ध हुआ। अन्त में सोलङ्की मूलराज प्रथम ने लाखा को मार डाला।

साँभर (मारवाड़) से मिले सोलङ्कियों के एक शिलालेख† में लिखा है :—

वसुनन्दनिधौ वर्षे व्यतीते विक्रमार्कतः।
मूलदेवनरेशस्तु चूडामणिरभूद्भुवि ॥ ६ ॥

अर्थात्—वि० सं० ९९८ में मूलदेव राजा हुआ।

इससे ज्ञात होता है कि मूलराज प्रथम ने वि० सं० ९९८ (ई० स० ९४१) के क़रीब गुजरात विजय कर वहाँ पर अपना राज्य स्थापित किया था। इसकी अन्य प्रशस्तियों से प्रकट होता है कि यह वि० सं० १०५१ (ई० स० ९९४) तक जीवित था। ऐसी हालत में इसकी मृत्यु सीहाजी के मारवाड़ में आने से क़रीब २१६ वर्ष पूर्व हुई होगी। इसलिए मूलराज* और उसके समकालीन लाखा का सीहाजी के समय विद्यमान होना और उस लाखा† का सीहाजी के हाथ से मारा जाना असम्भव ही प्रतीत होता है।

---

* यह काव्य वि० सं० १२१७ (ई० सद० ११६०) के क़रीब बनाया गया था। इसमें लिखा है कि सौराष्ट्र देश के राजा ग्रहरिपु ने जब पाटण पर चढ़ाई की थी, तब कच्छ देश का राजा लाखा भी उसके साथ था। इसी युद्ध में गुजरात के राजा मूलराज ने नेज़े (कुन्त) का प्रहार कर लाखा को मारा था।

वि० सं० १२८२ (ई० स० १२२५) के क़रीब की बनी सोमदेव की 'कीर्ति-कौमुदी' में भी लाखा का मूलराज प्रथम के हाथ से मारा जाना लिखा है :—

महेच्छ कच्छभूपालं लक्षं लक्षीचकारयः।

वि० सं० १३६२ (ई० स० १३०५) की बनी मेरुतुङ्ग की 'प्रबन्ध चिन्तामणि' से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है :—

कच्छपतर्लं हत्वा सहसाधिफलम्बजालमायातम्।
सङ्गरसागरमध्ये धीरत्वता दर्शिता येन ॥

डफ़ की 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया' में ग्रहरिपु का समय ई० स० ९१६ और ९९९ (वि० सं० ९७३ और १०१६) के बीच लिखा है।

† सरदार म्यूज़ियम और सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर की ई० स० १९२५-२६ की रिपोर्ट, पृ० २; और इण्डियन ऐण्टिक्वैरी भाग ५८, पृ० २३४-२३६।

* श्रीमान ओझा जी के लिखे 'राजपूताने के इतिहास' में गुजरात के सोलङ्की मूलराज प्रथम का समय १०१७ से १०५२ लिखा है (भा० २, पृ० २१५)। परन्तु उपर्युक्त नवीन लेख के मिल जाने से वह ठीक नहीं हो सकता। सोलङ्कियों के वंश में एक मूलराज द्वितीय भी हुआ है। परन्तु एक तो उस (मूलराज द्वितीय) का समय वि० सं० १२३३ से १२३५ तक माना गया है। दूसरे वह बाल्यावस्था में २ वर्ष राज्य करके ही मर गया था। इससे वह बाल मूलराज के नाम से प्रसिद्ध था। ऐसी हालत में उसकी कन्या से सीहाजी का विवाह होना भी असम्भव ही है। वास्तव में सीहाजी के समय गुजरात पर सोलङ्की भीमदेव द्वितीय का राज्य था। उसका समय वि० सं० १२३५ से १२९८ तक माना गया है। परन्तु पहले लिखा जा चुका है कि मुहणोत नैणसी के इतिहास में सीहाजी का विवाह सोलङ्की सिद्धराज जयसिंह की कन्या से होना लिखा है। यदि उसका लिखना ठीक हो, तो यह जयसिंह (जयन्तसिंह) द्वितीय ही हो सकता है; जिसने कुछ समय के लिए सोलङ्की भीमदेव द्वितीय के राज्य पर अधिकार कर लिया था। परन्तु इस विषय में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

† कच्छ के जाड़ेजा नरेशों में लाखा नाम के तीन नरेश मिलते हैं। डफ़ की 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया' में इनके नाम और समय इस प्रकार दिए हैं :—

ख्यातों में लिखा है कि जब सीहाजी पाटन से लौट कर पाली (मारवाड़) पहुँचे, तब वहाँ के पल्लीवाल ब्राह्मणों ने भी इनसे सहायता की प्रार्थना की। उस समय पालीनगर व्यापार का केन्द्र हो रहा था और फ़ारस, अरब आदि पश्चिमी देशों के माल के यहीं होकर आगे जाने के कारण यहाँ के पल्लीवाल व्यापारी बड़े समृद्धिशाली बन गए थे। परन्तु साथ ही सोलङ्कियों और चौहानों के निर्बल हो जाने से आस-पास के जङ्गलों में रहने वाले मीणा, मेर आदि लुटेरी जातियों के लोग मौक़ा पाते ही उन्हें लूट लिया करते थे। सीहाजी ने उन ब्राह्मणों की और उस प्रदेश की दशा देख उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वहीं पर अपना निवास स्थापित कर आस-पास की लुटेरी जातियों से उन व्यापारी ब्राह्मणों की रक्षा करने लगे। इस सहायता के एवज़ में उन ब्राह्मणों ने भी इनके ख़र्च के लिए कुछ लागें नियत कर दीं। कुछ ही काल में आस-पास के प्रदेश पर सीहा जी का अधिकार हो गया।

उस समय खेड़ पर गुहिल राजपूतों का अधिकार था। परन्तु उनके और उनके मन्त्री डाभी राजपूतों के बीच मनोमालिन्य रहा करता था। इसी घर की फूट

(१) लाखा गुडारा या ढोडारा, ई० स० १२५०
(२) लाखा फूलानी, ई० स० १३२०
(३) लाखा जाम, ई० स० १३५०

इसी पुस्तक में लाखा फूलानी के विषय में लिखा है कि वह खेड़कोट का राजा था और उसने काठियों को दबा कर काठियावाड़ के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था। कहीं पर इसकी मृत्यु का इसके जमाता के हाथ से होना और कहीं पर इसका अड़कोट (काठियावाड़) में मूलजी वाघेला के साथ के युद्ध में राठोड़ सीहाजी के द्वारा मारा जाना लिखा है। परन्तु इसके समय के विषय में बड़ी गड़बड़ है। (देखो पृ० २१० और पृ० २१५-२१६)। परन्तु इस पुस्तक में दिए वृत्तान्त और समय के विषय में स्वयं ग्रन्थ-लेखक ने ही सन्देह प्रकट कर दिया है। कुछ लोग सीहाजी का जैसलमेर के रावल भाटी लाखा से लड़ना अनुमान करते हैं। उक्त राज्य की ख्यातों में उसका समय वि० सं० १३२७ से १३३० तक लिखा है। ('तवारीख़ जैसलमेर' पृ० ३३)

से लाभ उठाने के लिए सीहाजी ने उनके देश पर चढ़ाई की। परन्तु इसी समय पाली पर मुसलमानों ने हमला कर दिया। इसकी सूचना मिलते ही सीहाजी खेड़ की तरफ़ से लौट कर मुसलमानी सेना पर टूट पड़े। इससे उसे मैदान छोड़ कर भागना पड़ा। यह देख राठोड़ों ने उसका पीछा किया। परन्तु उनके बीठू नामक गाँव के पास पहुँचते ही मुसलमानों की एक नवीन सेना उधर आ निकली। इससे मुसलमानों का बल बहुत बढ़ गया और उनकी भागती हुई सेना ने मदद पाकर पीछा करती हुई राठोड़-सेना पर प्रत्याक्रमण कर दिया। दोनों तरफ़ से जी खोल कर युद्ध हुआ। परन्तु थकी हुई अल्प-संख्यक राठोड़-सेना मुसलमानों की बहु-संख्यक ताज़ा-दम फ़ौज के सामने अधिक समय तक न ठहर सकी। इससे मैदान मुसलमानों के हाथ रहा और वीरवर सीहाजी इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए*।

* मारवाड़ की ख्यातों में यह भी लिखा है कि सीहाजी कुछ दिन तक पाली में रह कर कन्नौज लौट गए थे। वहाँ पर इनकी राजधानी गढ़ गोयन्दाणे में थी। इनका पहला विवाह बङ्गाल-नरेश की राज-कन्या से और दूसरा पाटण के सोलङ्की राजा की पुत्री से हुआ था। पहली रानी से इनके ४ पुत्र और दूसरी से ३ पुत्र हुए। सीहाजी ने मारवाड़ से लौट कर १३ वर्ष तक गढ़ गोयन्दाणे में राज्य किया। इनकी मृत्यु के बाद वहाँ का अधिकार तो पहली रानी के बड़े पुत्र को मिला और दूसरी रानी अपने तीनों पुत्रों (आसथान, सोनग और अज) को लेकर पाली (मारवाड़) में चली आई। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में सीहा-जी का वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है :—

"वि० सं० १२६८ (ई० स० १२१२) में जयचन्द्र के पौत्र सेतराम और सीहाजी दो सौ आदमियों को साथ लेकर कन्नौज से रवाना हुए। जिस समय कोलूमढ (आधुनिक नगर बीकानेर से २० मील पश्चिम की तरफ़) पहुँचे, उस समय वहाँ पर सोलङ्कियों का राज्य था। वहाँ के राजा ने इनकी बड़ी ख़ातिर की। इसकी एवज़ में सीहाजी ने सोलङ्कियों के शत्रु लाखा फूलानी से युद्ध कर उसे हराया। इसी युद्ध में सेतराम मारा गया।

वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) का एक लेख वीठू (मारवाड़ का एक गाँव; जो पाली से ६ कोस के अन्तर पर है) से मिला है, जिसकी नकल यह है:—

(१) "ओं ॥ सॉं (सं) वछ (त्) १३३०
(२) कार्तिक वदि १२ सोम
(३) वारे रठड़ा श्रीसेत
(४) कवर सुतु (त) सीहो दे
(५) वलोकेगतः सो [लं]
(६) कपारवतिः तस्यार्थे देव
(७) लीस्थ (स्था) पिना (ता) क (का) रायि (पि) व (ता) सुभं भवतुः ।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ४०, पृ० १४१)

इस लेख के ऊपर घोड़े पर चढ़ी सीहाजी की मूर्ति बनी है, और सामने हाथ जोड़े उनकी रानी खड़ी है। घोड़े के पैरों के नीचे एक मुसलमान पड़ा है।

हमारे मतानुसार इस लेख में इतनी बातें विचारणीय हैं :—

१—सीहाजी के मस्तक पर पगड़ी या साफ़ा नहीं है। उनके घुँघराले बाल आगे से साफ़ दिखाई देते हैं।

२—सीहाजी की मूर्ति का कमर तक का भाग खुला है (परन्तु रानी शायद कञ्चुकी पहने हुए है।) दोनों के कन्धों पर से केवल एक-एक दुपट्टा लटकता हुआ बना है।

३—सीहाजी की कमर के नीचे के भाग में कवच और पैरों में घुटनों तक के बूट (झाडोले) बने हैं। (रानी के पहनने को चुन्नतदार धोती है और उसकी नाभि से पैरों तक धोती की चुन्नत या करधनी की लम्बी लड़ी लटकती है।)

४—सीहाजी की शकल और दाढ़ी मुसलमानी ढङ्ग की है।

५—इस लेख के सम्वत् १३३० के बीच के दोनों अङ्क (३३) आधुनिक शैली के प्रतीत होते हैं।

६—लेख में सीहा जी को 'सेतकँवर सुत' लिखा है। (इसलिए या तो 'सेतराम' के लिए ही 'सेतकँवर' शब्द का प्रयोग किया गया है या इससे उसका छोटा पुत्र होना प्रकट होता है। पूरब में आजकल भी राजाओं और ज़मींदारों के छोटे पुत्र या उनकी सन्तान अपने नामों के आगे कुँवर की उपाधि लगाती हैं।)

इससे प्रकट होता है कि वि० सं० १३३० की कार्तिक वदि १२ सोमवार (ई० स० १२७३ की ९ अक्टूबर) को सीहाजी की मृत्यु क़रीब ८० वर्ष की अवस्था में हुई थी और उसी दिन इनकी सोलङ्की वंश की पार्वती नामक रानी इनके साथ सती हुई।

परन्तु इस लेख के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है; क्योंकि इसके लाने वाले के बताए स्थान पर इतिहास कार्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष ने स्वयं जाकर पूछ-ताछ की थी, फिर भी इसके वहाँ से लाए जाने का कुछ भी पता नहीं चला।

पाली की रोदाबाव नामक पुरानी बावली के पास एक चबूतरा बना है। कुछ लोग उसे सीहाजी का चबूतरा बतलाते हैं। सम्भव है, इनके वंशजों ने इनके निवास-स्थान पर भी पीछे से, यादगार की तौर पर, यह चबूतरा बनवाया हो।

इनके तीन पुत्र थे—आसथान, सोनग और अंज।

इनकी इस सहायता से प्रसन्न होकर सोलङ्की-नरेश ने अपनी बहिन का विवाह सीहाजी के साथ कर दिया। वहाँ से चल कर यह (सीहाजी) द्वारका जाते हुए अनहिल पाटन पहुँचे। वहाँ के राजा ने भी इनकी बड़ी आवभगत की। जिस समय सीहाजी पाटन में ठहरे हुए थे, उसी समय लाखा फूलानी ने उक्त नगर पर आक्रमण किया। इस बार के युद्ध में सीहाजी ने लाखा को मार कर अपने भाई का बदला ले लिया। उधर से लौटकर जब सीहाजी लूनी के किनारे पहुँचे, तब इन्होंने डाभियों से मेहवा और गुहिलों से खेड़ छीन लिया। इसके बाद यह पाली आए और इन्होंने वहाँ पर होने वाले मेर व मीणों के उपद्रव को शान्त कर पल्लीवाल ब्राह्मणों की रक्षा की। परन्तु कुछ समय बाद पल्लीवाल ब्राह्मणों को मार कर वहाँ पर भी इन्होंने अधिकार कर लिया। इसके एक वर्ष बाद वहीं पर इनका स्वर्गवास हुआ। ('ऐनल्स ऐण्ड ऐण्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान' भा० २, पृ० ९४०-९४३)

अपूर्व लूट !　　　　　　अपूर्व उपहार !!　　　　　　अपूर्व रियायत !!!

'अवसर चूका फिर हाथ न आवे'

गौरवान्वित राजपूत जाति के उत्थान और पतन के उद्भट विद्वानों द्वारा लिखित, गवेषणापूर्ण ऐतिहासिक लेख सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्र 'चाँद' के विशेषाङ्क 'राजपूताना-अङ्क' में पढ़िए, और राष्ट्र-भाषा हिन्दी के अमूल्य रत्नों से अपने पुस्तकालयों की श्रीवृद्धि कीजिए।

हम साधारणतः 'चाँद', 'भविष्य' और विद्याविनोद-ग्रन्थमाला के स्थाई ग्राहकों को अपनी प्रकाशित पुस्तकें पौने मूल्य में तथा अन्य प्रकाशकों की पुस्तकों पर सवा छः सैकड़ा कमीशन देते हैं, पर जो सज्जन 'चाँद' के 'राजपूताना-अङ्क' से दो साल के लिए 'चाँद' के ग्राहक और साल भर के लिए साप्ताहिक 'भविष्य' के ग्राहक बनेंगे उन्हें 'चाँद' के दो साल के रियायती चन्दे में केवल ११) रुपए और साप्ताहिक भविष्य के चन्दे में भी ११) रुपए देने पड़ेंगे, इसके अतिरिक्त निम्न-लिखित बाहरी पुस्तकों पर साढ़े बारह और अपनी प्रकाशित पुस्तकों पर २५) सै० कमीशन दिया जाएगा, डाक-व्यय और वी० पी० खर्च माफ़। कम से कम १५) रुपए की पुस्तकों का ऑर्डर, दो साल के लिए 'चाँद' अथवा साल भर के लिए साप्ताहिक 'भविष्य' की वी० पी० भेजने की आज्ञा के साथ, मिलना चाहिए।

शाही डाकू	१।।।)	निर्धनों का लड़का	।=)	अञ्जना देवी	।।।)
शाही डाकू	१।।)	महाभारत	१।)	शकुन्तला	।।।)
भाग्यवन्ती	२)	सती सीता	।।=)	द्रौपदी सत्यभामा	≡)
भाग्यवन्ती	२।)	भारत-रमणी-रत्न	।।।=)	रुक्मिणी	१)
भाग्यवन्ती	२।।)	शाही चोर	।)	सीता वनवास	।।=)
सफलता की कुञ्जी	।।)	अरविन्द मन्दिर में	।।।)	बङ्गाल की बुलबुल	१)
बालराम-कथा	।।।	महाराणा प्रतापसिंह	१।)	उषा	।=)
शाही जादूगरनी	१।।)	चित्रशाला	१।।)	मानवती	।=)
हिन्दू विधवा	।।)	सुप्रभात (रेशमी)	२)	शकुन्तला	१।।)
प्राचीन हिन्दू माताएँ	१)	सुप्रभात (सादी)	१।।)	पुत्री-शिक्षक	।।)
माता और पुत्र	१।।=)	अनोखा जासूस	२)	जातीय कविता	१।।)
महाभारत	१।)	गीता की भूमिका	।।।)	दिलचस्प कहानियाँ	।=)
गृह-धर्म	।।।)	विधवा	।=)	हमारा देश	।।।)
शाही पतिपरायणा	।।=)	सती माता	।।=)	मधुमती	≡)।।

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

नोट—१२ नवम्बर, १९३१ से १२ जनवरी, १९३२ तक के लिए यह रियायत की जा रही है। समय बीत जाने पर आर्डर भेजने वालों के साथ यह रियायत न हो सकेगी।

विधवा ।-)
हितोपदेश ॥)
शिशु सुधा ॥)
स्वराज्य संग्राम ॥।=)
सचित्र रामायण २)
आर्य समाज और कॉङ्ग्रेस ।-)
रामायण ३)
तपस्वी भरत ।-)
जयमाल ।-)
लङ्कटसिंह ।)
माईकेल मधुसूदन ।)
मधुसञ्चय ।=)
रामायण का अध्ययन ॥)
कविता कुसुम ।)
अयोध्या काण्ड ॥)
सङ्कीर्तन ।)
शिवाजी ।)
शेरशाह ।)
त्यागी भारत ।)
अहिल्या बाई ।)
विद्यावती ।)
प्रशान्त ॥)
गुरु गोविन्दसिंह ।)
सावित्री ।)
निर्माल्य १)
बिहार का साहित्य १॥)
कविरत्न मीर १॥)
शुद्ध रामायण ३॥)
अशोक १।)
नव पल्लव १।)
एक तारा १)
देहाती दुनिया १॥)
सुधासरोवर १)
कामना १।)
मिडल प्रकृति परिचय ।-)॥

भगवान बुद्ध १)
सूखा हुआ फूल ≡)
नवीन दीन २)
भोला बाबा की राम-कहानी ।=)
आर्य पाठावली ॥।)
सङ्कीर्तन ।=)
शब्द निबन्ध-माला ॥।)
पृथ्वीराज रासो ॥)
बालबोध रामायण ॥)
सुखज सम्मेलन =)
यूथिका ॥)
प्रवेशिका हिन्दी रचना १।)
रचना नवनीति १)
पुरुष परीक्षा १)
बिहार के नवयुवक हृदय १)
मैथिल-गीताञ्जलि १।)
गृहस्थाश्रम ।=)
धनञ्जय विजय ।-)
मुसाफिर भजनावली ।≡)
अमर प्रकृति पाठ ।=)॥
श्रीमद्भगवद्गीता ॥।)
लोकोक्ति कोष ३॥)
मास्टर साहब २)
वेश्या-पुत्र २॥)
इक्कीस बनाम तीस १॥)
असहयोग दर्शन १।)
सेवाश्रम २॥)
अफ़ग़ानिस्तान २।
अत्याचार का अन्त ॥।
भारत की स्वाधीनता क।
सन्देश १।)
समाज-सङ्गठन ॥=)
भारतीय सभ्यता १)
हरफ़न मौला १)
सती सीता ॥=)

भारतवर्ष की सती देवियाँ ॥)
बलिदान नाटक =)
नवयुवको स्वाधीन बनो! ॥)
बोलशेविज़्म ।-)
सचित्र दिल्ली ॥।)
भूलचूक ॥।)
महात्मा विदुर १)
बुरकेन वाली ३।)
अभागा ३॥)
रूस की सैर ३।)
विपता १।)
अतीत स्मृति ॥=)
भारतोपदेश ॥।
हरद्वार का इतिहास ।=)
विचार दर्शन १।)
शकुन्तला ।=)
विधवा की आत्म-कथा २)
अलिफ़ लैला ३)
छात्र-धर्म ॥
पद्य-पुष्प ॥)
पत्रकार कला २)
सञ्जीवन बूटी ।=)
कृष्णकुमारी ।=)
वर्ल्ड ऐण्ड इण्डिया ।)
संसार का सबसे बड़ा महापुरुष ≡)
चुम्बन मीमांसा २।
उद्भ्रान्त प्रेम ॥=)
जीवन-युद्ध १।
मधुप १।)
अमेरिका की स्वाधीनता का इतिहास ३)
नारी-जीवन १)
जीवन-रक्षा ॥)
काला पहाड़ २।)
वनिता-विलास ॥)

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

पञ्चाञ्जलि	॥)
अद्भुत आलाप	१)
कृष्णकुमारी	१)
देव और बिहारी	१॥)
मध्यम व्यायाम	=)
सुख तथा सफलता	।)
द्विजेन्द्रलाल राय	।)
विवाह-विज्ञापन	१।)
खाँजहाँ	१=)
नीति रत्नमाला	।)
हठयोग	१।≡)
लक्ष्मी	॥=)
सीधे पण्डित	१॥)
किसानों की कामधेनु	।=)
संसार-रहस्य	१॥)
बुद्ध-चरित्र	॥।)
बङ्किमचन्द्र चटर्जी	१)
समाज सङ्गठन	॥=)
इङ्गलैण्ड का इतिहास	१॥)
,, ,, (सजिल्द)	२)
बिहारी रत्नाकर	५)
गढ़ कुण्डार	२॥)
मतिराम ग्रन्थावली	२॥)
पतन	१॥।)
भगिनी-भूषण	।)
केशवचन्द्र सेन	१≡)
सञ्चित शरीर विज्ञान	॥=)
वरमाला	॥।)
दो सेट चित्रशाला	३।)
निबन्ध निचय	१।)
मनोविज्ञान	॥।)
भूकम्प	॥।=)
,, (सजिल्द)	१।)
भारत में बाइबिल	१।)
खिलवाड़	।)

भारत-गीत	॥=)
मञ्जरी	१।)
एशिया में प्रभात	॥)
महिला मोद	॥)
भारतीय स्त्रियाँ	१॥)
रावबहादुर	॥।)
पूर्व भारत	॥।=)
,, (सजिल्द)	१।=)
कर्बला	१॥)
,, (सजिल्द)	२)
विश्व-साहित्य	२)
[illegible]-चरित्र	२॥)
हिन्दी गीताञ्जलि	१॥)
फ़िजी में भारत प्रतिज्ञाबद्ध	१)
वज्राघात	२)
गोरा	३)
श्रीकृष्ण-चरित्र	।=)
चेतसिंह और काशी-नरेश	।=)
सती सारन्धा	॥=)
सम्पत्ति शास्त्र	५)
संसार की असभ्य जातियों की स्त्रियाँ	२॥)
मेघनाद बध	॥।)
बीसवीं सदी का महाभारत	॥।)
मुक्तिधारा	॥=)
हिन्दुओ सावधान	।)
युद्ध की कहानियाँ	।)
त्रिशूल तरङ्ग	॥=)
घर और बाहर	१।)
अकाली दर्शन	॥।)
बन्देमातरम्	१॥।)
काव्य कल्पद्रुम	२॥)
सरल गीता	१॥)
रेल से माल भेजने का क़ायदा	३)

विवाह-आदर्श	१)
पञ्चवटी	॥।)
जनक नन्दिनी	२)
स्वाधीनता के सिद्धान्त	१)
आनन्द का मार्ग	॥)
जेल-यात्रा	॥=)
मधुप	॥)
सत्य निबन्धावली	॥=)
गाँधी-गौरव	॥।)
जागृत भारत	॥=)
व्यङ्ग चित्रावली	१॥)
तिलक चित्रावली	१)
राग रामायण	२)
कौतूहल भण्डार	१।)
सूक्ति सरोवर	२॥)
बाबू कुँवरसिंह	२)
अन्त्याक्षरी	॥)
भिन्न-भिन्न देशों के रीति-रिवाज	॥=)
पत्रकार कला	१।)
स्वदेश की बलि-वेदिका	॥=)
पहेली बुझौवल	॥)
नवीन पत्र-प्रकाश	१॥)
गीता-रहस्य	२॥)
गब्जू और गप्पू	≡)
टीपू और सुलतान	।)
शाहज़ादा और फ़क़ीर	॥।)
सच्ची कहानियाँ	॥)
[illegible]	[illegible]
सदाचार दर्पण	२॥)
गीता रहस्य	२॥)
आद्रा	१)
[illegible]	[illegible]
जयद्रथ-बध	॥)
दूरवादल	॥=)

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

स्वप्नवासवदत्ता ।≈)
चन्द्रहास ॥)
वैरक्की ।≈)
रेणु ।–)
वैतालिक ।)
शकुन्तला ।≈)
तिलोत्तमा ॥)
बालक १)
राजस्थान की वीर रमणियाँ १)
सती सावित्री ।=)
मदन मिलाप ॥)
नारी महत्व ।)
नन्द सतसई ॥।)
गुलदस्ता ॥।)
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक ।=)
सुमन १)
वीराङ्गना १)
स्वदेश सङ्गीत ॥।)
अनघ ॥।)
अङ्कुर ॥=)
शैलकश ॥=)
पतिव्रता दमयन्ती =)
शिक्षा-प्रणाली १)
माधव निदान १॥)
कौटिल्य अर्थ-शास्त्र ७)
सूर्यकुमार सम्भव ।)
बाल नाटक माला ।=)
विद्यार्थियों का स्वास्थ्य ।=)
बाल कवितावली १)
बालक ध्रुव ।)॥
मनोहर कहानियाँ ।=)
विज्ञान वाटिका ॥=)॥
यथार्थ आदर्श जीवन ॥–)
स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
नानी की कहानी ।=)

मनोहर कहानियाँ ।≈)
गुब्बारा ॥≈)
विचित्र परिवर्तन २)
मातृभाषा ॥)
कुटुम्ब चिकित्सा १)
प्राचीन भारत में स्वराज्य १॥)
सन्तबानी संग्रह १॥)
महाभारत १२॥।)
सन्त जीवनी ॥)
१ सेट स्वामी रामतीर्थ १५॥।=)
कोक-विज्ञान ३)
तूफ़ान मेल ।)
वीर गोपाल १)
ताज़ीरात हिन्द २)
सूर्यकान्ता १)
प्रायश्चित्त ।)
हमारे शरीर की रचना ६॥।=)
उन्नति के मूल पन्थ ।–)
स्वाधीन भारत १)
नीति-धर्म ।)
चाँदबीबी १॥।)
सम्राट अशोक २॥।)
हिन्दी पद्य रत्नावली १)
चाणक्य और चन्द्रगुप्त (अजिल्द) २॥)
„ „ „ (सजिल्द) ३)
होमर गाथा १)
दोहावली ॥≈)
रहिमन सुधा ॥)
साहित्य रत्न मञ्जूषा ॥≈)
माता के उपदेश ।–)
मोहिनी ॥।)
हिन्दी गद्य रत्नावली ॥।)
गीतावली १।)

गल्प लहरी १।)
कविता कौमुदी १ ला भाग ३)
„ „ २ रा भाग ३)
„ „ ४ था भाग ३)
„ „ ५ वाँ भाग ३)
दम्पति सुहृद १।)
भूषण ग्रन्थावली १)
स्वप्न ॥)
अङ्गरेज़ी शिष्टाचार २)
ग्रीस का इतिहास १=)
रानी जयमति ॥=)
सुभद्रा ।≈)
जासूस की झोली ॥)
पिशाचिनी १॥)
राजर्षि प्रह्लाद २।)
क़ैदी की करामात १॥)
नादिरशाह १॥।)
बनबीर १॥)
हरिश्चन्द्र शैव्या १॥)
शीश महल २)
गीता दर्शन २॥)
भगवद्गीता २)
विलायती डाकू ।=)
योगिनी ।)
रङ्गीली दुनिया १)
शोणित तर्पण २)
सीता २॥)
राजा भोज १)
महात्माओं की दिव्य वाणियाँ ।)
सुदर्शन शशिकला ॥=)
भारतीय गौरव १)
आदर्श डाकू ३)
रमाबाई ।)

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

पिशाच पिता	≈)
बनारसी डुपट्टा	१)
चतुरङ्ग चौकड़ी	।-)॥
राष्ट्रीय नवरत्न	१।)
नवरत्न	१॥)
दरोग़ा के ख़ून	॥)
बालक श्रीकृष्ण	१।)
सुन्दरी डाकू	१॥)
शर्मिष्ठा देवयानी	१)
सूर्योदय	१)
सती सुभद्रा	१)
आर्य महिला-रत्न	२।)
कर्मक्षेत्र	३)
धनकुबेर	१॥)
मयङ्क मोहिनी	१)
शोणित चक्र	२)
कर्मक्षेत्र	३॥)
द्रौपदी	॥=)
शैतानी करामात	१॥)
कामिनी काञ्चन	३)
कृष्णवसना सुन्दरी	१॥)
परशुराम	३)
हेमलता	॥।)
कलकत्ता गाइड	१)
सत्यनारायण नाटक	१)
महाराणा हमीरसिंह	१)
नक़ली रानी	१)
मुस्लिम महिला-रत्न	२।)
वीर अभिमन्यु	१)
जासूस की डायरी	२)
ख़ूनी सरपञ्च	॥)
सरस्वतीचन्द्र	२)
शैव्या हरिश्चन्द्र	॥)
नराधम	१=)
भीषण डकैती	॥।)

जीवन-मुक्त-रहस्य	२)
मोक्ष प्रदीप	२॥)
डाकू भाई	।-)
प्रायश्चित्त	३)
वीर गाथा	॥)
भारत रमणी	१।)
भयानक बदला	१।)
महाराणा प्रतापसिंह	१।)
बन्देमातरम्	१॥।)
सम्राट परीक्षित	१॥।)
प्रणवीर	१)
भारत के महापुरुष (१ सेट)	८)
भारतीय गौरव	१)
लव और कुश	१।॥)
रवीन्द्र कविता-कानन	२)
लक्ष्मी देवी	॥=)
सिन्धवाद जहाज़ी	।=)
गुप्त रहस्य	।-)
सिर की चोरी	।-)
वाल्मीकि रामायण	६)
तुलसीकृत रामायण	२)
रामायण सचित्र	६)
रामायण सचित्र	१४)
रामायण सचित्र	७)
रामायण गुटका	४।)
ब्रज विलास	२॥)
कौतूहल भण्डार	२)
नारी धर्मशास्त्र	१॥)
हारमोनियम मास्टर	१॥)
श्रीमद्भगवतगीता	१।)
श्रीमद्भगवतगीता	१॥)
महाभारत	२)
श्रीकृष्ण	१॥)
शङ्कराचार्य	१॥)
शिवाजी	१॥)

लव-कुश	।=)
मेवाड़ गौरव	१)
सीता देवी	॥-)
भक्त प्रह्लाद	॥-)
संयुक्ता	॥-)
पतिव्रता अरुन्धति	॥=)
सती सिमन्तनी	॥)
पतिव्रता रुक्मिणी	॥=)
भीष्म	॥=)
रूस में युगान्तर	२)
वीर अभिमन्यु	॥=)
विचित्र जासूस	१)
हिन्द	१)
सम्राट परीक्षित	१)
आदर्श माता	॥।)
सती पार्वती	॥)
देवी द्रौपदी	॥=)
सुभद्रा	॥=)
महावीर हनुमान	१)
शैव्या हरिश्चन्द्र	॥)
स्वराज्य की माँग	१॥
धर्मावतार	॥)
शर्मिष्ठा देवयानी	॥)
सती ऊषा	॥)
लीलावती	।॥)
सती सुलक्षणा	॥)
फूल में काँटा	॥।)
वैचित्र्य चित्रण	॥-)
स्त्री-दर्पण	॥)
अपना और पराया	।)
पाक-शास्त्र	१)
पृथ्वीराज	१)
विचित्र जाल	॥=)
शकुन्तला	॥=)
कवितावली रामायण	१)

मनुस्मृति	२॥)
नवीन संग्रह	॥)
मनोरञ्जन	॥=)
बङ्गाली दुलहिन	१)
बिहारी सतसई	१)
महा माया	१)
आनन्द सागर	१)
आनन्द सागर दूसरा भाग	॥)
रामायण बड़ी	१०)
विनय-पत्रिका	२)
पश्चिमी यूरोप	२॥)
लोक-कृति	१।)
कप्तान की कन्या	१॥)
रङ्गमहल रहस्य	४॥)
नैतिक जीवन	१)
कुसुम संग्रह	१॥)
हृदय दर्शन	१।)
सीताराम	१॥)
प्रेम-प्रतिमा	२)
भिखारिणी	३)
कर्मक्षेत्र	१॥)
रोम साम्राज्य	२॥)
इटली के विधायक महात्मा	२।)
जापान की राजनीतिक प्रगति	३॥=)
प्राचीन भारत	३॥-)
कल्याण मार्ग का पथिक	१॥)
बुधुवा की बेटी	३)
बलात्कार	१॥)
विश्राम बाग	१॥)
इन्द्रधनुष	१॥)
निर्लज्जा	१॥)
दिल्ली का दलाल	१॥)
आरोग्य मन्दिर	२)
दोज़ख़ की आग	१॥)

अजेय तारा	१॥)
रमणी नवरत्न	१)
प्रेमकान्त	१॥)
विसर्जन	॥)
सहधर्मिणी	॥)
अनुराग वाटिका	।-)
शैलबाला	१)
फ़िज़िकल कलचर	॥=)
अब्राहिम लिङ्कन	॥)
राजा रविवर्मा के चित्र	१।)
ग़दर का इतिहास ५ सेट	८)
चरित्रहीन	३।)
नारी विज्ञान	२)
संग्राम	१॥)
रागिणी	४)
भक्तियोग	१॥)
स्त्री कर्तव्य शिक्षा	२।)
सर्वस्व समर्पण	४)
गोलमाल	१=)
प्रिया	१॥=)
बच्चों की रक्षा	।-)
मैं निरोगी हूँ या रोगी	।)
प्रेम-पुजारी	१)
महात्मा शेख़ सादी	॥)
विवेक वचनावली	।)
रहस्य भेद	२)
सप्त सरोज	॥)
नारी रहस्य	॥)
पश्चिमी सभ्यता	।=)
पति मन्दिर	१॥=)
भारतीय वीणा	१॥)
शैतान की शैतानी	३)
बोलशेविक जादूगर	॥)
राम बादशाह के ६ हुकुमनामे	१।)

जीवन-ज्योति	१)
भारत में कृषि-सुधार	१॥)
खाद	१)
नेत्रोन्मीलन	॥=)
गोलमाल	१=)
खरा सोना	१)
प्रेम पचीसी	२।)
वीर केशरी शिवाजी	४)
तिब्बत में तीन वर्ष	२॥)
मौलाना रूम और उनका काव्य	१।)
शान्ति	-)
लाल फ़ीता	-)
मौत का नज़ारा	१)
संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष	॥)
स्वास्थ्य साधन	३)
जनन-विज्ञान	३)
मनचाही सन्तान	२॥)
भीष्म पितामह	॥=)
नन्दन भवन	॥=)
महर्षि चाणक्य	१।)
चक्रवर्ती बप्पा रावल	॥=)
सती पद्मिनी	॥=)
शर्मिष्ठा	॥=)
वेश्यागमन	२)
अर्जुन	॥=)
शिवाजी	१।)
पृथ्वीराज	१।)
श्यामकान्ता दो सेट	२)
पञ्चभूत	१॥)
अङ्गरेज़ी शिक्षावली	१।)
जेल के यात्री	१)
राजर्षि ध्रुव	॥=)
पं० जवाहरलाल की जीवनी (हिन्दी और अङ्गरेज़ी में)	२)

☞ व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

मानिक-मन्दिर

[ले० श्री० मदारीलाल जी गुप्त]

यह वही क्रान्तिकारी उपन्यास है, जिसकी सालों से पाठक प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसी सुन्दर पुस्तक की प्रस्तावना लिख कर प्रेमचन्द जी ने इसे अमरत्व प्रदान कर दिया है। श्री० प्रेमचन्द जी अपनी प्रस्तावना में **लिखते हैं :—**

"उपन्यास का सबसे बड़ा गुण उसकी मनोरंजकता है। इस लिहाज से श्री० मदारीलाल जी गुप्त को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पुस्तक की रचना-शैली सुन्दर है। पात्रों के मुख से वही बातें निकलती हैं, जो यथावसर निकलनी चाहिए, न कम न ज्यादा। उपन्यास में वर्णनात्मक भाग जितना ही कम और वार्त्ताभाग जितना ही अधिक होगा, उतनी ही कथा रोचक और ग्राह्य होगी। 'मानिक-मन्दिर' में इस बात का काफी लिहाज रक्खा गया है। वर्णनात्मक भाग जितना है, उसकी भाषा भी इतनी आकर्षक है कि पढ़ने में आनन्द आता है। कहीं-कहीं तो आपके भाव बहुत गहरे हो गए हैं और दिल पर चोट करते हैं। चरित्रों में, स्त्री विभाग में, सोना का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक हुआ है और देवी का सर्वाङ्ग सुन्दर। सोना अगर पतिता के मनोभावों का चित्र है, तो देवी सती के भावों की मूर्ति। पुरुषों में ओङ्कार का चरित्र बड़ा सुन्दर और सजीव है। विषय-वासना के दास कैसे चंचल, अस्थिर-चित्त और कितने मधुर-भाषी होते हैं, ओङ्कार इसका जीता जागता उदाहरण है। उसे अपनी पत्नी से प्रेम है, सोना से प्रेम है, कुमारी से प्रेम है और चम्पा से प्रेम है, जिस वक्त जिसे सामने देखता है, उसी के मोह में फँस जाता है। ओङ्कार ही पुस्तक की जान है। कथा में कई सीन बहुत मर्मस्पर्शी हुए हैं। सोना के मिट्टी हो जाने का और ओङ्कार के सोना के कमरे में आने का वर्णन बड़े ही सनसनी पैदा करने वाले हैं, इत्यादि।" सचित्र पुस्तक का मूल्य २॥) रु०; नवीन संशोधित संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है।।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

पाक-चन्द्रिका

८,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं !!

इस पुस्तक में प्रत्येक प्रकार के अन्न तथा मसालों के गुण-अवगुण बतलाने के अलावा पाक-सम्बन्धी शायद ही कोई चीज़ ऐसी रह गई हो, जिसका सविस्तार वर्णन इस पुस्तक में न दिया गया हो। प्रत्येक चीज़ के बनाने की विधि इतनी सविस्तार और सरल भाषा में दी गई है कि थोड़ी पढ़ी-लिखी कन्याएँ भी इनसे भरपूर लाभ उठा सकती हैं। चाहे जो पदार्थ बनाना हो पुस्तक सामने रख कर आसानी से तैयार किया जा सकता है। प्रत्येक तरह के मसालों का अन्दाज़ साफ़ तौर से लिखा गया है। पृष्ठ-संख्या लगभग ६००, मूल्य केवल ४) स्थायी ग्राहकों से ३) रु० मात्र ! चौथा संस्करण प्रेस में है।

८३६ प्रकार की खाद्य चीज़ों का बनाना सिखाने वाली अनमोल पुस्तक। दाल, चावल, रोटी पुलाव, मीठे और नमकीन चावल, भाँति-भाँति की स्वादिष्ट सब्ज़ियाँ, सब प्रकार की मिठाइयाँ, नमकीन, बङ्गला मिठाई, पकवान, सैकड़ों तरह की चटनी, अचार, रायते और मुरब्बे आदि बनाने की विधि इस पुस्तक में विस्तृत रूप से वर्णन की गई है।

चाँद कार्यालय
चन्द्रलोक, इलाहाबाद

दरोगा अर्थात् गोला

[श्री० केसरीसिंह जी बारहठ]

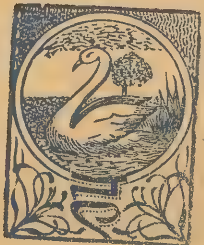

म अपने ही प्रान्त की बात कहेंगे । राजपूताना, मध्य-भारत में छोटे-बड़े सब ही क्षत्रिय राजाओं, उमरावों, जागीरदारों, ज़मींदारों आदि के घर में रह कर सेवा करने वालों की एक गोला नामक जाति है। यदि इसे जाति न कह कर उच्छिष्ट-भोजी सम्प्रदाय कहें तो अधिक सङ्गत होगा; क्योंकि किसी भी जाति के स्त्री-पुरुष, जिनके हाथ का पानी पिया जा सकता है, इस सम्प्रदाय में मिल जाते हैं और इसी क्रम से यह जाति-गङ्गा बही और बढ़ी चली आ रही है। जिस वर्ष देश में वर्षा न हो, उस वर्ष इस गङ्गा में बाढ़ आती है।

इस गङ्गा में मिल जाने के बाद मिलने वाले की पुरानी जाति नहीं रहती, वह तुरन्त ही राठोड़, सोलङ्की, पड़िहार, पँवार, चौहान आदि राजपूत शाखाओं में से किसी एक का नाम पसन्द कर लेता है। कदाचित् मिलने वाली भार्या भी अपने को उसी शाखा की कहती हो, तो दो में से एक की शाखा बदल जाती है। विवाह रोकने की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है इस बात की कि इस गोलकुण्डे में घुसने वाला अपने मालिक का झूठन खा ले। यह भी सत्य है कि इस मण्डली में अनेक असली राजपूत और राजपूतों के खवासीनें मिल जाते हैं, क्योंकि यह कहावत झूठी नहीं कि—"राजपूत की जात ज़मीन में, घोड़े की जात तोबरे में।" जिस राजपूत के पास ज़मीन का टुकड़ा नहीं, उसे विवाह के लिए कुलीन लड़की बहुत ही कठिनाई से मिलती है, छोटे घरों में भी लड़की के अभिभावकों को देने के लिए "रीत" के रुपए न होने से सैकड़ों राजपूत आजन्म कुँवारे ही रहते हैं। उन्हीं में से अनेक इस गोरखधन्धे में सहज घुस बैठते हैं। इसीसे इनका राजपूत होने का दावा भी सर्वथा निर्मूल नहीं होता। वास्तव में अनेक प्रकार से इनकी रगों में राजपूत रक्त का मिश्रण अधिकांश में होता ही है। मालिक की या मालिक के निकट सम्बन्धियों की शाखा को ग़ुलाम नहीं अपना सकता, हाँ दूर जाने पर वह प्रायः उसी शाखा का बन जाता है। क्षत्रियों के अतिरिक्त ओसवाल वैश्य आदि पूँजीपतियों के भी ग़ुलाम रहते हैं, परन्तु वे बनेंगे राजपूत ही।

इस जाति के अनेक पर्यायवाची नाम हैं; जैसे, दरोगा, खानाज़ाद, पासवान, डायजवाल, साथका, रावणा, धाभाई, चाकर, चेला, हजूरी, डावड़ा, ग़ुलाम, गोला, बिदुर, बाँदा। ये अपरिचित के सामने अपने को ठाकुर लोग भी कहते हैं। स्त्रियाँ, दासी, छोरी, बडारण, दरोगण, हजूरण, चेली, बाँदी, गोली कहलाती हैं। पुरुषों के अन्तिम चार नाम यदि दूसरा लेता है, तो हीनतावाचक है और यदि वह स्वयं लेता है, तो दीनतावाचक।

दरोगों का जीवन-निर्वाह दो प्रकार से होता है, प्रथम मालिक के घर ही में पेट भरना, कुछ नए कुछ पुराने दिए हुए वस्त्रों से देह ढँकना ; अमल (अफ़ीम) तमाखू के नाम से कुछ पैसे पाना ; जन्म, विवाह, मृत्यु का ख़र्च मालिक की इच्छा पर रखना; बताई हुई कोठरी में निवास करना। द्वितीय, परिवार में जितने व्यक्ति हों, उस हिसाब से 'पेटिया' (उस समय का सबसे सस्ता नाज) कहीं दैनिक, कहीं मासिक दे दिया जाता है ; वस्त्र, अमल, तमाखू एवं हाथ-ख़र्च के नाम से कहीं मासिक, कहीं वार्षिक मिल जाता है, और रहने को झोंपड़ा। वे दिन-रात मालिक के घर में काम करते हैं और अवकाश मिलने पर अपनी झोंपड़ी में खा-पका कर पड़ रहते हैं। इनको जन्म, विवाह, मृत्यु पर कुछ सामान और कुछ ख़र्चा दे दिया जाता है। दासियाँ साधारण समय में कुछ मैले-कुचैले वस्त्र पहिने रहती हैं, परन्तु किसी उत्सव पर या मालकिन के साथ बाहर निकलने पर ठिकाने के वस्त्राभूषणों से सजा दी जाती हैं, और वे बड़े अभिमान से चलती हैं। परन्तु यह जानती हैं कि घर में लौटते ही वह शृङ्गार ठिकाने के सिपुर्द कर देना

पड़ता है। यदि कोई ग़ुलाम किसी विधि से वस्त्राभूषण की सामग्री जुटा लेता है तो मालिक के क्रोधभाजन बनने पर या मृत्यु पर वह सब कुछ ठिकाने के अधिकार में आ जाता है। ठीक है, दासत्व में स्वत्व या अधिकार का अस्तित्व कहाँ ?

दरोगों का काम मालिक के घर में भोजन पकाना, पानी भरना, पीसना, झाड़ू देना, शारीरिक सेवा करना, सब प्रकार के वस्त्र धोना, झूठे बरतन मलना, मल-मूत्र उठाना—अर्थात् मालिक जो कुछ कहे, बिना ननुनच लगाए उसका पालन करना। मण्डली में से जो समझदार मालिक की आदतों को ख़ूब जान लेता है, उसकी हुकूमत घर भर में ख़ूब चलती है; पत्र, वस्त्र, शस्त्र, आभूषण और शराब आदिक भण्डारों की चाबियाँ उसके हाथ में रहती हैं, और इसी से वह भण्डारी भी कहला सकता है। दूसरे दरोगों का भी हानि-लाभ पहुँचाने वाला दरोगा हो जाता है। बाज़ार की ख़रीद-फ़रोख़्त, लेन-देन, और ठिकाने के प्रबन्ध में भी उसका मुख्य हाथ हो जाता है, सारांश वही सब कुछ बन बैठता है और अपना घर भी बना लेता है। जाति भी सुधार लेता है। विरले ही ठिकाने और राज्य ऐसे हैं, जिनमें किसी दरोगा का बोल बाला न हो। मध्यम अथवा साधारण स्थिति के जानने में प्रायः इनका परदा नहीं होता, बेरोक टोक जाते हैं। जहाँ नव वधुएँ हों, वहाँ आवाज़ देकर जाते हैं। किन्तु यह परदा भी नाम-मात्र ही निभता है, क्योंकि उसी घर में जन्म, पालन-पोषण तथा निवास होने वाले का परदा कैसा और कहाँ तक ? हाँ, नया मुँडा हुआ दरोगा कुछ काल इतना अनर्गल नहीं रहता। विश्वस्त होने पर ही आगे बढ़ सकता है।

हमने ऊपर कहा है कि यह उच्छिष्ट-भोजी सम्प्रदाय है। इसका अर्थ यह नहीं कि ये सबका ही उच्छिष्ट खाते हैं, उच्छिष्ट में भी इन्होंने अपने स्वाभिमान की रेखा खींच रखी है, अर्थात् अपने स्वामी, स्वामिनी और उनकी सन्तान के अतिरिक्त दूसरे का उच्छिष्ट नहीं खाते, यहाँ तक कि कवँर साहब (स्वामि-पुत्र) की कँवराणी जी का उच्छिष्ट उनके साथ आये हुए डायजवाल ही खायँगे, पुराने नहीं। इसी प्रकार यदि मालिक किसी सजातीय या सम्बन्धी के साथ भोजन करेंगे, तो वह उच्छिष्ट भङ्गी आदि को दे दिया जाता है; दो में से किसी का दरोगा उसे नहीं खाएगा। यदि कोई खा भी ले, तो पतित तो होता ही नहीं, क्योंकि एक मालिक को छोड़ दूसरा मालिक बना लेने पर उसका खाने लगते हैं ही। बीच में खा लेने से जिह्वा-लोलुपता का दोष स्वाभिमान को क्षीण करता है। इन्हें भङ्गी आदि अछूत जातियाँ भी आपस में गोला के नाम से ही गालियाँ देती हैं, क्योंकि इनका अपना अस्तित्व तो रहता ही नहीं।

मालिक की सन्तान और दरोगा की सन्तान एक ही घर में जन्मते हैं और पलते हैं। बल्कि कवँर साहब और बाई जी साहब दरोगा की गोदी ही में पलते हैं और उनका अन्न-प्राशन भी दरोगों की थाली में ही होता है, एवं बड़े होने तक दोनों वर्ग के बच्चे शामिल खाते ही रहते हैं। इसी से दरोगों को उनका उच्छिष्ट हेय नहीं जँचता, क्योंकि वे उनको पहिले अपना झूठा खिला चुके हैं और जवानी में भी यदि मालिक दरोगण को पासवान (उप-पत्नी) बना ले तो वे सदा साथ-साथ खाते ही रहते हैं। दरोगों को अपनी सन्तान पर अधिकार नहीं होता। मालिक उनको बेच सकता है, या अपनी बाईजी (लड़की) के दहेज़ में दे सकता है। दहेज़ में दिए गए दरोगों के बच्चे उस बाईजी के डायजवाल कहलाते हैं और वे वर-पक्ष के दरोगों की सन्तान से ब्याह दिये जाते हैं। लड़कियाँ तो बाई जी के विवाह के दिन ही, उसी लग्न पर, बारात में आए हुए दरोगों के लड़कों को ब्याह दी जाती हैं। दरोगण को अधिकार है कि वह जब चाहे अपने विवाहित पति को भी छोड़ सकती है तथा दूसरा कर सकती है। विशेष विधि कुछ नहीं करनी पड़ती, पहिले पति का पहिनाया चूड़ा फोड़ कर दूसरे का पहिन लेना ही विधि-विधान है। पहिले तो यह प्रथा थी कि मालिक के मरने पर दासियाँ मालिकिन के साथ चूड़ा फोड़ कर लम्बी, बाँह की काली, कत्थई, सफ़ेद या ख़ाकी काँचली, जो वैधव्य का चिह्न है, पहिन लेती थी, और नई मालिकिन के चूड़ा मुहूर्त्त पर फिर सधवा के चिन्ह धारण कर लेती थी, पहिले मालिक के साथ सती भी होती थीं। यह कहना सर्वांश में ठीक नहीं कि प्रत्येक दासी मालिक की भोग्य ही होती है, हाँ, वे उसके लिए सुसाध्य अवश्य हैं।

इस जाति में ऐसे भी स्त्री-पुरुष हैं, जो सदाचार के लिए प्रशंसा पा सकते हैं। बहुत सी विधवाएँ बैठी हैं, जो अपना एक-मात्र पति मरने पर आजीवन शील-रक्षा करती हुई वैधव्य-वेश में रहती हैं।

ग़ुलामी की परतन्त्र दशा मानव-स्वातन्त्र्य के उपासक को जितनी अखरती है, उतनी ग़ुलामों को नहीं। वे दूसरे स्वतन्त्र परिश्रम की अपेक्षा इसी दशा को अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि ये ठिकाने की प्रतिष्ठा की वस्तु होने से आवश्यकता से भी अधिक भर लिए जाते हैं। काम कम और इनका नम्बर ज़्यादा होने से आराम से पैर पसार कर पड़े रहते हैं। समय पर भोजन मिल जाता है। मालिक की चीज़ों और सवारियों का उपयोग कर ही लेते हैं। गाँव की ग़रीब जनता को घुड़क ही लेते हैं। अलबत्ता कभी-कभी मालिक को क्रोध होने पर कुछ जूते-डण्डे की मार सहनी पड़ती है। ग़ुलाम प्रतिक्षण अपने आपको अपमानित भी नहीं देखता, क्योंकि मालिक की सन्तान इनको दादा, काका, भाई, बाबा नाम से प्रतिष्ठा देती हैं, यहाँ तक कि नव-वधुएँ घर के मुख्य दास-दासी को 'धाभाई जी' 'इया जी' शब्दों से सम्बोधन करती हैं। "रे" "तू" नहीं कह सकतीं। इसीसे वे उस घर में एकान्त-भोजी कुटुम्बी के रूप में रहते हैं और इसी भावना से इतिहास-काल में अनेक ग़ुलामों ने मालिक के लिए प्राण तक दिए हैं। इस दशा में रहते हुए प्रगति-शील होने की एक और सुविधा है, अर्थात् जो ग़ुलाम चालाक होता है और पढ़-लिख जाता है, वह घर में कर्त्ता-धर्त्ता बन जाता है, अपनी पूँजी को दूर छिपा रखता है और सुविधा पाकर अलग हो, दूसरे खालसे के छोटे गाँव में जाकर आबाद हो जाता है। कहीं मास्टर साहिब बन कर, कहीं पटवारी साहब बन कर और कहीं ठेकेदार, हज़ारदार बन कर स्त्री को परदे में रखता है और ख़ुद ठाकुर साहब कहलवाने लगता है। इसी प्रकार कुछ समय बीतने पर असली राजपूत वंश के ग़रीब कुटुम्ब को प्रलोभन देकर और अपने को शुद्ध राजपूत सिद्ध करके विवाह-सम्बन्ध से राजपूत जाति में मिल जाता है। ऐसे इस समय भी बीसों उदाहरण प्रत्यक्ष हैं। यही कारण है कि ये समझाने पर भी इस दायरे से बाहर आना नहीं चाहते। इतने पर भी दूसरा घर देखने के लिए या कभी-कभी स्वतन्त्र होने की भावना से भागते भी रहते हैं। यह सीमोल्लङ्घन मालिक को सहन नहीं होता। पुराने समय में तो ऐसी स्थिति में क्रूर से क्रूर दण्ड देने का मालिक को अधिकार था। मानव हृदय को दहलाने वाले दण्ड सहज-साध्य थे। हड्डी-पसली तोड़ना तो सामान्य बात थी। भागने वाले पैरों को दण्ड मिलता था, "फींच काट डालना" (फींच पैर की एड़ी के ऊपर की वह बड़ी रग है,

राजस्थान-केसरी

श्री० ठाकुर केशरीसिंह जी बारहठ

कोटा (राजपूताना)

जिसके बल मनुष्य चल सकता है। वह कभी एक पैर की और कभी दोनों पैरों की काट दी जाती थी) किन्तु वह समय अब नहीं रहा। अब भागने वाले को पकड़ लाने में युक्तियों का जाल बिछाया जाता है, जैसे, बिना ख़र्च का ब्याह करा कर अफ़ीम या मद्य का इतना गहरा

व्यसनी बना देना कि वह स्वयं खूँटे बँध जाय, वज्र मूर्ख बनाए रखना, उसके माता-पिता की उत्तर-क्रिया एवं उसके विवाह आदि प्रसङ्गों के नाम पर स्टाम्प में क़र्ज़े की तहरीर लिखा कर शर्त करना कि जाना चाहे, तब एकदम पूरी रक़म चुकावे, भाग जाने पर ठिकाने का ज़ेवर लेकर या चोरी कर भागने का कोर्ट में दावा करना, चुपचाप ठोक-पीट कर घसीट लाना, ठिकानों में परस्पर यह सन्धि करना या राज्य से ऐसा नियम बनवाना कि ऐसे .ग़ुलाम को कहीं आश्रय न दिया जावे, इत्यादि। वर्तमान स्वतन्त्रता की लहर को कौन रोक सकता है? जिन दरोगों के दिमाग़ में वह लहर घुस पाई, उन्होंने अपनी हीन दशा पर आवाज़ उठाई, रावण-राजपूत सभा के नाम से सोने की चिड़िया फड़फड़ा उठी, सहसा ठिकानेधारी भी चौंक पड़े, चिन्ता का कुहरा छा गया। ठिकाने हैं, परन्तु कलदार कहाँ? रोटी कपड़े के साँटे रात-दिन कौन पड़ा रहे! एक .ग़ुलाम की जगह मासिक माँगने वाले पाँच चाहिए, फिर भी कुछ काम तो शेष रह ही जायँगे, अन्नदाता तो कोई कहेगा ही क्यों? एक नहीं, अनेक आफ़तें हैं, तब क्यों न हिल उठें? नहीं समझ में आता कि वह किस आशा पर भारत की सार्व-भौम सरकार के पास 'त्राहि माँ' करके दौड़ी? क्या अमेरिका की "टॉम काका की कुटिया" पढ़ कर? परन्तु क्या पैंतीस करोड़ .ग़ुलामों के पूरे बाज़ार को जकड़ कर मज़ा लूटने वाले तुम्हें स्वतन्त्र कर देंगे? हाँ, यों कहो कि .ग़ुलाम तो रहना चाहते हैं, परन्तु ग़ुलामों के ग़ुलाम नहीं रहना चाहते।

महाराणा प्रताप

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

क़ायम किए हुए था बहुत अपनी आन को,
क्यों हेच फिर न समझे वह शाहों की शान को।
मैदाने जङ्ग में भी हमेशा था सरबकफ़,[1]
फिरता रहा लिए वह हथेली पै जान को॥

झूम कर जिस घड़ी तलवार सँभाले प्रताप,
नावके तेज़[2] को तरकश से निकाले प्रताप।
शेर भी आए मुक़ाबिल में तो बिल्ली की तरह,
बढ़ के पञ्जे से वहीं उसको दबा ले प्रताप॥

रन में पड़ता ही न था पीछे क़दम प्रताप का,
आस्माँ से बात करता था अलम[3] प्रताप का।
अच्छे अच्छों ने सर उसके सामने ख़म कर दिए[4],
सर किसी के सामने फिर क्या हो ख़म प्रताप का।
थी वतन से कैसी उल्फ़त[5] उसको "बिस्मिल", इसलिए —
नाम लेते हैं अदब के साथ हम प्रताप का॥

१—सर हथेली पर लिए, २—तीक्ष्ण तीर, ३—झण्डा, ४—झुका दिए, ५—प्रेम।

बूँदी का राजवंश

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

[परिचय अन्यत्र देखिए

छप गई ! प्रकाशित हो गई !!

यह नाटक भारतीय समाज में जीवन-संग्राम का जीता-जागता करुण चित्र है। पाप के प्राङ्गण में सत्य का क्रन्दन मालती के हृदय से निकल कर जान पड़ता है इस नाटक रूप में आया है। प्रचार की दृष्टि से पुस्तक का मूल्य केवल १) रु०; स्थायी ग्राहकों से ॥।) मात्र !

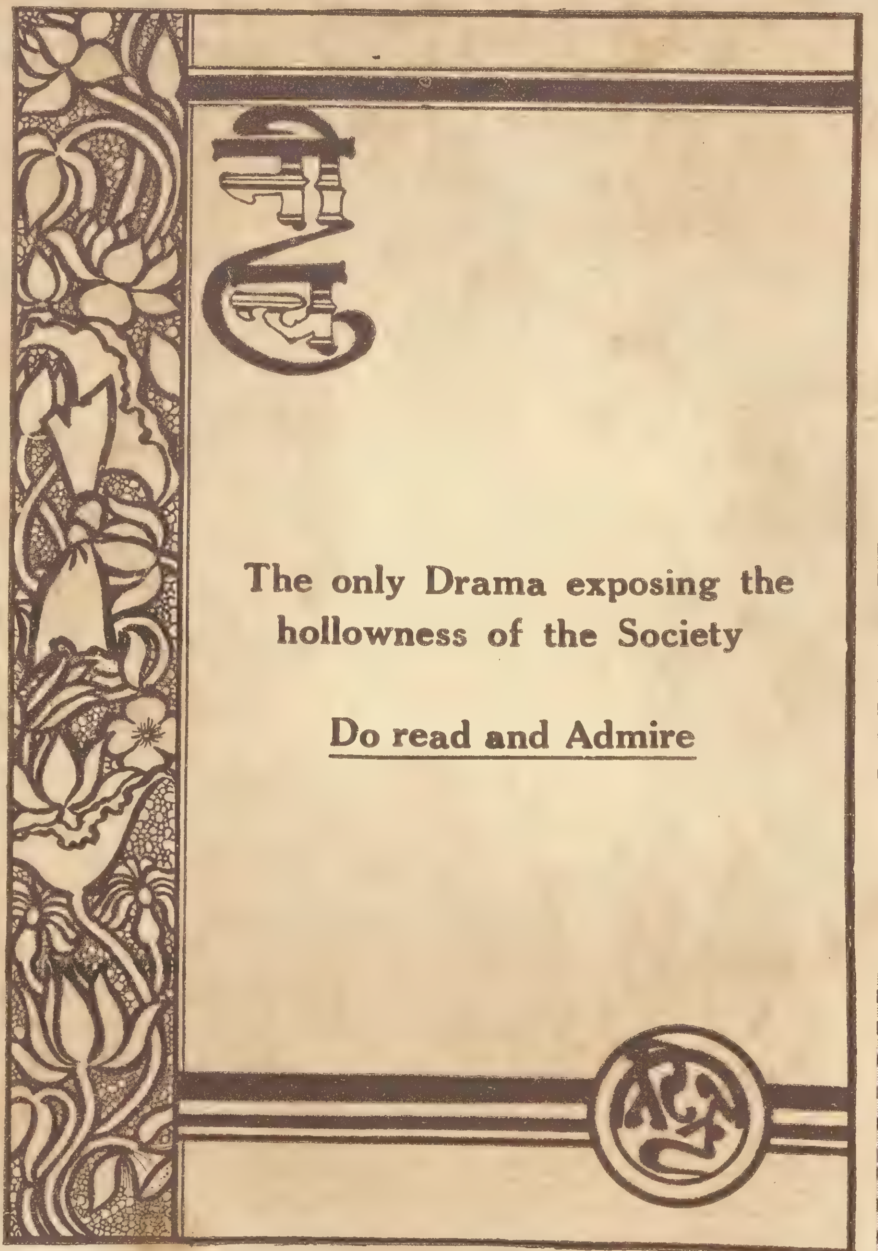

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

विलायती उल्लू

[श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

"मिस्टर डिकेन्स तीन बजे दोपहर को डाक गाड़ी से पहुचेंगे।"—गाबुल

वाह ! वाह ! इसके क्या मानी ? मैं क्या जानूँ, मिस्टर डिकेन्स किस चिड़िया का नाम है ? उनसे मुझसे मतलब ? चाहे वह दोपहर को पहुँचें, चाहे सेपहर को, मेरी बला से। इस शहर में आने-जाने वालों के नाम-गाम या हुलिया लिखने के लिए मैंने कोई रजिस्टर तो खोल ही नहीं रक्खा है। रोज़ ही सैकड़ों आते हैं और चले जाते हैं। फिर इनमें आख़िर कौन सी दुम लगी हुई है कि पापा इनके पहुँचने का मुझे यह तार दे बैठे ? इनकी सभी बातें ऐसी ही ऊट-पटाङ्ग हुआ करती हैं। और तारीफ़ यह कि कोई काम करूँ तो आफ़त, न करूँ तो आफ़त। हाल ही में एक दफ़ा और जब पापा इसी तरह बाहर गए थे तो मुझसे कह गए थे कि 'ख़बरदार, कोई ज़रूरी काम रुकने न पावे।' उनका सबसे ज़्यादा ज़रूरी काम ख़तकिताबत ही से सरोकार रखता है। इसलिए उनकी ग़ैरहाज़िरी में उनकी डाक की बड़ी फ़िक्र रखता था। और उनके ख़तों को खोल कर बड़ी मुस्तैदी से काम करता था। यहाँ तक कि उन दिनों पापा से दान माँगने वालों के दस ख़त आए थे। कोई नौकरी छूट जाने से दाने-दाने का मुहताज था। किसी के पास ग़रीबी की वजह से इम्तिहान में फ़ीस देने के लिए रुपए न थे। किसी को इलाज कराने के लिए रुपयों की ज़रूरत थी। ग़रज़ यह कि सभी ने पापा को दानी और रहमदिल जान कर उनसे मदद की दरख़ास्त की थी। और मैंने भी पापा का मान रखने के लिए तुरन्त बैङ्क से रुपए निकाल कर सभी के पास पचास-पचास रुपए भेज दिए। जिसका इनाम शाबाशी के बदले पापा ने डाँट-फटकार और घुड़कियों से दिया। मैंने तो इज़्ज़त बनाई और उन्होंने आते ही मेरी इज़्ज़त उतार ली। यह कहाँ की भल-मनसाहत थी ? इसीलिए बन्दा इस दफ़ा बहुत ही फूँक-फूँक कर क़दम रखता था और डाक के मामलों में तो दूर ही से कानों पर हाथ धरता था। ख़तों का बण्डल डाकिए से लेकर चुपचाप उनकी मेज़ पर पटक देता था, और कभी भूल कर भी उन पर नज़र नहीं डालता था। कहावत मशहूर है कि—दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँक कर पीता ही है।

मगर इस तार को क्या करूँ, जो पापा ने ख़ास तौर से मेरे ही नाम भेजा है। जी में आया, फाड़ कर फेंक दूँ। कह दूँगा, नहीं मिला। मगर तार लाने वाले ने उसकी रसीद मुझसे ले ली थी। और पापा ऐसे आदमी नहीं हैं, कि बिना किसी मामले की जाँच पड़ताल किए उसकी जान छोड़ दें। फिर सोचा, इसके लिए परेशान होने की ज़रूरत ही क्या है। इसमें इतना ही लिखा है कि मिस्टर डिकेन्स फ़लाँ वक्त पहुँचेंगे। ज़्यादा से ज़्यादा इसका मतलब यही हो सकता है कि इस बात को उनके कारबार के रोज़नामचे में लिख दूँ। बस, झगड़ा ख़तम। इसके सिवाय और इस पर अमल ही भला क्या किया जा सकता है ?

इस तार कम्बख़्त ने मेरी अक़्ल ऐसी बौखला दी कि उसको दुरुस्त करने के लिए डेढ़ घण्टे तक कमरे के भीतर टहलना पड़ा। उसके बाद अपना ध्यान बटाने की ख़ातिर अपने मकान के कमरों को सजाने में लग गया। यह भी एक ज़रूरी काम था। क्योंकि कल ही उनमें सफ़ेदी हुई थी। और सारा सामान—मेज़, कुर्सी, चारपाई, अल्मारी, पियानो वग़ैरह को छोड़ कर—भण्डारख़ाने में पड़ा था। नौकर कोई था नहीं। बेरा पापा के साथ गया था। आया को आँण्टी (चची) अपने साथ अपने भाई के यहाँ ले गई थीं। मेहतर सुबह ही को झाड़ू देकर चला गया। रह गया बावर्ची। वह भी, सन्नाटा देख कर शाम का खाना दिन ही में बना कर, रात के लिए छुट्टी ले गया था। ख़ैर, इस काम के लिए मैं अकेला ही काफ़ी था। क्योंकि कमरों में फ़र्श तो मज़दूर कल ही बिछा गए थे।

अभी मैंने दीवालों पर तस्वीरें, पलँग पर बिस्तरे

और दरवाज़ों पर पर्दे लगाए ही थे कि यकायक ख़्याल आया कि पापा जब कभी बाहर जाते हैं, तो अक्सर कोई न कोई फ़सल की चीज़ किसी के हाथ भेजते हैं। मुमकिन है, इस दफ़े मिस्टर डिकेन्स को यहाँ आते हुए जान कर कुछ न कुछ उनके साथ रख दिया हो। बस, यही बात हो सकती है। वरना इस तार की ज़रूरत ही क्या थी? ख़ैर! इतनी देर के बाद इसका भेद तो खुला।

अब स्टेशन पर जाना ज़रूरी हो गया। क्योंकि तार में डिकेन्स के घर का ठिकाना भी नहीं दिया था, कि वक्त पर स्टेशन न पहुँच सकूँ तो अपनी चीज़ उनके यहाँ से ले आऊँ। घड़ी में देखा कि तीन बजने में अभी पन्द्रह मिनट बाक़ी हैं और स्टेशन साढ़े चार मील था। बस हाथ-पैर फूल गए, हालाँकि मोटर पर बड़े मज़े से पहुँच सकता था। मगर बाप रे बाप! मोटर के नाम से तो यहाँ कलेजा दहल उठता है। न जाने किस बेवक़ूफ़ की सलाह से पापा ने गाड़ी-घोड़ा अलग करके यह पाजी मोटर ली थी। इसे मेरे यहाँ आए कई महीने हो चुके हैं, फिर भी कम्बख़्त की अब तक भड़क दूर नहीं हुई। और न इसके मिज़ाज ही का कोई ठीक पता चला। सामने या दाहिने-बाएँ जानवर, आदमी, गाड़ी वग़ैरह देखते ही उस पर इस ज़ोरों से झपटती है कि उस वक्त लाख रोक-थाम या कतराने की कोशिश कीजिए, सब बेकार। भीड़ और ख़तरे की जगहों पर तो और बमक उठती है। बिना अपना शैतानी जोश दिखाए किसी तरह भी नहीं मानती। इसी से बन्दा इसके पास नहीं फटकता था। बस पापा ही इसकी नस पहचानते हैं और यह उन्हीं से ठीक रहती है। मगर इस वक्त इसको चलाने के लिए पापा को कहाँ से लाता? आख़िर तक़दीर ठोंक कर मैं स्टेशन जाने के लिए मोटर पर सवार होगया। जल्दी में मकान बन्द करना भी भूल गया।

रास्ता निहायत सलामती से कट गया। क्योंकि सिर्फ़ दो बैलगाड़ियाँ उल्टीं। एक ताँगे का बम टूटा! और शायद दो या तीन—ठीक याद नहीं है—देशी कुत्ते भी दब गए हों!

२

वक्त का हाल छिपा नहीं है। जब तक इस पर नज़र रक्खो, तभी तक ठीक चलता है। जहाँ ज़रा निगाह झपकी कि चोर की तरह यह दुम दबा कर भागा। इसीसे मुझे राहियों की चिल्ल-पों में इसका ख़्याल ही नहीं रहा और स्टेशन पहुँचते-पहुँचते चार बज गए।

स्टेशन के फाटक पर सड़क के किनारे असबाब का एक अम्बार लगा हुआ था। ट्रङ्क, सूटकेस, हैट-बॉक्स, पोर्टमैण्टो, झाबे अजब बेतर्तीबी से एक के ऊपर एक लदे हुए थे। सामने दो लौंडे स्वेटर और हाफ़पैण्ट पहने ढेले से फ़ुटबॉल की तरह खेल रहे थे। एक ट्रङ्क पर एक बुढ़िया सर पर ऊनी टोपी पहने और बदन को ज़नाने ओवरकोट से कसे बन्दरिया की तरह बैठी हुई थी। पास ही एक अधेड़ साहब 'निकर-बाकर' डाटे, एक आँख में ऐनक लगाए और मुँह में सिगार दबाए मेरी आती हुई मोटर को बिज्जू की तरह खड़े घूर रहे थे। बड़ी ख़ैरियत हो गई कि सौ क़दम पहिले ही मैंने मोटर रोक ली और एहतियातन पीछे चलने का 'गियर' भी लगा दिया, ताकि मोटर कुनमुनाए भी तो किसी तरह से आगे न जा सके, नहीं तो सड़क के किनारे असबाब जमा कर इस तरह अकड़ने का सारा मज़ा उस बेवक़ूफ़ को मिल जाता।

आदमी सचमुच ही सख़्त बेहूदा और बदतमीज़ निकला। आते ही कमबख़्त सर पर सवार होगया और लगा एक साँस में पूछने—"किसकी मोटर है? किसकी मोटर है? किसकी मोटर है?"

किसी की सही, उसके बाप का क्या? ऐसे वाहियात सवाल का जवाब देने के बदले मैंने ख़ुद अपने सवाल की झड़ी लगा दी—"मिस्टर डिकेन्स कहाँ हैं? मिस्टर डिकेन्स कहाँ हैं? मिस्टर डिकेन्स........"

अररररररर! मिस्टर डिकेन्स का नाम सुनते ही उसकी आँखें नीली-पीली हो गईं। खौंखिया कर बोला—"इतनी देर में मोटर क्यों लाया? तार भिजवाने पर भी उस बेवक़ूफ़ ने अब मोटर भेजी! क्या सचमुच ही मिस्टर गाबुल का लड़का टॉम इतना बड़ा गदहा है कि उसे वक्त का ज़रा भी ख़्याल नहीं।"

इतने में एक छोकड़ा कह बैठा—"गदहा नहीं, डैडी, उल्लू है उल्लू।"

"वह भी मामूली नहीं, बल्कि एकदम विलायती। यह मैं सुन चुका हूँ, विली।" यह दूसरे लांडे ने जड़ा। जब तक बुढ़िया भी रेंगती हुई आकर बड़बड़ा उठी—"और यह शोफ़र भी तो बड़ा बेवक़ूफ़ है। एक तो देर में आया और मोटर भी रोकी तो इतनी दूर पर।"

ग़ुस्से की बौखलाहट में इत्तिफ़ाक़ से मेरा हाथ "स्टियरिंग ह्वील" (मोटर घुमाने वाले चक्कर) के बीच में पड़ गया और बिजली का भोंपू ज़ोर से बज उठा, जिससे इन कम्बख़्तों की बातें और नहीं सुन सका। नहीं तो मुझे और ग़ुस्सा चढ़ता। ग़ुस्से की बात ही थी, कौन भलामानुस अपनी ऐसी-ऐसी नायाब तारीफ़ें सुन कर ख़ुश हो सकता था। ऐसे वक़्त पर यह बताना कि मैं शोफ़र नहीं, मिस्टर गाबुल का लड़का मिस्टर टॉम हूँ, अपनी आबरू को और ख़ाक में मिलाना था। क्योंकि यह बेहूदे मिस्टर टॉम को यानी मुझे मेरे ही मुँह पर बेवक़ूफ़, गदहा, विलायती उल्लू, सब कुछ तो बना चुके थे।

"उफ़्! उफ़्! कान के पर्दे फट गए। अरे, भोंपू की आवाज़ बन्द कर।" कानों पर हाथ धर के बुढ़िया चिल्लाई। उसकी देखादेखी ऐनकबाज़ भी डौंके—"अबे, ख़ाली भोंपू ही बजाएगा, कि मोटर आगे बढ़ाएगा भी?"

मेरा हाथ भोंपू के बटन पर से हट गया और मैं घबड़ा कर बोला—मोटर अब आगे नहीं बढ़ सकती।

ऐनकबाज़—नहीं बढ़ सकती तो (असबाब की तरफ़ इशारा करके) उसे यहाँ तक लाएगा कौन?

मैं उतर पड़ा और असबाब के पास जाकर पूछा—"कहाँ है जो—" इसके आगे मैं कहने ही वाला था कि, 'जो पापा ने भेजा है।' मगर पापा का लफ़्ज़ ज़बान पर आते-आते मैंने झट से अपना मुँह बन्द कर लिया, ताकि भण्डा न फूटे। ख़ैर! उस ऐनकबाज़ ने ख़ुद ही सब से बड़े झाबे को दिखा कर बता दिया कि 'यह सब क्या है, सुझाई नहीं पड़ता?' मैंने झाबा हिला कर देखा, उसमें नारङ्गियाँ भरी हुई थीं।

वाह रे पापा! इस दफ़े तो नारङ्गियाँ पहिले से भी ज़्यादा भेजीं। मगर ऐसे बेहूदों के साथ भेजीं, बस इतनी ही बेवक़ूफ़ी कर गए। जैसे ही झाबा लाकर अपने पास वाली अगली सीट पर रक्खा, वैसे ही उसने मेरा हाथ पकड़ कर असबाब की तरफ़ फिर इशारा किया।

मैं—क्या अभी और है?

वह—वाह बे आँख के अन्धे नाम नैनसुख! चला उठाओ उसे। यह मोटर इतनी दूर रोकने की सज़ा है।

दो कैनवेस के बड़े-बड़े बैग और किताबों से भरा एक चीड़ का बक्स और लादना पड़ा। क्योंकि भारी सामान सब पापा ही का था। बाक़ी औरों पर तो मिस्टर डिकेन्स का नाम लिखा हुआ था, जिनसे मुझसे कोई सरोकार न था। इसलिए मैं अपनी चीज़ें लेकर चलने की तयारी में अपनी सीट पर बैठ गया। मगर आदमी निहायत चलता हुआ था। पापा की चीज़ें लाने के बदले में वह अपना सामान भी मेरी ही मोटर पर लदवा कर शहर तक भिजवाना चाहता था। और इसके लिए मुझी को क़ुली भी बनाना चाहता था। उसकी ऐसी-तैसी! गोया मोटर नहीं छकड़ा है। मगर क्या बताऊँ, उस पाजी की धाँधली के आगे मेरा कुछ बस न चला। उसने और उसके दोनों लौंडों ने मिल कर आख़िर सब सामान मोटर में भर ही तो दिया। मोटर का टॉप खुला हुआ था, इससे उसको और आसानी हो गई।

मैंने 'सेल्फ़ स्टार्टर' दबा कर एञ्जिन चला दिया। एञ्जिन के चलते ही मोटर पीछे की ओर भागी। क्योंकि "गियर" (आगे-पीछे चलाने का हैण्डिल) पहिले ही से पीछे की चाल में लगा हुआ था, जिसका मुझे घबराहट में कुछ ख़्याल ही नहीं हुआ।

मोटर को अपनी दुम की तरफ़ से ऐंडी-बेंडी चालों से भागते हुए देख कर एक कोहराम सा मच गया। ऐनकबाज़, जो अपनी टाँग पायदान पर रक्खे हुए थे, उनकी वह टाँग फैल गई और वह सड़क पर चित लेट गए। बुढ़िया फुटबोर्ड पर खड़ी हुई दरवाज़ा खोलने जा रही थी, वह ज़मीन पर नाक रगड़ने लगी। और दोनों लौंडे, जो दूसरी तरफ़ से बिना दरवाज़ा खोले मोटर पर उचक रहे थे, गेंद की तरह बड़ी दूर तक लुढ़कते चले

गए। मुझे क्या ख़बर थी कि यह कम्बख़्त मोटर पर असबाब भी लादेंगे और उस पर ख़ुद भी चढ़ने की कोशिश करेंगे। जब उसमें तिल धरने की जगह होती, तब तो इन लोगों के बैठने का ख़याल किया जा सकता था। उस पर सब से बुरी बात यह हुई कि इन बेवक़ूफ़ों ने पिछले ख़ाने में सब असबाब का ढेर इस बुरी तरह जमा किया था कि मोटर के पिछड़ते ही वह सब खड़बड़ा कर मेरी खोपड़ी पर फट पड़ा। यही बड़ी ख़ैरियत हुई कि बहुत सी चीज़ें मेरे सर पर से फिसल कर सड़क पर गिरती गईं, नहीं तो उस दिन असबाब के ढेर के नीचे से ज़िन्दा निकलना मेरे लिए ग़ैर-मुमकिन था। एक तो लोगों की चिल्लाहट से मेरी अक़्ल बौखला गई थी, उस पर खोपड़ी की चोटों से और भी भिन्नाई हुई थी। ऐसे वक़्त मैं अपनी खोपड़ी के दर्द का ख़याल करता या मोटर रोकने का? और रोकता भी तो किसे, जो कम्बख़्त अपनी उल्टी चाल से ऐसी जान छोड़ कर भाग रही थी मानो पूरा रास्ता वह इसी तरह तय करने वाली है!

३

मोटर साढ़े तीन फ़र्लाङ्ग पर जाकर रुकी। मेरे रोकने से रुकी या अपने आप, मुझे हल्ले-ग़ुल्ले में ठीक पता नहीं चला। ख़ैर, उसके खड़े हो जाने से जान में जान आई। क्योंकि अव्वल तो मेरी पीठ में ईश्वर ने आँखें नहीं दी थीं, कि देखता रहता कि वह किधर जा रही है। दूसरे, मोटर की टेढ़ो-मेढ़ी चाल से होश उड़े हुए थे कि कहीं खाई या पेड़ से न भिड़ जाय, और तीसरे, पीछे देखने वाला शीशा कभी पेड़, कभी आसमान, कभी लम्प का खम्भा दिखला कर और हौलदिल पैदा किए हुए था। किसी तरह पन्द्रह-बीस मिनट की कोशिशों से मैंने मोटर का मुँह सीधा किया, तब तक तमाशाई मेरे सर पर पहुँच गए। न जाने इन कम्बख़्तों का मैंने क्या बिगाड़ा था कि अपने साथ ऐनकबाज़ के सारे कुनबे को और उसके गिरे हुए सामान को भी बटोरते लाए। इन बेहूदों ने आते ही मारे गालियों के आसमान सर पर उठा लिया और बुढ़िया तो ऐसी डाइन निकली कि अगर मैं 'स्टियरिङ्ग ह्वील' और झाबे की आड़ में छिपा हुआ न होता तो वह बिल्ली की तरह झपट कर मेरा मुँह ज़रूर नोच लेती। इस चुड़ैल को अपने असबाब के गिरने का बड़ा अफ़सोस था और मेरी खोपड़ी फूटने का ज़रा भी नहीं।

आख़िर तमाशाइयों की मदद से फिर सामान लादा गया और असबाब के ढेर पर ऐनकबाज़ के ख़ान्दान के चारों अदद बैठाए गए; क्योंकि मोटर में और कहीं बैठने की जगह थी ही नहीं। साहब बहादुर मेरी खोपड़ी से भी ऊँचे झाबे पर बैठे। बुढ़िया सबसे पीछे कई ट्रङ्क और सूट-केसों पर उकड़ूँ बैठी। और दोनों बचकाने किसी तरह मोटर की दीवालों पर अटक गए।

"गियर" लगाते वक़्त "क्लच" (एञ्जिन को चाल से जोड़ने का कल) पर से मेरा पैर ज़रा जल्दी उठ गया। मोटर उचक कर मेंढक की तरह उछल पड़ी। "अरे, बाप रे बाप!" की आवाज़ सर पर गूँज उठी। क्योंकि ये लोग असबाबों पर मुझसे दो फ़िट की ऊँचाई पर थे और झटके में किसी का आसन गड़बड़ा उठा, तो किसी के पैर पर कोई भारी चीज़ खिसक पड़ी। ख़ैरियत इतनी ही थी कि आगे सड़क साफ़ थी। सिर्फ़ पटरियों पर इधर-उधर पेड़ अलबत्ता खड़े थे। मगर जहाँ "मार डाला! मार डाला! लड़ गई, लड़ गई! हाय! हाय! बाप-बाप! हाँ-हाँ! उधर कहाँ! उधर कहाँ!" का शोर क़दम-क़दम पर हो, वहाँ मेरी मोटर अपना मिज़ाज भला कब तक क़ाबू में रख सकती थी। आख़िर भड़क कर दाहिनी पटरी के पेड़ को गिरा देने के लिए झपटी। किसी तरह उधर से मोड़ा तो बाईं ओर के पेड़ों की ओर घूम पड़ी। बड़ी मुश्किल में जान पड़ गई। इधर बुढ़िया की चिल्लाहट से और नाक में दम होगया। आख़िर चिल्ला कर ऐनकबाज़ से मैंने कहा—"ईश्वर के लिए अपनी माँ से कह दीजिए कि चुप रहें।"

वह उलटा मुझी पर उबल पड़ा। घुड़क कर बोला—"बदतमीज़ कहीं का! वह मेरी जोरू है कि माँ?"

"मैं क्या जानूँ? मगर इतना जानता हूँ कि इतनी बुड्ढी औरत जोरू नहीं कहलाती।"

इतने में पीछे से बुढ़िया बमक उठी—इस शोफ़र की दुम को गोली मार दो, गोली। अरे! यह हरामज़ादा!........हाय! हाय! दब गया! दब गया! दब गया!

इस चुड़ैल की चिल्लाहट से मैं कुछ ऐसा परेशान हुआ कि देख न सका कि दाहिनी पटरी पर एक गँवार एक लम्बा लट्ठा कन्धे पर रक्खे जा रहा है! मगर मेरी मोटर की निगाह कब चूकने वाली थी? आख़िर गड़गड़ा कर उससे भिड़ ही तो गई। इस बेतुके हल्ले-गुल्ले से वह चौंक कर पीछे देखने को घूमा। उसके साथ उसका लट्ठा भी घूमा। निशाने पर ऐनकबाज़ की खोपड़ी पड़ गई। तड़ाक से आवाज़ आई। गँवार तो बाल-बाल बच गया, मगर साहब की टोपी और ऐनक लट्ठा उड़ा ले गया।

"बाप! बाप!" के साथ "अबे रोक! अबे रोक!" की चिल्लाहट से कानों के पर्दे फट गए। मगर सामने पुल था, जिसके फाटक के बीच से ऐसी शैतानी मोटर को सही-सलामती से सीधा निकाल ले जाना खेल नहीं था। ऐसे आड़े वक्त इन लोगों के काँय-काँय पर ध्यान देना सख़्त बेवक़ूफ़ी थी। इसलिए बन्दा चुपचाप अपने कान दबाए पुल के बीच का सिश्त लगा रहा था। फिर भी उसके पास पहुँचते-पहुँचते इन अक़्ल के दुश्मनों ने वह आफ़त मचाई कि मेरा निशाना आख़िर गड़बड़ा ही कर छोड़ा। मैंने समझ लिया कि अब मोटर नाले में बिना कलाबाज़ी खाए किसी तरह से भी नहीं बच सकती। बस, दुनिया की आख़िरी झलक देख कर मैंने अपनी दोनों आँखें किचकिचा कर बन्द कर लीं।

न जाने पुल कैसे पार हो गया, यह मुझे ख़ुद ही ताज्जुब है। पुल के उस पार सड़क ढालू थी। और उसके बाद फिर ऊँची हो गई थी। मोटर की चाल उस वक्त तीस मील फ़ी घण्टे की थी। ढालू ज़मीन पाकर वह और भी तेज़ हो गई। यहाँ तक कि जब तक मैं उसे धीमी करके चढ़ाई पर चढ़ाने के लिए 'गियर' बदलूँ, तब तक वह मारे तेज़ी के उसी चाल से ख़ुद ही चढ़ाव पर धचाक से कूद पड़ी। बड़े ज़ोरों का झटका लगा, और मोटर ज़मीन से दो फ़ुट ऊँची उछल पड़ी। बुढ़िया ऐसा गला फाड़ के चिल्लाई कि हवा तक थर्रा उठी। मगर शुक्र है कि फिर वह डरावनी आवाज़ सुनाई नहीं दी। क्योंकि सामने आइने में देखा कि मोटर के उछलते ही वह दो सूट-केसों के साथ पीछे टपक पड़ी।

बुढ़िया क्या गिरी कि उसके मियाँ की नानी मर गई। हज़रत लगे छाती पीट-पीट कर हाय-तोबा मचाने। ऐसी जोरू के लिए मैंने इसी बेवक़ूफ़ को इस तरह रोते देखा। दोनों लौंडों ने भी उसी वक्त "हाय! मामा गिर गई" का जो अलाप भरा, तो तमाशाई न जाने कहाँ से पैदा होकर मोटर के पीछे दौड़ पड़े। ईश्वर जाने, झटके में मेरा पैर "ऐक्सेलरेटर" (चाल बढ़ाने का बटन) पर ज़रा ज़ोर से दब गया था या मोटर अपने पीछे भीड़ का शोर सुनते ही ख़ुद ही जान छोड़ कर भागी कि जब तक ऐनकबाज़ के हवास ठिकाने हों और मोटर रोकने के लिए मेरी जान खाए, तब तक तो हम लोग हवा से बातें करते हुए मील भर से ऊपर निकल आए।

मैं मोटर रोकता किस तरह? हाथ के ब्रेक (रोकने की कल) पर झाबा और बैग रक्खे हुए थे और पैर का ब्रेक ठीक काम नहीं देता था। तो भी मैं उसे दबाने जा रहा था। मगर ऐनकबाज़ कमबख़्त की ठोकरों और गालियों से मैं ऐसा बौखला गया कि पैर बहक कर चाल बढ़ाने के बटन पर पड़ गया और मैंने उसी को ब्रेक समझ कर कस के दबा दिया।

अररररर! ग़ज़ब हो गया। मोटर आँधी की तरह उड़ी। और आगे जाते हुए एक ठेले को उलट कर ज़न से पटरी पर पेड़ों के नीचे हो रही। ऐनकबाज़ मुझे नोचने, खसोटने और गालियाँ देने में इतने मस्त थे कि उन्होंने देखा ही नहीं कि सामने एक पेड़ की डाल ज़रा नीचे लटकती हुई सड़क की ओर फैली हुई है। इसीलिए मोटर तो उसके नीचे से साफ़ निकल गई। मगर ऐनकबाज़ उसमें उलझ कर रह गए। एक लम्बी "ऊ-ऊ" की आवाज़ के साथ उनकी दोनों टाँगें झाबे पर से मैंने एकाएक उठते ज़रूर देखी थीं। मगर उसके बाद वे कहाँ गए, आस्मान या ज़मीन की तरफ़ या शाख़ ही में टँगे रह गए, यह मुझे नहीं मालूम हो सका। ख़ैर! इतना जानता हूँ कि अपने साथ वह बहुत सा फ़ालतू सामान भी ले गए। क्योंकि डाल अपनी ऊँचाई की हद से ज़्यादा कोई भी चीज़ मोटर पर लदा रहना अपना अपमान समझती थी।

मोटर पर की चिल्लाहट एकदम बन्द हो गई। क्योंकि दोनों लौंडे ठेले से टकराते वक्त कुछ ऐसे डर गए थे कि तब से छिपकली की तरह मोटर की दीवालों पर चिपके ही रहे। फिर मुँह खोलने की हिम्मत नहीं की।

किसी तरह से भी चाल सुस्त न पड़ी। अब जाना

कि ब्रेक के धोके में जो मैंने चाल बढ़ाने का बटन कस के दबा दिया था, वह वहीं अटक कर रह गया। शायद उसकी कोई नस बिगड़ गई थी। इस आफ़त में चौराहा भी आ गया, जिसका मोड़ बड़ा टेढ़ा था। इतनी तेज़ चाल में मोटर मोड़ना अपनी जान पर खेलना था। मगर चारा क्या था? आख़िर ईश्वर का नाम लेकर मैंने "स्टियरिङ्ग" घुमा ही दिया। चौराहे का पुलिसमैन लोहे के लैम्पपोस्ट की बग़ल में खड़ा हुआ मेरी बेतहाशा चाल पर बिलबिला उठा, और दोनों हाथ उठा कर मुझे रुकने के लिए बड़ी ज़ोर की घुड़की बताई। मगर पलक मारते ही वह बजाय हाथ के अपनी टाँगें ऊपर उठाए लम्प के खम्भे के नीचे कलाबाज़ी खाने लगा।

खम्भे का सहारा पाकर मोटर उलटने से बच तो गई, मगर सामने का शीशा चूर-चूर हो गया। चाल में भचक और आवाज़ में भी गड़गड़ाहट शुरू हो गई, जिससे समझा कि पिनियन के ख़ाली कोई दाँत ही नहीं टूटे हैं, बल्कि किसी पहिए का टायर भी फट गया है। बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनाती। चार-पाँच फ़र्लाङ्ग और जाते-जाते टूटे हुए पिनियन के दाँतों ने भीतर ही भीतर और भी पुर्ज़े ले डाले। फिर तो मोटर गड़गड़ा कर ऐसी अड़ी कि वहाँ से टसकने का नाम ही नहीं लिया। मोटर के रुकते ही दोनों लौंडों की जान में जान आई। और दोनों कूद-कूद कर डैडी और मामा करते हुए सरपट भागे।

४

शुक्र है कि मकान अब क़रीब ही था। मगर आस-पास कोई आदमी न था, जिससे सामान उठवा कर ले जाता या मोटर ही ढकिलवाता। बड़ी देर तक खड़े रहने के बाद आख़िर उधर से एक दिहाती निकला। मैंने दो आने पैसे देकर उसे अपना असबाब ले चलने के लिए राज़ी किया। हमारी सभी चीज़ें ऐसी भारी थीं कि एक दफ़े में एक ही अदद ले जाया जा सकता था। इसलिए पहिले एक बैग निकलवा कर मकान पर रखवा आया। उसके बाद दूसरा बैग, फिर नारङ्गियों का झाबा लदवा कर ले चला। नारङ्गी पहुँच जाने पर मैं मकान ही पर रह गया और उससे कहा कि चीड़ का बक्स भी लेता आवे, जिसको मैं उसे दिखा आया था। क्योंकि इतनी ही चीज़ों को जा-जाकर लाने में बड़ी देर हो चुकी थी और मैं डरता था कि ऐसा न हो कि कहीं ऐनकबाज़ उधर अब पहुँच जाए और मुझे देख ले। इसी ख़्याल से मैंने मोटर नहीं ढकिलवाई, ताकि वह अपना सामान जिस तरह चाहे उठवा कर जहाँ जाना हो, ले जाए और उसे मेरे घर पर आना न पड़े, और न उसे मेरा पता ही मिले। बदमाशों से दूर ही रहना अच्छा होता है।

चीड़ का बक्स भी सलामती से पहुँच गया। इन चीज़ों को कमरों में रखने के लिए एक दफ़ा दफ़्तर वाले कमरे में भी जाना पड़ा। घबराहट में मेज़ पर का 'रैक' उलट गया। हफ़्तों की जमा की हुई पापा की डाक फ़र्श पर गिर पड़ी। एक-एक ख़त उठा कर मैं फिर 'रैक' पर रखने लगा। उस वक़्त देखा कि उनमें एक लिफ़ाफ़ा मेरे नाम का है। इसकी मुझे ख़बर भी न थी। इन दिनों मुझसे किसी से ख़तकिताबत थी ही नहीं। इसीलिए मैंने अपनी डाक की फ़िक्र करने की कभी ज़रूरत नहीं समझी और यह ख़त पापा के ख़तों में मिला कर बिना पढ़े ही रख दिया। ग़ौर से पते की लिखावट और मुहर देखी। पता चला, पापा का लिखा हुआ और पाँच दिन पहले का आया हुआ है। मैं समझ गया कि पापा ने मुझे क्या लिखा होगा। वही बेसर-पैर की बातें, जो हमेशा मुझसे कहा करते हैं। यानी तुम ऐसे हो, वैसे हो, दुनिया में किसी काम के लायक़ नहीं हो, वग़ैरह-वग़ैरह, ऐसे ख़त का पढ़ना, न पढ़ना दोनों ही बराबर थे। ख़ैर, उसे बाद को पढ़ने के ख़्याल से जेब में डाल कर दफ़्तर से निकल आया, और अपने कमरे में जाकर नारङ्गियों के झाबे पर टूट पड़ा। क्योंकि जब से इसे देखा था, तभी से तबियत इसी में लगी हुई थी।

अभी झाबा खोल कर एक ही नारङ्गी का छिलका उतारा था कि बाहर बरामदे में आदमियों की बोल-चाल सुनाई पड़ी।

"इसी मकान में सामान रक्खा जा रहा है?"

"हाँ, हजूर, दुई आना में चार अदद ढोय लाए हैं। अउर यू लेके पाँच भए।"

"अच्छा-अच्छा, सब सामान उतार लाओ। इनाम इकट्ठा मिल जाएगा और आदमियों से कहो कि

मोटर ढकेल कर यहीं कर दें। ख़बरदार, उसे कोई ले जाने न पाए। मैं उस सूअर के बच्चे को बिना फाँसी दिलवाए मानूँगा नहीं।......ओ ताँगे वाले, ताँगा बढ़ा कर बिलकुल सीढ़ियों से मिला दे, ताकि मेम साहब को उतरने में आसानी हो।"

न जाने क्यों, मेरे हवास गुम हो गए और मैं जल्दी से अपनी चारपाई के नीचे छिप गया। कम्बख़्ती के मारे उसी चारपाई पर कोई औरत भी गोद में लाकर लिटा दी गई। मैंने अक़्ल से फ़ौरन भाँप लिया कि यह वही बुढ़िया होगी, जो मेरी मोटर से लुढ़क पड़ी थी। उसको लाते वक़्त एक निकरवाकर वाली टाँग बुरी तरह लँगड़ा रही थी। ईश्वर जाने बुढ़िया के बोझ से या चोट खा जाने से।

सब कमरों में असबाब रक्खा जाने लगा, गोया मकान मेरा नहीं, उसके बाप का था। लँगड़ी टाँग इधर-उधर भचक-भचक कर बड़बड़ा रही थी—ख़ैर, कमरे तो सभी सजे-सजाए और साफ़-सुथरे हैं। मगर नौकरों का कोई इन्तज़ाम नहीं! और वह हरामज़ादा शोफ़र भी अब तक दिखाई नहीं पड़ा।

चारपाई पर बुढ़िया मिनमिनाई—अरे! उस शैतान का तो मैं ख़ून पीऊँगी, तब मेरा कलेजा ठण्डा होगा। कम्बख़्त ने मुझे ज़रा भी जीता नहीं छोड़ा और मेरे असबाब को भी चूर-चूर कर डाला।

झूठ, झूठ, सरासर झूठ! अगर यह चुड़ैल जीती न होती तो बोलती किस तरह?

गोल कमरे में दोनों लौंडे ऊधम मचाए हुए थे। एक ने चिल्ला कर कहा—डैडी, देखो विली पर्दे से लटक रहा है।

दूसरा बोला—नहीं, डैडी, मैं झूला झूल रहा हूँ।

लँगड़ी टाँग यहीं से पिनपिनाई—ख़बरदार! शोर मत मचाओ।

हाय! हाय! वहाँ तो पर्दा फटा जा रहा था और इस बेवक़ूफ़ को ख़ाली शोर बन्द करने की फ़िक्र थी। जब तक पर्दा फटने और किसी के ज़मीन पर गिरने की आवाज़ आई, मैं ख़ून का घूँट पीकर रह गया।

"लो, और झूलो।"

"बेशक, झूलूँगा। अब उस पर्दे से झूलूँगा।"

"तुम्हीं बड़े झूलने वाले हो? मैं भी झूलूँगा। मैं उस कमरे में जाकर झूलूँगा।"

पर्दा फटने और गिरने की फिर आवाज़ें आईं।

"अरे! जोन यह देख बाजा।"

वयॉला के सातों स्वर एक साथ बज उठे। हाय! अफ़सोस! गोल कमरे में तस्वीरें टाँगते वक़्त मैंने पापा का वॉयला भी अपनी जगह पर लटका दिया था। और उसीके नीचे 'पियानो' भी था।

"तुम नहीं बजाना जानते। लाओ मैं बजा कर बता दूँ।"

"नहीं-नहीं, रहने दो। मैं नहीं दूँगा।"

"कैसे नहीं दोगे?"

"नज़दीक आओगे तो इसीसे मारूँगा।"

"तुम्हारी ऐसी-तैसी।"

वयॉला की तोमड़ी दीवाल पर तड़ाक से बोली।

"ख़ूब हुआ। फूट गई। मारने चले थे। ओहो! अब क्या बजाओगे, अपना सर?"

"पियानो बजाऊँगा।"

"जाओ-जाओ, वयॉला बजाओ। पियानो मैं बजाऊँगा।"

"नहीं बजाने दूँगा।"

"यह लो।"

दस पर्दे एक साथ इस तरह बोल उठे, मानो किसी ने उन पर घूँसा मार दिया। इसके बाद ऐसा जान पड़ा कि एक दूसरे को ढकेल-ढकेल कर पियानो के पर्दों पर घूँसेबाज़ी हो रही है।

"अब कैसे बजाओगे? मैं इस पर लेटा जाता हूँ।"

एकाएक सब पर्दे झनझना उठे। हाय! हाय! पर्दों पर मानो सचमुच ही कोई उचक कर लेट गया।

न जाने इस वक़्त लँगड़ी टाँग कहाँ जाकर ऐसी बहरी हो गई कि पापा की चीज़ों पर इतना ज़ुल्म होने पर भी वह कहीं से कुछ न मिनकी। बुढ़िया अलबत्ता ऊपर चीं-चीं करती रही कि "बेटा, इतना शोर न करो। शोर न करो।" मगर नक़्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता?

ऐसे बेटों को चूल्हे में झोंक दूँ। कमबख़्तों ने इतनी ही देर में वह आफ़त मचा दी कि सैकड़ों रुपयों के वारे-न्यारे हो गए। अब तो अपना नुक़सान किसी

तरह से भी सहते बन न पड़ा। जी में आया कि निकल कर इन पाजियों को इतना मारूँ कि वे भी याद करें। फिर चाहे जो कुछ हो। मगर बाहर निकलने के ख़्याल ही से कलेजा काँप उठा। मैं सिमट कर अपनी जगह पर और सिकुड़ गया, और ईश्वर से दुआ मनाने लगा कि जल्दी रात हो तो अँधेरे में किसी तरह लुक-छिप कर यहाँ से भागूँ।

इतने में लँगड़ी टाँग कमरे में आकर बोली—डारलिङ्ग, नौकरों का अब तक कहीं पता नहीं है। मगर बावर्चीख़ाने की अलमारी में खाना बना रक्खा है। काफ़ी तो नहीं है, ख़ैर! इस वक़्त किसी तरह काम चल जायगा।

अरे! इस कमबख़्त ने मेरे खाने पर दाँत लगाया! तब क्या रात भर मुझे भूखे ही रहना पड़ेगा?

बुढ़िया—गावुल का लड़का कहाँ है? क्या उस बेवक़ूफ़ को नहीं मालूम था कि बिना नौकरों के किस तरह काम चलेगा?

लँगड़ी टाँग—यही तो मुझे भी ग़ुस्सा मालूम होता है कि उस बेवक़ूफ़ ने भी अब तक कोई ख़बर नहीं ली। ख़ैर, जाता हूँ अब उसका पता लगाने।

दिल को कुछ ढाढ़स हुआ कि यहाँ से किसी तरह उसके टलने की तो नौबत आई। इसी बहाने सही। मगर कमबख़्त इस दफ़े दरवाज़े पर पहुँचते ही चौंक पड़ा और बोला—अरे यह नारङ्गी का छिलका दरवाज़े की आड़ में कैसे आया? क्या विली ने झावा खोल डाला?

नारङ्गी के छिलके का नाम सुनते ही मेरी नाक धौंकनी सी चलने लगी। फ़र्श की कुल गर्द एक ही साँस में एकदम दिमाग़ में पहुँच गई। फिर तो हज़ार रोकने पर भी ठायँ-ठायँ-ठायँ कई छींकें तावड़तोड़ निकल पड़ीं।

कमबख़्ती के मारे छिली हुई नारङ्गी भी मेरे पास से बरामद हो गई। अब इतना ही कहना काफ़ी है कि अगर लँगड़ी टाँग का ढाँचा पहिले ही से टूटा-फूटा न होता तो उफ़्! उस दिन उसके चङ्गुल से जीता निकल भागना किसी तरह से मुमकिन नहीं था, फिर भी उसने और उसके अचकाने-बचकाने जोरू-जाँता ने अपना हौसला कुछ बाक़ी नहीं रक्खा। उस पर भी कमबख़्तों का पेट नहीं भरा और मुझे पुलीस की इन्तज़ारी में ग़ुसलख़ाने में बन्द रखना चाहते थे। किस तरह वहाँ से जान लेकर भागा, मुझे ख़ुद ही नहीं मालूम। बल्कि दस बजे रात तक मुझे विश्वास ही नहीं हो सका कि मैं ज़िन्दा हूँ।

पापा ने अच्छा तार भेजा। यह कमबख़्त तार था या मेरे लिए मौत का नुस्ख़ा? मैं क्या जानता था कि इसका मतलब यह होगा कि तुम अपना घर-बार मिस्टर डिकेन्स के लिए छोड़ कर इस जाड़े-पाले की रात में सड़कों पर भूखों मरो। मैं समझता था कि यह कमबख़्त मुझको ढूँढ़ने के लिए यहाँ अटका हुआ है, कुछ देर में चलता हो जाएगा। मगर अब तो रङ्गत से ऐसा जान पड़ा कि शायद वह यहाँ से जाना आज भूल ही गया।

बला की सर्दी और पहाड़ सी रात, उस पर मारे भूख के किसी तरह चैन ही नहीं पड़ता था। एक-एक मिनट काटना मुश्किल हो गया। उस वक़्त पापा के ख़त का ख़्याल आया। चलो, कुछ न कुछ वक़्त काटने का मसाला तो मिला। इसलिए सड़क के लम्प की रोशनी में मैं उसे पढ़ने लगा।

पापा ने बहुत सी बेतुकी बातें लिखने के बाद लिखा था—इसके साथ जो दूसरा ख़त भेजता हूँ, वह मैडम फ़ैटी के लिए है, जो परदेसियों के ठहरने के लिए किराए पर कमरे देती है। इस ख़त को पाते ही तुम मैडम फ़ैटी को दे देना और तीन सजे-सजाए कमरे, एक ड्राइङ्ग-रूम, एक बावर्चीख़ाना और एक ग़ुसलख़ाना मेरे एक मुलाक़ाती मिस्टर डिकेन्स के लिए, जो वहाँ हवा-पानी बदलने की ख़ातिर जाने वाले हैं, महीने भर के वास्ते सुरक्षित (Reserved) करा देना। कमरों को तुम देख-भाल लेना, ताकि बाद को उन्हें कोई शिकायत न हो। इनके पहुँचने का वक़्त मैं बाद को तार देकर बताऊँगा। उसकी ख़बर तुम मैडम फ़ैटी के पास भेज देना। वह स्टेशन पर इनके लिए सवारी का भी इन्तज़ाम कर देंगी, जैसा वह अपने यहाँ आने वालों के लिए करती हैं।

दोनों लैटर-पेपर मेरे हाथ से गिर पड़े। अब इसके आगे क्या पढ़ता अपना सर? बस कलेजा थाम कर वहीं बैठ गया, और एकदम महीना भर तक के लिए।

(*Copyright.*)

राजपूतों की उत्पत्ति

[डॉक्टर मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

वर्तमान राजपूत लोग वैदिक कालीन क्षत्रियों के वंशधर हैं या शक, सिथियन और हूणों की सन्तानें, इस विषय में इतिहासज्ञों में गहरा मत-भेद है। डॉक्टर भाण्डारकर, कर्नल जेम्स टॉड और मिस्टर विन्सेण्ट स्मिथ, राजपूतों को तीसरी-चौथी शताब्दी में आई हुई विदेशी जातियों की सन्तानें मानते हैं। और महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, श्रीयुत विनायक चिन्तामणि वैद्य और डॉक्टर स्टीन कोनो, राजपूतों को प्राचीन आर्यों से निकले हुए मानते हैं। दोनों ही पक्षों की दलीलें बड़ी प्रबल और प्रमाण पुष्ट हैं और नवीन शोध से भरी हुई हैं।

महाकवि चन्द बरदाई का पृथ्वीराज-रासो महाकाव्य होने के अतिरिक्त ऐतिहासिक ग्रन्थ भी माना जाता है। कुछ समय पूर्व तक तो लोगों में यह धारणा थी कि चन्द बरदाई महाराज पृथ्वीराज का समकालीन था और उसने अपने ग्रन्थ में आँखों देखी घटनाओं का वर्णन किया है। इतिहासकार लोग मानते थे कि काव्य-कल्पना को निकालने के बाद रासो पृथ्वीराज के समय का और उसके आसपास का एक प्रामाणिक इतिहास है। परन्तु रायबहादुर पं० गौरीशङ्कर ओझा ने अपने अधूरे राजपूताने के इतिहास में शिला-लेखों के आधार पर यह दिखलाया है कि "रासो" सोहलवीं शताब्दी का ग्रन्थ है और इसकी रचना केवल जनश्रुति और कल्पना के आधार पर की गई है। इस ग्रन्थ की रचना के विषय में पं० गौरीशङ्कर जी का मत निर्विवाद मालूम होता है और अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के सम्बन्ध में जो उन्होंने चन्द बरदाई की भूलें बताई हैं, उनसे यह भी स्पष्ट विदित होता है कि चन्द बरदाई ने ऐतिहासिक छान-बीन और खोज की कोई चिन्ता न करके जैसा सुना और जैसी कल्पना की प्रेरणा हुई, उसके अनुकूल अपने ग्रन्थ की रचना कर डाली। 'रासो' वास्तव में काव्य-प्रधान है, परन्तु तो भी यह मानना पड़ेगा कि राजपूत-इतिहास के पण्डित उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। चन्द बरदाई ने उल्लिखित घटनाओं को स्वयं न देखा होगा, परन्तु सोलहवीं शताब्दी राजपूतों के गौरव-काल से इतनी दूर नहीं थी, जितनी बीसवीं शताब्दी है। उस समय की जनश्रुति और किम्बदन्तियाँ अधिक सजीव और साधार होंगी और उस समय की कल्पना भी वास्तविकता से इतनी परे नहीं होगी, जितनी आजकल की कल्पना हो सकती है। पृथ्वीराज रासो में चौहाण, सोलङ्की, पवाँर और पढ़िहार राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में एक मनोरञ्जक कथा दी हुई है। उसमें लिखा है कि जब आर्यावर्त को मलेच्छों ने दबा लिया और क्षत्री लोग अपनी मातृभूमि की रक्षा नहीं कर सके तो ऋषियों ने आबू पहाड़ पर एक बृहत यज्ञ किया और देश तथा धर्म की रक्षा के लिए वीर क्षत्रियों का प्रादुर्भाव करने की भगवान से प्रार्थना की। यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के बाद वशिष्ठ के अग्नि-कुण्ड से चौहान, सोलङ्की, प्रतिहार और परमार ये चार राजपूत वंश उत्पन्न हुए और इसी कारण इनके वंशधर अग्नि-वंशी कहलाए। पृथ्वीराज-रासो की यह कथा बूँदी के प्रसिद्ध विद्वान सूरजमल जी चारण ने अपने विशाल ग्रन्थ 'वंश-भास्कर' में १९ वीं शताब्दी में दोहराई। ये राजवंश इस समय अपने को अग्निवंशी ही मानते हैं। इस कथा के आधार पर मिस्टर विंसेण्ट स्मिथ ने यह निर्णय किया कि राजपूत लोग वैदिक क्षत्रियों की सन्तानें नहीं हैं, बल्कि शक, सीथियन और हूण आदि विदेशी जातियों के वंशधर हैं। अपना राज्य स्थापित करके जब ये आक्रमणकारी विदेशी जातियाँ भारतवर्ष में बस गईं और इन्होंने भारतीय सभ्यता को तथा

भारतीय धर्म को ग्रहण कर लिया तो ब्राह्मणों ने आबू पहाड़ पर एक महायज्ञ करके इन लोगों को शुद्ध तथा संस्कृत बना लिया और ये लोग राजपूत या क्षत्रिय कहलाने लगे। अग्नि-कुण्ड से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम अग्निवंशी हुआ। इस धारणा को पुष्ट करने के लिए विन्सेण्ट स्मिथ ने अन्य कई दलीलें पेश की हैं। वह लिखता है कि "आठवीं और नवीं शताब्दी में ही राजपूत रियासतों का एकाएक प्रकट होना एक आश्चर्य की बात है। भारत के प्राचीन राजवंशों के वर्ण या जाति के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अशोक और समुद्रगुप्त के विषय में कोई नहीं बतला सकता कि वे किसी बड़े कुल के वंशधर थे या अपने भुजबल के कारण बड़े बन गए थे।" टॉड और दूसरे लेखकों ने लिखा है कि अधिकांश राजपूत शक हैं और वर्तमान ऐतिहासिक शोध से पुष्टि होती है कि कई मुख्य-मुख्य राजपूत-वंशों में विदेशियों का रक्त मिला हुआ है। भारतवर्ष में सबसे प्रथम ई० पू० दूसरी शताब्दी में शक लोग बाहर से आए, उसके पश्चात् यूची या कुशन लोग इधर आए। निस्सन्देह शक और कुशन-वंशी राजाओं ने जब हिन्दू-धर्म स्वीकार कर लिया तब ये क्षत्रियों में सम्मिलित कर लिए गए। तीसरी जाति जो बाहर से आई, वह हूण है। ये लोग विशेषकर राजपूताना और पञ्जाब में स्थायी रूप से आबाद हुए। इस जाति का एक बड़ा विभाग गुर्जर थे, जो अब गूजर कहलाते हैं। इन लोगों ने आबू से पचास मील उत्तर-पश्चिम में भीनमाल या श्रीमाल को अपनी राजधानी बनाया और राजपूताने में अपना राज्य स्थापित कर लिया। भीनमाल के गुर्जर प्रतिहार राजाओं ने कन्नौज को जीत कर उत्तर भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना की।

राजपूताने के प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड ने भी पृथ्वीराज-रासो और वंश-भास्कर की कथाओं पर विश्वास करके राजपूतों को शक-जाति के वंशज ही माना है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में वर्तमान राजपूतों के ऐसे रीति-रिवाजों का ऐसा उल्लेख किया है जो शकों के रीति-रिवाजों से मिलते-जुलते हैं। इन रिवाजों में सूर्य की उपासना, पौराणिक कथाएँ, सती-प्रथा, मद्यपान और शस्त्र तथा घोड़ों का अर्चन हैं। ये सब प्रथाएँ शकों के रिवाजों से मिलती-जुलती हैं। डॉक्टर सर रामकृष्ण भाण्डारकर ने भी टॉड और स्मिथ का ही पक्ष ग्रहण किया है। इस पक्ष के कई विद्वानों ने चावड़ा, पड़िहार, परमार, चौहान, तँवर, सोलङ्की, कछवाहा आदि राजपूतों को गूजर या गुर्जर अर्थात् हूण जाति के वंशज होना सिद्ध किया है।

रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर जी ओझा राजपूत और शकों के रिवाजों की समानता में सन्देह नहीं करते। वे इस बात से भी इनकार नहीं करते कि राजपूत लोग सीथियन, शक या हूणों की सन्तानें हैं। मनुस्मृति, विष्णुपुराण और वायुपुराण के आधार पर आपने सिद्ध किया है कि शक आदि जातियाँ क्षत्रिय थीं और राजा सगर के समय भी वे विद्यमान थीं। पीछे से बौद्ध आदि धर्म स्वीकार कर लेने के कारण वैदिक मत वालों ने उनकी गणना म्लेच्छों में कर ली। भारतवर्ष में जब बौद्ध-धर्म की प्रबलता हुई, उस समय ब्राह्मण आदि अनेक लोग बौद्ध-धर्म में ही सम्मिलित हो गए और उनकी गणना कट्टर ब्राह्मणों ने स्वरचित स्मृतियों के अन्दर शूद्रों में कर दी। इतना ही नहीं, किन्तु अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, सुराष्ट्र, मगध आदि बौद्ध प्रायः देशों में यात्रा के सिवा आ जाने पर पुनः संस्कार करने का विधान तक किया था। रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर जी ने एन-साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका का भी हवाला दिया है, जहाँ पर यह उल्लेख आया है कि शक आर्य थे। डॉक्टर सर अर्लस्टाइन ने सन् १६०१ में चीनी तुर्किस्तान में जो खरोष्ठि-लिपि के लेखों का संग्रह किया था, उनकी भाषा भी तुर्की-मिश्रित भारतीय प्राकृत है और वहाँ के शासकों की उपाधियाँ भारतीय महाराजाओं की उपाधियों से मिलती-जुलती हैं। चीनी यात्री फ़ाहियान ने भारतवर्ष आते हुए मार्ग में ऐसे अनेक नगर देखे थे, जहाँ शक लोगों का राज्य था और इसी जाति का प्राधान्य था। ये लोग अधिकांश महायान मतावलम्बी थे और विशेष अवसरों पर भगवान बुद्ध की प्रतिमा का जुलूस निकाला करते थे। फ़ाहियान ने जो इन जुलूसों का वर्णन किया है, वह जगदीश की वर्तमान रथयात्रा से मिलता-जुलता है।

महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशङ्कर जी का कहना है कि "ऐसी दशा में यदि राजपूतों के प्रचलित रीति-रिवाज शकों के रीति-रिवाजों से मिलते हुए हों तो

उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि दोनों ही क्षत्रिय जातियाँ थीं। सूर्य की उपासना वैदिक काल से आर्य लोगों में प्रचलित थी और जहाँ-जहाँ आर्य लोग पहुँचे वहाँ-वहाँ उसका प्रचार हुआ। शकों की पुरानी कथाओं का यहाँ की प्राचीन कथाओं से मिलना भी यही बतलाता है कि वे कथाएँ यहाँ से ही मध्य एशिया आदि देशों में आर्यों के साथ पहुँची थीं। सती होने की प्रथा भी शकों के इस देश में आने से पूर्व की है। शस्त्र और घोड़ों की पूजा प्राचीन काल से लगा कर अब तक बराबर होती है।

कुशन या यूची वंशियों के विषय में पण्डित गौरीशङ्कर जी कहते हैं कि इन लोगों के सिक्कों में अधिकांश पर एक तरफ़ राना की खड़ी हुई मूर्ति और दूसरी ओर बैल के पास खड़े हुए शिव की मूर्ति बनी है। बाक़ी के सिक्कों पर सूर्य, बुद्ध तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। अनेक सिक्कों पर राजा अग्नि में आहुति देता हुआ खड़ा है। प्राचीन काल से भारत के क्षत्रिय राजाओं में देवकुल बनाने की प्रथा थी, जहाँ राजाओं की मृत्यु के पीछे उनकी मूर्तियाँ रक्खी जाती थीं। शिला-लेखों से सिद्ध हो गया है कि कुशन वंशियों में भी रघु और शिशुनाग वंशी राजाओं के समान देवकुल बनाने की प्रथा थी। इन बातों को देखने से इनका आर्य होना निश्चित है। हूणों के विषय में भी श्रीयुत ओझा की धारणा है कि यह मध्य एशिया में रहने वाली एक आर्य जाति थी, जिसने बल प्राप्त कर एशिया और यूरोप के कई देश विजय किए और उन पर अपना अधिकार जमा लिया था। मध्य एशिया में बौद्ध-धर्म का प्राबल्य था और हूणों ने भी उसे स्वीकार किया होगा, जिसके कारण ब्राह्मण लेखकों ने धर्म-द्वेष से प्रेरित होकर मध्य-एशिया की अन्य जातियों के समान उनकी गणना भी म्लेच्छों में की।

वशिष्ठ के अग्नि-कुण्ड से राजपूतों के उत्पन्न होने की जो कथा है उसको पण्डित गौरीशङ्कर जी केवल काव्य-कल्पना मानते हैं। उनका कहना है कि पृथ्वीराज रासो की रचना सोलहवीं शताब्दी में हुई थी और उसी समय इस कथा की सृष्टि की गई थी। प्राचीन इतिहास और साहित्य की अज्ञानता के कारण फिर सूरजमल जी चारण ने इसको दुहराया और मिस्टर स्मिथ तथा डॉक्टर भाण्डारकर ने अधिक छान-बीन न करके इस कल्पित कथा को इतिहास का रूप दे दिया। पण्डित गौरीशङ्कर जी ने यह सिद्ध किया है कि विक्रम सम्वत् १०१३ से लगा कर विक्रम सम्वत् १६०० तक के चौहानों के बहुत से शिला-लेख, दान-पत्र तथा ऐतिहासिक संस्कृत पुस्तक मिले हैं, जिनमें से किसी में उनका अग्निवंशी होना नहीं लिखा, पृथ्वीराज-विजय में जगह-जगह उनको सूर्यवंशी बतलाया है। पृथ्वीराज से पूर्व अजमेर के चौहानों में विग्रहराज बड़ा विद्वान और वीर राजा हुआ था। उसके समय के एक शिला-लेख पर चौहानों को सूर्यवंशी लिखा है। इसी प्रकार विक्रम सम्बत् ४४५ से विक्रम सम्वत् १६०० तक सोलङ्कियों के अनेक दान-पत्र, शिला-लेख तथा कई ऐतिहासिक संस्कृत ग्रन्थ मिले हैं, जिनमें कहीं उनको अग्निवंशी होना नहीं लिखा, किन्तु उसके विरुद्ध उनका चन्द्रवंशी और पाण्डवों की सन्तान होना जगह-जगह बतलाया है। प्रतिहार राजपूत भी अग्निवंशी नहीं हैं। विक्रम सम्वत् ९०० के एक शिला-लेख से तथा कविराज शेखर के एक नाटक से उनका सूर्यवंशी होना सिद्ध होता है। परमार राजपूतों के विषय में मुञ्ज के समय के पीछे के शिला-लेखों तथा ऐतिहासिक पुस्तकों में जहाँ भी उल्लेख आया है वहाँ उनको अग्निवंशी बतलाया है। परमार वंश के मूल-पुरुष का नाम धूमराज था। धूम अर्थात् धुआँ अग्नि से उत्पन्न होता है, शायद इसी पर परमारों को अग्निवंशी कहा जाने लगा हो। श्रीयुत विनायक चिन्तामणि वैद्य गोत्रों के आधार पर सिद्ध करते हैं कि वर्तमान राजपूत प्राचीन क्षत्रियों के वंशधर हैं। वैद्य जी के मतानुकूल वैदिक सूत्रों में भी क्षत्रियों के गोत्रों का उल्लेख है। जयपुर के दो प्रसिद्ध पण्डित श्री० वीरेश्वर शास्त्री और राजपण्डित श्रीमधुसूदन शर्मा विद्यावाचस्पति भी वैद्य जी के मत की पुष्टि करते हैं। उनके मतानुकूल परमार क्षत्रियों का गोत्र वशिष्ठ है, चालुक्यों का भारद्वाज है, चौहानों का वत्स है और चन्द्रवंशियों का अत्रि है। पण्डित गौरीशङ्कर ओझा इस विषय में वैद्य जी से सह-मत नहीं हैं। उनका कहना है कि क्षत्रियों के स्वतन्त्र गोत्र नहीं होते। उनके पुरोहितों के जो गोत्र होते हैं, उनको ही वे धारण कर लेते हैं। पण्डित मधुसूदन जी का कहना है कि क्षत्रियों को गोत्र प्राचीन पुरोहितों से

ही प्राप्त हुए हैं, किन्तु अब वे बदल नहीं सकते। इससे श्रीयुत वैद्य निष्कर्ष निकाल देते हैं कि जिन क्षत्रिय वंशों में प्राचीन गोत्र अब तक जारी हैं, वे वंश शक, सीथियन या हूणों की सन्तान नहीं हो सकते।

राजपूतों की उत्पत्ति का विषय, भारतीय इतिहास में, एक अत्यन्त विवादग्रस्त विषय है। उनकी उत्पत्ति के विषय में एक तरफ़ सर रामकृष्ण भाण्डारकर और मिस्टर विन्सेण्ट स्मिथ जैसे इतिहास के प्रकाण्ड पण्डित हैं और दूसरी ओर श्री० गौरीशङ्कर ओझा, श्री० विनायक वैद्य और डॉक्टर स्टीन कोनो जैसे राजपूताना के इतिहास के विशेषज्ञ हैं। दोनों पक्ष के विद्वानों की सम्मतियों का अध्ययन करने से तथा राजपूत काल के इतिहास का सूक्ष्म अध्ययन करने से निम्न-लिखित निष्कर्ष निकलता है।

(१) शक, सीथियन और हूणों के रीति-रिवाजों में और वर्तमान राजपूतों के रीति-रिवाजों में समानता है।

(२) वर्तमान राजपूतों के राज्य, महाराज हर्ष की मृत्यु के पश्चात् प्रगट हुए हैं अर्थात् आठवीं शताब्दी से पूर्व वर्तमान राजपूतों के पूर्वजों का इतिहास में कहीं विशेष उल्लेख नहीं मिलता।

इस निष्कर्ष से दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होते हैं—

(१) शक, सीथियन और हूणों के तथा वर्तमान राजपूतों के रीतिरिवाजों में समानता के क्या कारण हैं?

(२) क्या कारण है कि वर्तमान राजपूतों के पूर्वजों का प्रताप आठवीं शताब्दी के पश्चात् ही प्रगट होने लगा?

पण्डित गौरीशङ्कर ओझा शक, सीथियन और हूणों को भी आर्य क्षत्रिय बतलाते हैं। इसके प्रमाण में आप स्मृतियों और पुराणों की सहायता लेते हैं और शकों के सम्बन्ध में एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका को भी उद्धृत करते हैं। अशोक के समय में बौद्ध धर्म के उपदेशक एशिया में प्रायः सब प्रधान प्रदेशों में पहुँच गए थे। चीनी तुर्किस्तान में भी उस समय बौद्ध धर्म का प्रचार हो चुका हो तो कोई अचम्भे की बात नहीं है। यह भी सम्भव है कि शक, सीथियन और हूणों पर उन के भारत में प्रवेश करने से पूर्व ही, भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रभाव पड़ चुका हो। इसके अतिरिक्त शक जाति का विश्वसनीय प्राचीन इतिहास भी उपलब्ध नहीं होता, इसलिए निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि शकों की आदि सभ्यता क्या थी। भारत के इतिहास में शक और दूसरी विदेशी जातियों का उल्लेख अशोक से पूर्व नहीं मिलता। अन्य देशों के इतिहास में शक, सीथियन और हूणों को जङ्गली जातियाँ बतलाया गया है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में जो शकों के आर्य होने की ओर सङ्केत है, वह अत्यन्त संदिग्ध और अप्रामाणिक है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर डॉक्टर अविनाशचन्द्र दास ने भी एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के आधार पर ऐसीरियन, मिटानी और हिटाइट जातियों तक को भी आर्य सिद्ध करने का यत्न किया है, परन्तु वर्तमान शोधकाल में एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका का प्रमाण प्रबल प्रमाण नहीं माना जा सकता। पण्डित गौरीशङ्कर ओझा विष्णुपुराण, वायुपुराण और मनुस्मृति की सहायता से इन विदेशी जातियों को भारत से बाहर गए हुए आर्य क्षत्रिय बतलाते हैं। परन्तु ये तीनों ही ग्रन्थ संस्कृत साहित्य के इतिहास में अधिक प्राचीन नहीं माने जाते। यह निर्विवाद है कि भाषा और शैली की दृष्टि से इन ग्रन्थों की रचना गुप्तवंश के राजकाल में हुई होगी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन्हीं पुराणों में गुप्तवंश के राजाओं की नामावली भी दी गई है। स्मृति और पुराणों के जब गुप्तकाल में संस्करण हुए होंगे तो लेखकों ने उस समय जो घटनाएँ देखीं उनका भी उन ग्रन्थों में समावेश कर दिया होगा। सम्भव है कि उस समय शकादि जातियों को उनके पौरुष और प्रताप के कारण कुछ लोग तो क्षत्रिय मानने लग गए हों, परन्तु कुछ लोग अब भी उनको हीन जातियाँ ही मानते हैं। इसलिए मनुस्मृति में उनको संस्कारहीन क्षत्रिय जातियाँ बतलाया हो। वास्तव में एक बात ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन आर्य साहित्य में चन्द्रवंशी या सूर्यवंशी क्षत्रियों का उल्लेख क्यों नहीं है?

श्रीयुत वैद्य का गोत्राधार भी अधिक प्रबल नहीं है। जिस विद्वान् का पत्र उन्होंने प्रमाण-स्वरूप पेश किया है, उसी में लिखा है कि क्षत्रियों के गोत्र अपने प्राचीन पुरोहितों के गोत्र होते हैं। अब उनके गोत्र नहीं बदलते, यह ठीक है, परन्तु किसी समय उन्होंने

अपने पुरोहितों के गोत्र ही धारण किए थे। इससे यह स्पष्ट है कि जिस प्रसिद्ध विद्वान ने शकादि जातियों को आर्य-धर्म की दीक्षा देकर हिन्दू बनाने का साहस किया, उसके ही कुल का गोत्र इन शुद्ध किए हुए क्षत्रियों ने धारण कर लिया। एक बार इस भाँति गोत्र धारण करने के पश्चात् उनको गोत्र बदलने की कोई आवश्यकता न रही, जिससे मध्य-कालीन धर्म-शास्त्रकारों ने यह सिद्धान्त निश्चित किया कि क्षत्रियों के गोत्र नहीं बदल सकते।

रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर जी ने अपने राजपूताने के इतिहास में सातवीं शताब्दी के दो-तीन शिलालेखों का उल्लेख किया है, जिनमें उस समय राजपूतों को राज्य करते हुए बतलाया गया है। इन शिलालेखों से भी यह सन्देह निवारण नहीं होता कि राजपूत वैदिक आर्य हैं या शुद्ध किए हुए शक आर्य। चौहान, चालुक्य, सोलङ्की, कछवाहा, परमार, चावड़ा, भाटी, सीसोदिया आदि सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी और अग्निवंशी राजपूत सातवीं शताब्दी के बाद ही भारतीय राजनैतिक आकाश में जगमगाने लगते हैं। इससे पूर्व मगध, मालवा, गुजरात या पञ्जाब आदि किसी प्रान्त में इनका राज्य नहीं था। समुद्रगुप्त ने जो अनेक राजा-महाराजा पराजित किए थे उनमें भी वर्तमान राजपूत-घरानों का कहीं उल्लेख नहीं है। इससे यह अनुमान लगा लेना ऐतिहासिक शोध के विरुद्ध नहीं है कि वर्तमान राजपूत शकादि जातियों के वंशज हों।

फिर भी यह विषय निर्विवाद नहीं कहा जा सकता। हमने उभय पक्ष की दलीलें और अपनी राय पाठकों के समक्ष रक्खी हैं।

आज परताप ज़माने में है चरचा तेरा !

[श्रीयुत मोतीलाल जी कक्कड़ "ग़ाफ़िल", इलाहाबादी]

अकबरी तख़्त की बुनियाद हिलाने वाले।
रन के मैदान में एक धूम मचाने वाले॥
याद करते हैं तुझे तेरे घराने वाले।
आसमाँ सर पे उठाए हैं सताने वाले॥
तूने क्या-क्या न किया अपने चमन की ख़ातिर।
आफ़तें शान से झेलीं हैं वतन की ख़ातिर॥

धर्म क्या चीज़ है दुनिया को बताया तूने।
राजपूतों का अजब रङ्ग जमाया तूने॥
रन में तलवार के जौहर को दिखाया तूने।
देश के वास्ते जङ्गल को बसाया तूने॥
यानी चित्तौड़ का, मेवाड़ का गौरव तू है।
देश वालों का वतन वालों का रहरव[1] तू है॥

आज परताप ज़माने में है चरचा तेरा।
देखने वालों ने देखा है तमाशा तेरा॥
जो बहादुर हैं, वह गुन गाते हैं क्या-क्या तेरा।
निगहे शौक़ में फिर जाता है नक़शा तेरा॥
तुझसे बुनियादे शुजाअ़त[2] नहीं हिलने पाई।
आबरू क़ौम की मिट्टी में न मिलने पाई॥

१—मार्ग-दर्शक, २—वीरता

भारत-सरकार और राजपूताने की दो प्रधान रियासतों की सन्धियाँ

ईस्ट इण्डिया कम्पनी और महाराणा भीमसिंह राणा उदयपुर

यह अहदनामा ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उदयपुर के महाराणा भीमसिंह जी के बीच हुआ था। कम्पनी के प्रतिनिधि मिस्टर चार्ल्स टी० मेटकाफ़ थे और महाराणा के प्रतिनिधि थे ठाकुर अजीतसिंह बहादुर।

शर्त (१)

दोनों राज्यों में निरन्तर मित्रता, परस्पर राजनैतिक सम्बन्ध और हितैक्य पीढ़ी दर पीढ़ी बना रहेगा और एक राज्य के शत्रु और मित्र दोनों राज्यों के शत्रु और मित्र माने जाएँगे।

शर्त (२)

ब्रिटिश सरकार उदयपुर राज्य की और उसकी सीमा की रक्षा करने का वचन देती है।

शर्त (३)

महाराणा उदयपुर ब्रिटिश सरकार के साथ एक मातहत की हैसियत से सहयोग करेंगे और हमेशा इसका स्वामित्व स्वीकार करेंगे और दूसरी रियासतों या सरदारों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे।

शर्त (४)

ब्रिटिश सरकार के जाने बिना और उससे स्वीकृति लिए बिना महाराणा उदयपुर किसी रियासत या सरदार के साथ कोई सन्धि या विग्रह की बात नहीं कर सकेंगे, लेकिन अपने मित्र और सम्बन्धियों के साथ जो उनका पत्र-व्यवहार है, वह जारी रहेगा।

शर्त (५)

महाराणा उदयपुर किसी राज्य पर अतिक्रमण नहीं करेंगे और इत्तिफ़ाक़ से किसी के साथ कोई तनाज़ा हो जायगा तो उसके निपटारे के लिए ब्रिटिश सरकार के सामने पेश करेंगे।

शर्त (६)

पाँच वर्ष तक उदयपुर राज्य की मालगुज़ारी का चतुर्थांश ब्रिटिश सरकार को ख़िराज के रूप में दिया जाएगा और उसके बाद मालगुज़ारी के आठ भाग में से तीन भाग हमेशा के लिए ख़िराज में दिए जायँगे। ख़िराज के विषय में महाराणा का किसी और राज्य से कोई सम्बन्ध न रहेगा और यदि कोई ख़िराज माँगेगा तो उसको ब्रिटिश सरकार जवाब देगी।

शर्त (७)

महाराणा कहते हैं कि उदयपुर राज्य के कुछ हिस्से अनुचित साधनों से दबा रक्खे हैं। वे ब्रिटिश सरकार की सहायता से उदयपुर को वापस मिलने चाहिए। इस विषय में सरकार को पूरा इल्म नहीं है और इसलिए सरकार निश्चित वचन नहीं दे सकती, लेकिन उदयपुर का खोया हुआ राज्यांश वापस दिलाने का सरकार को सदैव ध्यान रहेगा और हर हालत में जाँच-पड़ताल के बाद जहाँ मुनासिब होगा, वहाँ इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्न किया जाएगा। इस प्रकार जो राज्यांश उदयपुर को वापिस मिलेगा, उसकी मालगुज़ारी का $\frac{3}{8}$ हमेशा के लिए ब्रिटिश सरकार को दिया जाएगा।

शर्त (८)

उदयपुर रियासत अपनी हैसियत के अनुकूल और ब्रिटिश सरकार की माँग के अनुसार सेना रक्खेगी।

शर्त (९)

महाराणा उदयपुर अपने राज्य में सदैव अनियन्त्रित शासक बने रहेंगे। उनके राज्य में अङ्गरेज़ी अमल जारी नहीं किया जाएगा।

शर्त (१०)

यह दस शर्तों का अहदनामा देहली में हुआ है, जिस पर मिस्टर चार्ल्स टी० मेटकाफ़ और ठाकुर अजीत-

सिंह बहादुर ने हस्ताक्षर किए हैं और मोहर लगाई है। आज से एक महीने के अन्दर परम माननीय गवर्नर-जनरल और महाराणा भीमसिंह इसको परस्पर सही करेंगे।

देहली में हुआ, आज तारीख़ १३ जनवरी, सन् १८१८

दस्तख़त—सी० टी० मेटकाफ़

दस्तख़त—ठाकुर अजीतसिंह

दस्तख़त—हेस्टिंग्ज़

हिज़ ऐक्सेलेन्सी गवर्नर जनरल ने २२ जनवरी, सन् १८१८ को ऊचर के कैम्प में सही किया।

दस्तख़त—जे० एडम

सेक्रेटरी गवर्नर-जनरल

❀ ❀ ❀

सनद गोदनशीनी जो राणा शम्भूसिंह मेवाड़ (उदयपुर) को दी गई; तारीख़ ११ मार्च, १८६२

श्रीमती सम्राज्ञी चाहती हैं कि भारतवर्ष के अनेक राजा और सरदार, जो इस समय अपने राज्यों का शासन कर रहे हैं, उनकी सरकारें बनी रहें और उनका वंश तथा प्रतिष्ठा जारी रहे। इसलिए इस अभिलाषा की पूर्ति के हेतु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सन्तान न होने की दशा में आप और आपके राज्य के भावी शासक हिन्दू-क़ानून और आपकी जाति के रिवाजों के अनुकूल किसी को गोद लेंगे तो वह मन्ज़ूर किया जावेगा।

विश्वास रखिए कि जब तक आपका घराना सम्राट का भक्त बना रहेगा और अहदनामों की शर्तों का पालन करता रहेगा, तब तक आपके साथ जो यह अहद किया गया है, इसमें कोई अन्तर नहीं आएगा।

दस्तख़त—कैनिङ्ग

❀ ❀ ❀

जयपुर की सन्धि, साँभर के विषय में

इस सन्धि में मेजर विलियम एच० बेनोन, जो उस समय जयपुर के पोलिटिकल एजेन्ट थे, भारत-सरकार के प्रतिनिधि थे और नवाब मोहम्मद फ़ैज़अली ख़ाँ बहादुर, जयपुर के महाराजा रामसिंह के प्रतिनिधि थे।

शर्त (१)

निम्न-लिखित सन्धि की शर्तों के अनुकूल जयपुर-सरकार साँभर झील के पास नमक बनाने, बेचने तथा उस पर कर लगाने के अधिकार भारत-सरकार को देती है।

शर्त (२)

यह अधिकार भारत-सरकार चाहेगी तब तक जारी रहेगा और जब इस अधिकार को सरकार छोड़ना चाहेगी, तो दो वर्ष पूर्व जयपुर-सरकार को सूचना देगी।

शर्त (३)

भारत-सरकार नमक बनाने और बेचने के अधिकार को भली-भाँति काम में ला सके, इस अभिप्राय से जयपुर सरकार भारत-सरकार को निम्न-लिखित हक़ देती है।

नमक को छिपाने का या उसका महसूल चुराने का सन्देह होने पर भारत-सरकार के नियत किए हुए अफ़सर अगली शर्तों में दिए हुए स्थानों के मकान, बाड़े आदि की तलाशी ले सकते हैं और दी हुई सीमा के अन्दर नमक की बिक्री, चोरी या बिना इजाज़त बनाना आदि के विषय में भारत-सरकार जो क़ानून बनावे उसका उल्लङ्घन करने वाले मनुष्य को गिरफ़्तार कर सकते हैं, क़ैद कर सकते हैं और उस पर जुर्माना कर सकते हैं।

शर्त (४)

साँभर झील के तट के पास की ज़मीन, जिसमें साँभर का क़स्बा और अन्य छोटे-छोटे बारह गाँव सम्मिलित हैं, और वह ज़मीन, जिस पर जयपुर और जोधपुर दोनों का अमल जारी है, तथा झील के वे हिस्से, जिन पर इन दोनों रियासतों का अमल है, यह सब वह हिस्सा समझा जायगा जिस पर ब्रिटिश सरकार और उसके अफ़सर शर्त ३ के अनुकूल अधिकार स्थापित करेंगे।

शर्त (५)

उपरोक्त सीमा के अन्दर ब्रिटिश सरकार नमक बनाने के लिए, बेचने के लिए, हटाने के लिए, महसूल चोरी रोकने के लिए और शर्त ३ में दिए हुए क़ानून को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए मकान, सड़कें, पुल,

बाड़ आदि बना सकेगी और आवश्यकता के अनुकूल इनको गिरा भी सकेगी। उपरोक्त अभिप्राय की पूर्ति के निमित्त, यदि अधिक ज़मीन की आवश्यकता हुई तो ब्रिटिश सरकार उस पर क़ब्ज़ा कर लेगी। अगर यह ज़मीन ऐसी हुई जिससे जयपुर-सरकार को मालगुज़ारी प्राप्त होती है, तो उतनी ही मालगुज़ारी ब्रिटिश सरकार, जयपुर को देगी। इस प्रकार ज़मीन पर क़ब्ज़ा करने से अगर किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति को नुक़सान पहुँचता होगा तो ब्रिटिश सरकार, जयपुर रियासत को अपने विचार की १ मास पूर्व सूचना देगी और ऐसी हालतों में ब्रिटिश सरकार उचित क्षति-पूर्ति करेगी। इस क्षति-पूर्ति की रक़म के विषय में यदि ब्रिटिश-सरकार और जयपुर-सरकार तथा उस सम्पति के अधिकारी में मतभेद हुआ तो वह रक़म पञ्चायत द्वारा निश्चित की जायगी। जयपुर रियासत की सीमा में जो इस प्रकार इमारतें बनाई जावेंगी, उन पर ब्रिटिश सरकार का मालिकाना हक़ नहीं माना जायगा और जिस वक्त ब्रिटिश सरकार साँभर झील पर से अपना क़ब्ज़ा हटा लेगी, उस वक्त इन इमारतों पर जयपुर-सरकार का क़ब्ज़ा हो जावेगा।

शर्त (६)

जयपुर-सरकार की अधीनता में ब्रिटिश सरकार एक न्यायालय स्थापित करेगी, जिसमें एक सुयोग्य न्यायाधीश रक्खा जावेगा जो समय-समय पर अपनी बैठक करके उन अपराधों का दण्ड देगा, जोकि तीसरी शर्त के भीतर आते हैं, या उससे सम्बन्धित हैं और ऊपर वर्णन की हुई सीमा के भीतर होते हैं। ब्रिटिश सरकार जैसे उचित समझे उसी प्रकार ऐसे अपराधों में दण्ड पाए हुए अभियुक्तों को साँभर की सीमा के अन्दर या बाहर पकड़ सकती है।

शर्त (७)

जब तक साँभर झील पर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का अधिकार रहेगा, वह (ब्रिटिश सरकार) समय समय पर उस नमक का भाव स्थिर करेगी, जोकि शर्त नं० २ के अनुसार दिए हुए नमक के अलावा बेचा जावेगा। जयपुर-सरकार को अधिकार होगा कि वह अपने आन्तरिक व्यय के लिए प्रति वर्ष ब्रिटिश सरकार से नमक बनाए जाने के स्थान पर इच्छानुसार नमक लेवे, परन्तु ऐसे नमक की मात्रा अङ्गरेज़ी सरकार की सीमा में काम में आने वाले मन की तोल से १,७२,००० मन से अधिक न होगी। जयपुर-सरकार इस नमक का मूल्य ६ आने प्रति मन के हिसाब से चुकावेगी, परन्तु उसको अधिकार होगा कि उस नमक को इच्छित भाव पर बेचे।

शर्त (८)

साँभर की सीमा के भीतर जयपुर और जोधपुर की जो इस समय संयुक्त लवण-राशि है, उसका आधा भाग जयपुर-सरकार का है। यह भाग निम्न-लिखित शर्तों पर ब्रिटिश सरकार को दिया जावेगा।

(१) रिवाज के अनुसार पाँच लाख दस हज़ार मन नमक जयपुर-सरकार, ब्रिटिश सरकार को बिना मूल्य देगी। शेष नमक ।=)॥ फ़ी मन के भाव पर ब्रिटिश सरकार ख़रीदेगी और उसके दाम चुकावेगी। यह क़ीमत उसी समय दिया जाना आरम्भ होगा, जब ८,२५,००० मन से अधिक नमक ख़रीदने की या बाहर भेजने की ब्रिटिश सरकार को आवश्यकता होगी। यह परिमाण ८,२५,००० मन तक जब तक न पहुँच जायगा तब तक शर्त बारह में उल्लिखित २० प्रति शत रॉयलटी भी जयपुर को नहीं मिलेगी। इस ८,२५,००० मन में शर्त सात में दिया हुआ वह नमक भी शामिल है, जो जयपुर-सरकार को अपने ख़र्च के लिए चाहिए।

शर्त (९)

साँभर झील पर बने हुए नमक पर या उसको जयपुर-राज्य में होकर अङ्गरेज़ी पास के साथ अन्यत्र कहीं ले जाते समय जयपुर-सरकार कोई कर या ज़कात या किसी प्रकार की चुङ्गी न लगा सकेगी। शर्त ७ के अनुकूल जयपुर राज्य को जो नमक दिया जायगा, उस पर रियासत जितना चाहे कर लगा सकती है।

शर्त (१०)

इस सन्धि के कारण नमक से सम्बन्ध रखने वाले अपराधों के अतिरिक्त अन्य विषयों में जयपुर-सरकार के दीवानी या फ़ौजदारी अमल में कोई बाधा न डाली जायगी। साँभर झील और उसके आस-पास के स्थानों पर जयपुर-राज्य का शासन पूर्ववत् बना रहेगा।

शर्त (११)

नमक बनाने, हटाने या नियम के विपरीत उसका बनाना रोकने या महसूल चोरी रोकने में जो ख़र्च होगा

जयपुर का राजवंश

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

परिचय अन्यत्र देखिए

छप रही है !　　　　　　　　छप रही है !!

यह उन अनमोल कहानियों का संग्रह है, जो आज तक हिन्दी-संसार में अप्राप्य थीं। कहानी के जिस विषय को लेकर देवी जी ने कहानी प्रारम्भ की है, उसका सजीव चित्र दिखला दिया है।

अधिक प्रशंसा न कर, हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि ऐसी कहानियाँ आपने आज तक न पढ़ी होंगी। पुस्तक छप रही है। शीघ्र ही प्रकाशित होगी। अभी से ग्राहकों की श्रेणी में नाम लिखा लीजिए !

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

वह सब ब्रिटिश सरकार उठावेगी और जयपुर-सरकार को कुछ नहीं देना पड़ेगा। जयपुर-रियासत ने जो अधिकार ब्रिटिश सरकार को सौंपे हैं, उनके बदले में ब्रिटिश सरकार उसको २,७५,०००) रु० सालाना दो किश्तों में देगी। नमक कम बिके या ज़्यादा, इस रक़म की तादाद पर कुछ असर नहीं पड़ेगा।

शर्त (१२)

यदि किसी साल ८,२५,००० मन से अधिक नमक बेचा जायगा तो शर्त ८ में जो परिमाण दिया हुआ है, उससे बेशी पर २० प्रतिशत रॉयल्टी दी जावेगी। यदि नमक के परिमाण के विषय में कभी कोई झगड़ा पैदा हुआ तो, ब्रिटिश सरकार का अफ़सर जो साँभर में रहता है, उसका हिसाब अन्तिम समझा जावेगा; लेकिन जयपुर-सरकार अपने सन्तोष के लिए यदि हिसाब लिखने के लिए किसी अफ़सर को नियत करे तो ब्रिटिश सरकार इसमें बाधा नहीं डालेगी।

शर्त (१३)

जयपुर-दरबार के निजी ख़र्च के लिए ब्रिटिश सरकार ७,००० मन नमक सालाना देगी और जयपुर-दरबार का नियत किया हुआ कोई अफ़सर नमक बनाने की जगह पर इसको सँभालेगा।

शर्त (१४)

नमक के अतिरिक्त और किसी विषय के कर पर या मालगुज़ारी पर, साँभर और उसके गाँव में और उसके पास की ज़मीन पर ब्रिटिश सरकार का कोई अधिकार नहीं होगा।

शर्त (१५)

उपरोक्त सीमा के बाहर जयपुर-राज्य में ब्रिटिश सरकार नमक नहीं बेचेगी।

शर्त (१६)

यदि कोई मनुष्य ब्रिटिश सरकार की नौकरी छोड़ कर या शर्त ३ में दिए हुए अपराधों में से कोई अपराध करके जयपुर-राज्य में जा रहेगा या जयपुर-राज्य में होकर कहीं जा रहा होगा तो उसके अपराध का पर्याप्त प्रमाण पेश करने पर जयपुर-सरकार उसको गिरफ़्तार करवाने में और ब्रिटिश सरकार के सिपुर्द करने में पूर्ण प्रयत्न करेगी।

शर्त (१७)

ब्रिटिश सरकार उपरोक्त सीमा में नमक बनाने का चार्ज जब तक अपने हाथों में न ले लेगी, तब तक इस सन्धि की शर्तें लागू न होंगी। चार्ज लेने की तारीख़ भी ब्रिटिश सरकार निश्चित करेगी, लेकिन यह तारीख़ १ नवम्बर, १८६९ या १ मई, या १ नवम्बर, १८७०, या १ मई, १८७१ होगी। अगर १ मई, १८७१ को ब्रिटिश सरकार ने इसका चार्ज न लिया, तो यह सन्धि रद्द समझी जावेगी।

शर्त (१८)

दोनों सरकारों की पूर्व सम्मति के बिना इस सन्धि की कोई शर्त न रद्द होगी, न परिवर्तित होगी और यदि किसी एक पक्ष ने शर्तों का पालन करना बन्द कर दिया, तो दूसरे पक्ष पर इनका पालन करना लाज़िमी न होगा।

दस्तख़त डब्ल्यू० एच० बेनॉन
पोलिटिकल एजेन्ट
दस्तख़त नवाब फ़ैज़अली ख़ाँ बहादुर

तारीख़ ७ अगस्त सन् १८६९ ई० को सही किया गया और मुहर लगाई गई।

दस्तख़त एस० रामसिंह
दस्तख़त मेयो

यह सन्धि ७ अगस्त, १८६९ को वॉयसराय और गवर्नर-जनरल हिन्द ने शिमले में मन्ज़ूर की।

दस्तख़त डब्ल्यू० एस० सेटनकार
सेक्रेटरी भारत-सरकार

बाँदी

[पं० विष्णुदत्त जी शर्मा]

वह बाँदी थी, एक राजपूत घराने की दुखिया बाँदी। दुख में पैदा हुई और दुख में ही पली थी, किन्तु इससे क्या? भगवान के दरबार में शायद धनी, निर्धन और राजा-रङ्क का भेद-भाव नहीं है, तभी तो उसने उस दुखिया को भी एक सुन्दर कन्या-रत्न प्रदान किया था। यमुना ने उसे देखा और उस पर न्यौछावर हो गई। ओह! कैसी सुन्दरी कन्या थी। उसे एक-दो बार नहीं, कोई दस बार भ्रम हुआ, 'क्या मुझे, जिसका जन्म ही दुख पाने के लिए हुआ है, ऐसी अलभ्य सन्तान प्राप्त हो सकती है? कभी नहीं, यह प्रवञ्चना है, धोखा है।' उसने बार-बार कहा, किन्तु नहीं, उसे विदित हो गया कि ऐसा कह कर वह स्वयं धोखा खा रही थी।

ईश्वर वास्तव में कृपालु नहीं, खिलाड़ी है। वह मनुष्य को आनन्द का मृग-जल दिखा कर ही उससे वञ्चित किया करता है। यमुना उस आनन्द के अपूर्व आघात को नहीं सह सकी, प्रसव होते ही वह उस स्थान को प्रस्थान कर गई, जो अज्ञात है, जहाँ विदित नहीं, सुख है या दुख।

चमेली अनाथिनी हो गई। उसकी स्नेह की पुतली माँ तो उसके पैदा होते ही मर गई, और पिता न जाने किस समय अज्ञात लोक को प्रस्थान कर गए थे।

बिना माँ-बाप की बालिका सबको प्यारी थी। यदि उसकी माता जीवित होती तो कदाचित् कोई उसकी बात भी न पूछता। अब तो क्या ठिकाना था उसके दुलार का। साथ की दासियाँ सोचतीं, 'ओह! बेचारी की माँ बचपन ही में मर गई, वह भी तो हम जैसी ही दुखिनी थी।' ठकुरानी सोचतीं, 'इसकी माँ ने कितनी सेवा इस कुल की की है, बेचारी की अन्तिम स्मृति है, सुख से रहे, फले-फूले, हमें इसका क्या बोझ है?' चमेली थी भी प्यार के योग्य। भरा हुआ मुँह, गुलाबी गाल, मनमोहनी मुस्कराहट और अङ्गों की चपलता, सभी कुछ तो प्यार करने योग्य था। निःसन्तान ठकुरानी ने उसे कलेजे में छुपा रक्खा। माता के प्यार से वञ्चित अबोध बालिका भी प्रेम में ओत-प्रोत नई माँ को देख कर खिलखिला पड़ी। 'कैसी सुन्दर बेटी है यह'—ठकुरानी ने कहा और मुस्करा गईं। आपस की वह खिलखिलाहट और मुस्कराहट ही तो प्रेम की वह डोर है, जिसे संसार लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं तोड़ सकता। परन्तु यह सुख चमेली को अधिक काल तक न मिला, क्योंकि ठकुरानी भी कुछ दिनों बाद परलोक सिधार गईं।

संसार अपनी अविरल गति से पहले ही सा चल रहा था। सुखी मनुष्य सोच ही नहीं सकता कि संसार कैसे करवट बदल रहा है और इसमें दुख का भी कोई अस्तित्व है। परन्तु दुखी मनुष्य तो प्रगतिशील संसार की प्रत्येक गति-विधि का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। करना क्या है, उसे करना ही पड़ता है। ठाकुर साहब के लिए तो संसार की पहिले सी ही गति थी, हाँ वह कुछ आनन्द-मय अवश्य हो गई थी। वही ऐशो-आराम, वही शराब-कबाब और वही आनन्द रङ्ग, प्रत्युत उससे भी अधिक। अब वे एक फूल सी नवयौवना के हृदयेश्वर थे और एक अप्रस्फुटित कली सी कन्या के पूज्य पिता। चमेली का तो उन्हें अब ध्यान भी न था। आनन्द के उस अनूठे संसार में केवल वे थे, उनकी सुन्दरी पत्नी और इसीसे उपहार में मिली हुई एक हँसमुख कन्या। नई ठकुरानी तो ठकुरानी ठहरी, दया को वे दौर्बल्य समझतीं और कृपा को कायरता। चमेली, वह चमेली, जो पहले ठाकुर साहब और ठकुरानी जी की आँखों की पुतली थी, अब उनकी एक मुहब्बत भरी नज़र के लिए तरस कर रह जाती थी।

हाँ ! एक बात अवश्य थी, ठाकुर साहब की कन्या उससे बहुत हिलमिल गई थी, चमेली तो मानो उसकी जान थी, वह उसे छोड़ कर अपनी माता के पास भी जाना स्वीकार नहीं करती थी। दोनों में कितना प्रेम था, यह क्या कहने की बात है, यह बात है केवल अनुभव करने की।

"चमेली।"

"हुकुम श्री अन्नदाता।"

"जा, बाई जी को बुला ला।"

"जो हुकुम पृथ्वीनाथ !" कह कर चमेली चली गई।

कुछ ही देर बाद चमेली, राजकुमारी को लेकर लौटी। राजकुमारी अब वयस्क हो चली थीं। कौतुकमय शैशव को छोड़ कर अब वह उन्मत्त यौवन में पैर रख रही थीं। बाल्य-सुलभ चापल्य के स्थान पर अब यौवनोचित गम्भीरता की आभा उनके सुन्दर मुख-मण्डल पर दौड़ चली थी। राजकुमारी के पदार्पण के साथ ही साथ उनकी माता जी ने भी प्रवेश किया। चमेली भी एक ओर आकर दीनता से खड़ी हो गई। ठाकुर साहब ने उन्हें देखते ही हँस कर कहा—"ओहो ! कैसी भीड़ जुड़ कर आई है, क्या आज ही राजकुमारी का ब्याह करना सोच लिया है ?" ठकुरानी हँस पड़ीं, राजकुमारी लज्जा से लाल हो गई और चमेली को तो एक बाँदी की हैसियत से राज्य-परिवार के हास्य में हिस्सा बटाने का अधिकार ही क्या था।

ठकुरानी—हाँ, यह भी तो अब करना ही है, आपको इसकी कुछ सुधि ही नहीं है।

ठाकुर—अच्छा ? क्या अब इस लड़की से ऐसी नाराज़गी हो गई ?

"नहीं जी, नाराज़ी बेनाराज़ी की क्या बात है, कुँवारी बेटी और माथे का करज़ तो दिए ही काम चलता है, इसका चारा ही क्या है। बेटी तो आगे-पीछे पराए का धन हो ही जाती है, फिर पछताने और देर करने से क्या बनेगा।" ठकुरानी ने आँसू भरते हुए कहा। ठाकुर साहब भी कुछ गम्भीर हो गए। थोड़ी देर ख़ामोश रह कर वे फिर बोले —

"और इस चमेली का क्या सोचा है, इसका भी तो कुछ करना ही पड़ेगा।"—चमेली इस समय बाहर से कान लगा कर धीरे-धीरे सब कुछ सुन रही थी।

"उसका भी राजकुमारी के ब्याह में ही उधर के किसी पासवान से ब्याह करके दहेज में दे देना है, और इसके बारे में क्या सोचना-विचारना है।" ठकुरानी बोल उठीं।

"नहीं जी, मेरी ऐसी मर्ज़ी है, कि इसको यहीं कहीं पीले हाथ कर दिए जाएँ और यह गढ़ ही में बनी रहे, बड़ी ठकुरानी इसे बहुत चाहती थीं।"

"ऊँह, मुझे तो यह लड़की बहुत बुरी लगती है, अपने को न जाने क्या समझती है, जब देखो मुँह चढ़ा हुआ। बैठेगी तो सब से ऊपर। कोई काम करने को कहो तो तेवरों पर बल। बाई की न जाने क्यों, इससे इतनी बनती है। और उसका क्या, बेचारी कुछ समझती भी तो नहीं, भोली-भाली लड़की है। फिर ठिकाने में बाँदियाँ भी तो बहुत हो गई हैं, एक कम हो जाय तो क्या बात है ?"

"परन्तु इस कार्य में अगर चमेली की भी सलाह पूछ ली जाय तो कैसा ?"

"इसमें क्या सलाह पूछना है ? बाँदियाँ पासवान से न ब्याही जायँगी तो क्या कहीं राजरानी बनेंगी ?"

"न जाने कैसी आदत है तुम्हारी, हर बात पर नाराज़ सी हो जाती हो। होगा तो वही जो तुम चाहोगी, परन्तु पूछ लेने से यह तो हो जायगा कि हाँ मुझे भी पूछा है, योंही किसी के गले नहीं बाँध दिया है।"

"बाँदियाँ यहाँ ही नहीं देखी हैं, मेरे पीहर में भी १०० बाँदियाँ हैं, मगर इनके ऐसे चोचले कहीं नहीं देखे। बाँदी है कि कोई बादशाहज़ादी है। ख़ैर, मुझे इससे करना भी क्या है, जो आपकी मर्ज़ी हो कीजिए।" ठाकुर साहब आगे कुछ न बोल सके।

३

कैसा सजीला और भोला-भाला नवयुवक था। नाम था चन्द्रसिंह। जैसा नाम वैसे ही गुण भी थे। उसके पिता ठाकुर बलवन्तसिंह ठिकाने के कामदार थे। वह प्रेम में पला था, सुख की सेजों पर सोया था और वात्सल्य में बड़ा हुआ था, ओठों पर आठों पहर मुसकान नाचा करती थी। ठाकुर बलवन्तसिंह को वह प्राणों से भी प्यारा था। बड़े-बड़े ठिकानों से उसकी शादी के

पैग़ाम आते थे, पर ठाकुर साहब के पैर ही पृथ्वी पर न पड़ते थे। पचास हज़ार रुपए नक़द देना होगा; सुनहरी चारजामे से सजे हुए २५ ख़ासे घोड़े, ४ हाथी, एक बड़ी जागीर और न जाने क्या-क्या। अपनी आँखों के सामने वे अपने वैभव का विशाल भवन बनाते और अपने सुयोग्य बेटे के द्वारा प्राप्त होने वाले वैभव की कल्पना में फूल उठते।

चमेली ने भी एक बार चन्द्रसिंह को देखा और चन्द्रसिंह ने चमेली को। पहली देखा-देखी में ही दोनों के हृदय नामों के अनुप्रास की तरह मिल गए। अब तो चमेली का किसी काम में जी ही नहीं लगता था और चन्द्रसिंह की भी अब कुछ विचित्र सी दशा थी। इसलिए कि दोनों में एक ऐसी प्यास थी, जिसे संसार प्रेम के नाम से पुकारता है, परन्तु जो बुझाने का प्रयत्न किए जाने पर उत्तरोत्तर भड़कती ही चली जाती है। चमेली को तो अपनी इच्छाओं के दमन करने का अभ्यास था, परन्तु चन्द्रसिंह को यह प्रणय-वेदना नितान्त असह्य हो उठी। कितनी बार उन्होंने सोचा कि चमेली के साथ घर से निकल कर कहीं चले जायँ। कहाँ चले जायँ? उस संसार में, जहाँ मनुष्य, मनुष्य का दास नहीं, जहाँ उसी ईश्वर के पैदा किए हुए मनुष्य में ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं, जहाँ दो प्यासे हृदयों के प्रगाढ़ प्रणय पर नियन्त्रण नहीं, परन्तु चमेली इस बात पर राज़ी ही नहीं होती थी, उसे न जाने क्यों आशा बँधी हुई थी कि वह अपने मनुष्य नामधारी अन्नदाता ठाकुर से आज्ञा प्राप्त करके चन्द्रसिंह के साथ एक सुखद गृहस्थी स्थापित करेगी।

"पृथ्वीनाथ! मुझे कुछ अर्ज़ करना है।"—उसने ठाकुर साहब से जाकर कहा।

"क्या कहना चाहती है, चमेली?"

"अन्नदाता, मेरी माँ ने इसी राज-घराने में जन्म पाया, इसीमें पली और इसी की सेवा करते-करते उसने प्राण दिए। मैंने भी जैसी कुछ टहल-बन्दगी इस ठिकाने की की है, सो अन्नदाता से छिपी नहीं है। आप मेरे धर्म के बाप हैं और मैं आपकी बेटी।"

"हाँ, यह सब ठीक है, चमेली, मगर तू कहना क्या चाहती है?"

चमेली ने अपनी कहानी सुना दी। सुनते ही ठाकुर साहब के तेवर चढ़ गए।

"चमेली! चन्द्रसिंह खास ख़ानदानी राजपूत का बेटा है। वह तुझसे ब्याह कैसे कर सकता है?" ठाकुर बोले!

"वह भी इसे स्वीकार कर चुके हैं, पृथ्वीनाथ!" चमेली ने दबी ज़बान में उत्तर दिया।

"यह जालसाज़ी पहले ही की जा चुकी है!" ठाकुर ने क्रोधित होकर कहा और हाथ के लपलपाते बेंत से सटाक-सटाक कई वार चमेली पर कर दिए! चमेली मूर्छित होकर गिर पड़ी।

४

मजलिस सजी हुई थी। शराब का दौर पूरे ज़ोर पर था। बोतलों पर बोतलें ख़ाली की जा रही थीं। शामियाने की सजावट और गैस-लाइट की चमचमाहट से ठाकुर साहब का भवन नन्दन-उपवन सा बन रहा था। आज ठाकुर साहब की कन्या का मानिकपुर के महाराज के कुँवर से ब्याह था। बीच में ठाकुर साहब अपने समधी के साथ बैठे झूम रहे थे। ५,००) रु० रोज़ पर आई हुई जयपुर की गौहरजान क़यामत बरपा कर रही थी। थैलियों पर थैलियाँ ख़ाली की जा रही थीं। साजिन्दों ने साज मिलाया और गौहरजान ने अमृत बरसाना आरम्भ कर दिया :—

दारू पीवो रण चढ़ौ रातो राखो नैन
बैरी थाँका जल मरै, सुख पावेगी सेन।
दारूड़ो दाखाँरो।

चौथे दिन बरात बिदा हो गई और उसके साथ-साथ अभागिनी चमेली भी बाई जी के दहेज़ में दे दी गई। वह विक्षिप्त सी हो गई थी, क्यों? इसलिए कि उसकी आँखों के सामने ही उसके अरमानों का ख़ून किया जा रहा था। बरात का चौथा पड़ाव था। कल पाँचवाँ और अगले दिन बरात मानिकपुर में पहुँच जावेगी, ऐसी आशा थी। राजा का ब्याह था, पड़ाव में आनन्द-प्रमोद का क्या पूछना। प्रत्येक प्राणी प्रसन्नता से उन्मत्त सा हो रहा था। बाई जी को भी जैसे सोने का पहाड़ मिल गया हो, पैर एक जगह टिकते ही न थे। कभी इधर, कभी उधर; कभी यहाँ, कभी वहाँ।

वह विशाल ख़ीमा, जिसमें उनके ठहरने का प्रबन्ध हुआ था, उन्हें छोटा प्रतीत होता था। वे अपने नए दूल्हा को लेकर ही आनन्द से फुलझड़ी हुई जा रही थीं। इतने में एक बाँदी ने हाँफते हुए आकर कहा—

"अन्नदाता, ग़ज़ब हो गया। कुँवरानी साहब के पीहर की एक बाँदी ने ज़हर खा लिया है, वह मर चुकी है।"

"कौन सी बाँदी ? नाम भी मालूम है उसका ?" बैठी हुई बाई जी उछल पड़ीं।

"चमेली नाम है उसका, अन्नदाता !"

"क्या मर चुकी ?"—कुँवर साहब ने पूछा।

"हाँ अन्नदाता, अब उसमें बिलकुल जान बाक़ी नहीं है।"

"अच्छा देखो, डेरे के पहरे के सन्तरी से कह कर आदमियों की मदद मँगवा कर उसे जलवा दो। काम करने वाले आदमियों को समझा दो कि किसी को ख़बर न हो, वरना ब्याह का मामला है, यह अपशकुन अच्छा नहीं है।"

बाई जी को चमेली के मरने का कुछ दुख तो अवश्य हुआ, परन्तु वह क्षणिक था। आख़िर थी तो राजपूत की बेटी। जिस प्राणी को सदा ही से यह शिक्षा मिली हो कि दासियाँ हेय हैं, उनमें हमारी जैसी जान नहीं, उन्हें हमारे जैसे अधिकार नहीं और वे मनुष्य गिने जाने योग्य नहीं, उसके हृदय पर एक सामान्य बाँदी के मरने का क्या प्रभाव हो सकता है ? और विशेष कर उस समय, जब कि आनन्द का एक विशाल संसार उनकी आँखों में बस रहा हो।

५

ठाकुर साहब पुत्री का ब्याह कर चुके थे; यों कहिए कि वे अब एक बड़ी चिन्ता से उऋण हो गए थे। इस समय वे रावले के बाहरी भाग में विराज रहे थे और ब्याह के हिसाब-किताब को देखने में मग्न थे कि गढ़ के मुख्य द्वार पर कुछ शोर सा हुआ और कुछ ही देर में एक पागल-सा युवक दौड़ता हुआ सामने आ खड़ा हुआ। ठाकुर ने उसकी ओर सिर उठा कर देखा ही था कि उसने बैङ्ग-बैङ्ग दो गोली से अत्याचार-रोग-ग्रसित ठाकुर का सीना दाग़ दिया। इसके पश्चात युवक ठठा कर हँस पड़ा, उसने ज़ोर से अपने दोनों हाथ उठा कर कहा—"ओह ! अब तो अत्याचार का बदला ले लिया है !" लोग युवक को पकड़ने को दौड़े, परन्तु उसने पिस्तौल की दो गोलियाँ अपने सीने में भी दाग़ लीं।

सुगृहिणी !

पति-देवता टाप रहे हैं, बच्चा बिलख रहा है और
देवी जी 'रेडियो' सुनने में तल्लीन हैं !!

राजपूताना और भारत-सरकार की नीति

[श्री० नन्दकिशोर जी अग्रवाल]

राजस्थान प्रान्त में १६ देशी रियासतें, लावा और कुशलगढ़ नामक दो ख़ुद-मुख़्तियार ठिकाने, तथा ब्रिटिश इलाक़ा—अजमेर मेरवाड़ा और आबू पहाड़ सम्मिलित हैं। इसका क्षेत्रफल १,३१,६६८ वर्गमील है और इसमें क़रीब १॥ करोड़ लोग बसते हैं। नीचे दी हुई तालिका में उन देशी रियासतों के नाम, उनके क्षेत्रफल, उनके राजाओं की जाति तथा तोपों की सलामी का विवरण और सन्धियों द्वारा अङ्गरेज़ सरकार की अधीनता स्वीकार करने का समय दिया गया है।

संख्या	नाम रियासत	राजा की ज्ञाति	क्षेत्रफल	सलामी की तोपों की संख्या	सन्धि-वर्ष
१	जोधपुर	राठौड़ राजपूत	३५,०१६ वर्गमील	१७	१८१८ ई०
२	बीकानेर	"	२३,३१५ "	१७	१८१८ "
३	जैसलमेर	भाटी यादव	१६,०६१ "	१५	१८१८ "
४	जयपुर	कछवाहा	१५,५१६ "	१७	१८१८ "
५	उदयपुर	गहलोत	१२,७५६ "	१६	१८१८ "
६	कोटा	हाडा चौहान	५,६८४ "	१७	१८१७ "
७	अलवर	कछवाहा	३,१४१ "	१५	१८०३ "
८	टोंक	पठान मुसलमान	२,५५३ "	१७	१८१७ "
९	बूँदी	हाडा चौहान	२,२२० "	१७	१८१८ "
१०	भरतपुर	जाट	१,६८२ "	१७	१८०३ "
११	सिरोही	देवड़ा चौहान	१,६५८ "	१५	१८२३ "
१२	बासवाड़ा	गहलोत	१,६०६ "	१५	१८१२ "
१३	डूँगरपुर	"	१,४४७ "	१५	१८१८ "
१४	करौली	यादव	१,२४२ "	१७	१८१७ "
१५	धौलपुर	जाट	१,१५५ "	१५	१८०६ "
१६	प्रतापगढ़	गहलोत	८८६ "	१५	१८१८ "
१७	किशनगढ़	राठौड़	८५८ "	१५	१८१८ "
१८	झालावाड़	झाला	८१० "	१५	...
१९	शाहपुरा	गहलोत	४०५ "	६	...
२०	कुशलगढ़ (ख़ुद-मु०)	राठौड़	३४० "	...	...
२१	लावा (")	कछवाहा	१६ "	...	...
२२	अजमेर मेरवाड़ा	अङ्गरेज़ी	२,७११ "	...	...
२३	आबू पहाड़	"	६ "	...	...

भारत-सरकार और राजाओं में सन्धियाँ हो जाने से राजा लोगों का यह कर्त्तव्य हो गया कि वे भारत-सरकार की आज्ञाओं का पालन करते हुए अपनी-अपनी रियासतों में सुचारु रूप से राज्य करें, प्रजा को किसी

प्रकार का कष्ट न दें, उसे सुख और शान्ति से रख सकें। भारत-सरकार के सिर पर, साथ ही, यह ज़िम्मेदारी आ गई कि वह इस बात के लिए सचेष्ट रहे कि न तो राजा प्रजा के ऊपर किसी प्रकार का अत्याचार कर सके और न प्रजा ही बिना किसी कारण के राजा के विरुद्ध खड़ी हो। इन सन्धियों को हुए आज एक शताब्दी से अधिक समय व्यतीत हो गया है। इस दीर्घ काल में भारत-सरकार तथा रियासतों ने प्रजा के साथ अपने-अपने कर्त्तव्यों का कहाँ तक पालन किया है, यह विचारणीय विषय है।

भारत-सरकार ने राजनैतिक विभाग के हाथों में रियासतों का सब काम सौंप रक्खा है, किन्तु दुख के साथ लिखना पड़ रहा है कि यह विभाग रियासतों की प्रजा के साथ बहुत ही उद्दण्डता से पेश आता है। जहाँ तक भारत-सरकार के स्वार्थ का प्रश्न होता है या जब भारत-सरकार की आर्थिक अवस्था को धक्का लगने की कोई आशङ्का होती है, तो यह विभाग राजाओं पर येन-केन-प्रकारेण दबाव डाल कर उन्हें आवश्यकतानुसार कार्य करने को बाध्य कर लेता है, परन्तु जब प्रजा का प्रश्न आता है तो फ़ौरन 'सन्धि' और सनदों का बहाना करते हुए Sir William Lee Warner के शब्दों में कहने लग जाता है कि "रजवाड़ों में कुप्रबन्ध होने से भारत-सरकार का बीच में पड़ कर सहायता प्रदान करना वहीं पर हो सकता है, जहाँ विशेष रूप से विकट अवस्था उत्पन्न हो गई हो, (अन्यथा भारत-सरकार राजाओं के कार्य में दख़ल नहीं दे सकती।)" उस समय, सरकार ने जो यह घोषित कर रक्खा है कि जिस समय प्रजाहित में बाधा पहुँचे, तब सरकार प्रतिकार करना अपना धर्म समझेगी, सब काफ़ूर हो जाता है। ता० २७-३-२६ के प्रसिद्ध पत्र में लॉर्ड रेडिङ्ग ने भी निज़ाम को लिखा था कि—

"Where imperial interests are concerned or general welfare of the people of a state is seriously and grievously affected by action of its government, it is with the paramount power that the ultimate responsibility of taking remedial action, if necessary, must lie."

अर्थात्—"जहाँ तक शाही हितों से सम्बन्ध होगा, अथवा किसी राज्य की प्रजा की भलाई में अत्यन्त बाधा पड़ेगी, उस समय भारत-सरकार का यह कर्त्तव्य होगा कि वह इसके प्रतिकार की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ले।" किन्तु वास्तविक स्थिति कुछ और ही है। रियासतों के ट्रस्टी (Trustee) बन कर उनसे विपुल धन-राशि वसूल करने में सरकार को कोई कठिनाई नहीं मालूम पड़ती—उस समय उसके नियम और क़ानून, सन्धि और 'सनद' कोई भी बीच में नहीं आते, परन्तु प्रजा की दुःख-गाथा की ओर ध्यान देने के समय उसके कान बहरे हो जाते हैं—शरीर को लकवा मार जाता है। रियासतों का राज्य-प्रबन्ध कितना ही बुरा क्यों न हो, प्रजा कितनी ही क्यों न सताई जाती हो, भारत-सरकार राजाओं को प्रजा के हितार्थ उस समय तक कुछ भी कहना बुरा समझती है, जब तक कि उसको उसकी निर्धारित धन-राशि रजवाड़े बराबर देते रहें। इस प्रकार की स्वेच्छाचारिता चलने देने में सरकार की मन्शा श्री० रामानन्द चटर्जी के शब्दों में यही दीखती है कि "वह इस स्वेच्छाचारिता के द्वारा देशी राज्यों के शासन से ब्रिटिश भारत के शासन की उत्कृष्टता सिद्ध कर सके।"

भारत-सरकार की इस उदासीनता और स्वेच्छाचारिता का परिणाम यह हो रहा है कि राजा लोगों ने रियासतों में अन्धेरखाता मचा रक्खा है। राज्य को उन्होंने अपनी निजी सम्पत्ति मान लिया है और राज-कोष को अपना निजी कोष। इसीसे, जो भी वे ख़र्च करते हैं, उसके बारे में वे अपने को किसी के प्रति उत्तर-दायी नहीं समझते। कहीं-कहीं तो राज्य की आय के ४० प्रति सैकड़ा से भी अधिक वे अपने लिए ख़र्च कर डालते हैं और प्रजा से जो कर वसूल किए जाते हैं उनका प्रजा को कुछ भी मुआविज़ा देने की बात भी ध्यान में नहीं लाते। आए दिन नए-नए करों के बोझ से प्रजा की कमर टूटी जा रही है। बेगार का सभी राज्यों में दौरदौरा है। कुछ जातियों का जन्म तो मानो अनादि काल से बेगार करने ही को हुआ है। राज्य की ८०-९० फ़ी सदी जनता को, जिनमें किसानों को भी शामिल समझना चाहिए, बेगार में काम करना पड़ता है।

कोई राज्य कितना प्रगतिशील है, इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि वह अपनी प्रजा की

शिक्षा पर राज्य की आय का कितना भाग ख़र्च करता है। बीकानेर १॥ प्रतिशत, जोधपुर ३ प्रतिशत और अलवर एक प्रतिशत ख़र्च करता है। जयपुर, 'शेखावाटी' नामक अपनी निज़ामत को, जहाँ पर शिक्षा-प्रचार में जनता की ओर से मासिक २६,०००) के क़रीब ख़र्च किया जाता है, केवल २००) मासिक की सहायता देता है। बड़ी ही लज्जा की बात है कि प्रजा की उन्नति के एक प्रमुख विभाग की ओर इतनी उदासीनता से काम लिया जा रहा है, किन्तु मोटर और कुत्तों की ख़रीद तथा ऐशो-आराम के साधनों में पैसा पानी की भाँति बहाया जा रहा है। राजाओं ने तो एकमात्र अपना कर्त्तव्य सरकार को प्रसन्न रखना मान रक्खा है और उसका ही वे सदैव ध्यान रखते हैं। इसके अतिरिक्त प्रजा के रक्त को चूस-चूस कर मन चाहे जैसे गुलछर्रे उड़ाना ही उनका काम रहता है और कुछ नहीं। सुतराम्, रियासतों की प्रजा महादुखी है—इसमें सन्देह की कोई गुञ्जायश नहीं।

रियासतों की प्रजा कितनी सन्तोषी एवं सरल स्वभाव वाली है, यह एक किसान और एक देहातिन के निम्न-लिखित मनोभावों से प्रगट होगा।

किसान—

नई मूँज री खाट, के नच्चू टापरी।
भैंसड़ल्याँ दो चार, के दूजे बापड़ी।
बाजर हन्दा बाट, दही में ओलणा।
इतरा दे किरतार, फेर नहीं बोलणा।

अर्थात्—नए बानों (मूँज की रस्सी) से बुनी हुई खाट हो, वर्षा में न टपकने वाली फूस की झोपड़ी हो और दो-चार दूध देने वाली भैंसें हों, तथा बाजरे की रोटी दही के साथ खाने के लिए हो। यदि परमात्मा हमको इतनी वस्तुएँ दे, तो फिर शिकायत की कोई आवश्यकता नहीं है।

किसान बालिका—

ऊठे ही पीरो होय, ऊठे हो सासरो।
आथुणों होय खेत, चवे नहीं आसरो।
नाड़ा खेत नज़ीक, जठे हल खोलना।
इतरा दे किरतार, फेर नहिं बोलना।

अर्थात्—अपने पिता और श्वसुर का घर एक ही गाँव में हो, और खेत पश्चिम में हो (ताकि सुबह-शाम आते-जाते धूप मेरी पीठ पर हो), झोपड़ी में वर्षाकाल में पानी न टपकता हो और तालाब खेत के पास हो, जहाँ पर हल और बैल खोल दिए जाएँ और बैलों को पानी पिलाने दूर न ले जाना पड़े। इतनी चीज़ें परमात्मा दे तो और फिर माँगने की आवश्यकता नहीं।

इतनी सीधी, सरल स्वभाव वाली प्रजा को भी राजा लोग सन्तुष्ट नहीं रख रहे हैं—उन्हें भी अत्याचार और अनाचार से दुखित कर, कष्टों के महासागर में डुबो रक्खा है और तुर्रा इस पर यह है कि मार कर रोने भी नहीं दिया जाता है।

देशी राज्यों में किस प्रकार मुँहबन्दी की जाती है, इसका पता हाल ही की कुछ आज्ञाओं से चल सकेगा, जो उन राज्यों में प्रचारित हुई हैं। जयपुर के राजनैतिक और न्याय-विभाग ने जयपुर-राज्य में सभाओं का होना और जुलूस निकालना नाजायज़ कर दिया है। इनके लिए आज्ञा भी लो तो तीन दिन पहिले, और यह ज़रूरी नहीं कि आज्ञा मिल ही जाय। बिना आज्ञा के सभा या जुलूस का आयोजन करने वालों को २००) जुर्माना या देशनिकाला होता है। जयपुर-राज्य ने ऐसे लोगों के लिए जेल की व्यवस्था नहीं की, यह आश्चर्य है। जयपुर के सभाबन्दी की आज्ञा में मज़े की बात यह है कि मैजिस्ट्रेट महोदय सभा की आज्ञा लेने वाले से बोलने वालों की सूची के साथ-साथ वे सब बातें भी लिख कर माँग सकते हैं, जो व्याख्यानदाता कहेंगे, और यदि व्याख्यानदाता बाहर के रहने वाले हों, तो उनका पूरा का पूरा व्याख्यान लिखा हुआ पेश होना चाहिए। जोधपुर में भी सभा आदि की रोक की आज्ञा निकली हुई है। अलवर-राज्य ने ५ व्यक्तियों का शामिल होकर राजनैतिक विचार प्रगट करना अपराध क़रार दे रक्खा है। प्रजा की आवाज़ को दबाने के लिए राज्य में 'राजद्रोह-क़ानून' जारी है। उसकी कुछ धाराएँ देखिए :—

(१) किसी भी सार्वजनिक सभा में किसी ऐसे विषय पर चर्चा या उपदेश न होंगे, जिससे अलवर-राज्य, उसकी सरकार, उसके शासक या भारत-सम्राट, उनकी

सरकार या भारत के किसी देशी नरेश के हितों के विरुद्ध कोई बात होने की सम्भावना हो।

(२) कोई व्यक्ति सार्वजनिक सभा के बुलाने अथवा उसके सङ्गठन करने से किसी तरह का सम्बन्ध न रक्खे और न जान-बूझ कर ऐसी सभा में भाग ले। इस क़ानून के विरुद्ध आचरण करने वालों को ५ वर्ष की क़ैद, २,०००) जुर्माना या देश-निकाला दिया जा सकता है।

करौली ने ढोल बजा कर घोषित कर दिया है कि कोई सभाएँ न करें। भरतपुर में कथाएँ भी करने की रोक है। बीकानेर में हाल ही में एक सभा में किसी सज्जन ने एक राष्ट्रीय गान गाया था, जिससे कोई छः महीने तक पुलीस उसके पीछे पड़ी रही।

रियासतों की प्रजा अब बहुत तङ्ग आई हुई है। वह जीवन से निराश सी हो चुकी है। क्या राजा-महाराजा और क्या सार्वभौम सत्ता—भारत-सरकार—सब ही देशी राज्य-प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्य को भुला बैठे हैं। सुतराम्, कोई नहीं कह सकता कि किस समय वह दबी हुई ज्वाला प्रचण्ड हो उठे और अपनी कराल लपटों में किस किस को झुलसा दे और इसलिए समय रहते ही अधिकारियों को इनकी तकलीफें दूर कर इनका सहयोग न खो बैठने की चेष्टा कर लेनी चाहिए। उन्हें समझ लेना चाहिए कि इस २०वीं शताब्दी में शासन-सम्बन्धी विचार और आदर्श बदल चुके हैं। समस्त संसार में शासकों और शासितों के पारस्परिक सम्बन्धों में गहरे हेर-फेर हो गए हैं। राजाओं के दैवी अधिकार सदा के लिए नष्ट हो चुके हैं। राजाओं के निरङ्कुश शासन को क़ानूनी शासन के लिए अब जगह ख़ाली करनी होगी। यदि वे समय से पहले सावधान न होंगे, तो उन्हें पछताना पड़ेगा।

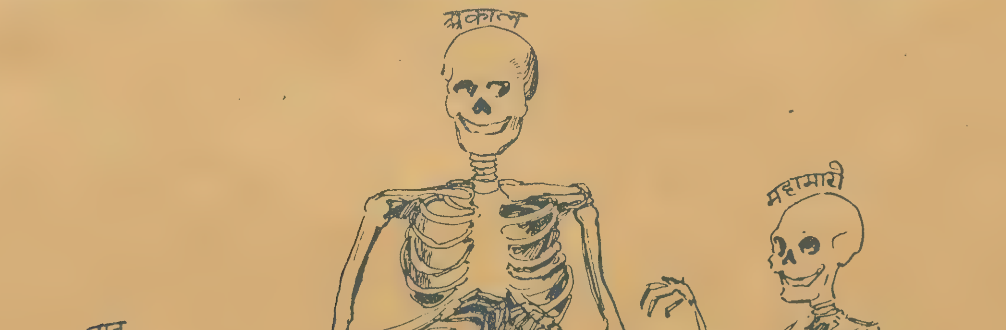

देश-दशा

आह्वान

[प्रो० अभिन्नहरि, साहित्य-रत्न ; सम्पादक 'राजस्थान-सन्देश']

मृत शान्ति, जड़स्थिरता और परतन्त्रता के कट्टर शत्रु ! अन्याय, अत्याचार, असत्य के विकट विद्रोही ! जीवन-मरण के साम्यवादी प्रमत्त पागल ! स्वत्व-मन्त्र के रण-बाँकुरे साधक ! कर्मयोग के अमर पुजारी ! देश-गौरव !! ओफ़ ! क्या कहें ? तुम्हारी आज की किंकर्तव्यविमूढ़ता पर कलेजा बिध जाता है। लज्जा से मस्तक झुक जाता है। प्राण उद्वेलित हो उठता है। पर तुम निर्धन की तरह निरीह, निर्बल की तरह निराश हो, जीवन-मृत बन रहे हो। क्या तुम्हारी नसों में स्वाभिमान का 'लाल ख़ून' नहीं बहता ? प्राणों पर समता की चिनगारी नहीं सुलगती ? अन्तराल में महत्वाकांक्षाओं की ज्वालाएँ नहीं उमड़तीं ? आज़ादी की भयङ्करी आग से प्रलयङ्करी लपटें नहीं उठतीं !

निश्चय ही तुम 'मार' की मार से मर रहे हो। विलासिता के झञ्झावात के झोंके तुम्हें बेसुध बना रहे हैं। सुख-स्वप्न तुम्हें क़ीबता और कायरता के कीचड़ में ले भगे हैं। स्वार्थ के राज-रोग ने कर्तव्य-पराङ्मुखता की कमज़ोरी भर दी है। ख़ुदी की मस्ती ने ख़ुदाई को भुला दिया है। प्रभुता के विकार ने देश-दशा से आँखें मुँदा दी हैं। रस-रङ्ग ने बहरा बना डाला है। तभी तो लोग वज्रनाद से तुम्हारे कान पर गाजते रहें कि—राजस्थान ! सब गन्दगियों का घर, आडम्बरों का अड्डा, कुरीतियों का केन्द्र, मिथ्यात्व का मन्दिर, बुराइयों का भण्डार तथा दुर्बलताओं का दुर्ग है—और तुम नहीं सुनते !

राजर्षि ! शब्द कठोर हैं—कड़ुवे हैं—पर हैं सचाई से भरे। भला, जो शय्या पर पड़ कर मरने को महापाप मानता हो, जिसका जीवन-मन्त्र "परित्राणायसाधूनाम्, विनाशाय च दुष्कृताम्" तथा "हत्वा वा प्राप्स्यसे स्वर्गं, जित्वा वा मोक्षसे महीम्" रहा हो, जिसने दूध की घुट्टी के साथ आत्मा का अमरत्व एवं 'पुनर्जन्म' का पान किया हो और समय-समय पर देश-युगधर्म की रक्षा के लिए केशरिया एवं जौहर का क्रियात्मक 'विप्लव' बाना पहनता रहा हो, स्वयं जिसने जीवन में सदैव व्यावहारिक वेदान्त का आदर्श दिखाया हो, यदि वही अपने असली धर्म को त्याग, कोरा 'ब्रह्मर्षि' बनता फिरे, अलौकिकता के फेर में पड़ लौकिकता की उपेक्षा करने लग जाय, जीवन-समस्या को 'त्रिशङ्कु' बना डाले, भवानी का उपासक 'भारती' की आराधना में रत हो जाय, तो क्या आशाएँ अधीर न होंगी ? विश्वास न काँपेगा ? मनोरथों का क्षितिज हतोत्साह के घटाटोप से निःसीम न हो जायगा ? फिर 'प्रलय' में क्या देर है ? स्वीय मर्यादा के संरक्षण से तो सृष्टि स्थिर है। देखो न, सब अपने-अपने धर्म-कर्म में संलग्न हैं, तभी तो सञ्जीवित हैं। क्रान्ति के चिर अभ्यासी राजस्थान ! निस्सन्देह तुमने अपने वास्तविक धर्म—ईश्वरीय आदेश से मुख फेरा है, अभिनन्दनीय वस्तु का तिरस्कार किया है, जीवन-प्रद 'अमृतधारा' से आँख-मिचौनी खेली है। चाहे तुम ईश्वरानुमोदित बता, उपस्थित कर्त्तव्य को शुष्क आध्यात्मिकता की आँधी में उड़ा स्वतः सजीव बनते रहो, पर वस्तुतः तुम सड़ाँद फैलाने वाले मुर्दे से कम नहीं हो। वर्तमान स्वार्थी, स्व-कर्त्तव्यहीन निरीह जीवन से तो तुम जीते जी चिता में बैठ जाओ तो अच्छा ! वहाँ परलोक के परमात्मा से तुम्हारी पटेगी भी ख़ूब ! क्योंकि वह भी तो संसार से आँख बचा, क्षीर-सागर में लक्ष्मी के चोचलों में फँसा है। 'लोहे' के काम से तो दोनों बेकाम हो। भला जो बसे बीसवीं सदी में और साँस ले १९वीं शताब्दी में ; खाए-पीए इस लोक में, और चित्त रहे उस लोक के नशे में ! कहीं दो घोड़ों के सवार भी जीवन-संग्राम में विजयी होते हैं ? बाज़ी तो कर्त्तव्य-परायणों के ही हाथ रहती है, खेल तो वही जीतते हैं, जो स्वधर्मानुष्ठान में प्राणों पर खेलते हैं। दुचिते दोनों दीन से जाते हैं। परन्तु सम्मुख कर्तव्य की उपेक्षा कर परलोक पर दृष्टि रखने वाले की परमात्मा के दरबार में भी

गुज़र नहीं, कभी इसी की तो आवाज़ बुलन्द की थी तुमने रणवीर! सामयिक कर्तव्य-पालन पर ही तो तुमने देश से दुख की काली घटाएँ टाली थीं। उद्दिष्ट-पथ में, जीवन-जय में, मानवता के मन्त्र-साधन में, धर्म-सन्देश के लिए तुम्हीं ने तो बाधाओं के विकट व्यूहों की धज्जियाँ उड़ाई थीं, कण्टकाकीर्ण कठोर चट्टानें ही तो पुण्य-शय्या बनाई थीं, घोड़े की पीठ को घर, झोले को अपना संसार, तथा घास की रोटियों को श्रेष्ठ पकवान बताया था। अरे! तुम्हें तो इस सर्वाङ्गीण स्वतन्त्रता के युग में, स्वतन्त्रता के निर्भीक भक्त! सर्वतोमुखी क्रान्ति की आग लगा देनी थी, उथल-पुथल, काया-पलट कर देनी थी। पर जी रहे हो यह अपयश का टीका माथे पर लगा कर, कर्तव्य की उपेक्षा कर ऊँचा सिर उठाए हुए। इस अकर्मण्य-निष्क्रिय जीवन से तो मरना ही बेहतर है, श्रेष्ठतम है।

जीवन चाहते हो, तो क्रान्ति-देवी की आरती उतारनी ही पड़ेगी। 'विप्लव' से भय करना, जीवन से दूर रहना है। परिवर्तन से चौंकना अस्तित्व को अस्तङ्गत करना है। सच्चा जीवन पाने के लिए विद्रोह के महासागर में ग़ोते लगाने ही पड़ेंगे। इन्क़लाब अनिवार्य है, मानव समाज का इतिहास परिवर्तन के पन्नों से भरा पड़ा है। प्रकृति का खुला 'साइनबोर्ड' तो क्रान्ति की ही करामात कर रहा है। शरीरी युगान्तर के ही तो प्रकृष्ट प्रमाण हैं। यदि तुम न चाहोगे तो उलट-फेर का चक्र तुम्हें पीस देगा या तुम अनुकूल बन कर ही जीवित रह सकोगे। अतः 'विप्लव'-यज्ञकुण्ड में हँसते-हँसते आत्मोत्सर्ग कर देने में ही भलाई है।

तैयार हो? ध्येय पर मर मिटने के लिए, आदर्श पर लुटने के लिए, कर्तव्य पर खपने के लिए, सम्पूर्ण स्वाधीनता पर स्वाहा होने के लिए? देखना क्रान्ति का पथ हँसी-खेल नहीं है, कालों से खेलना है, काल से लड़ना है। लालच पर लात लगा सकोगे? तृष्णा का तिरस्कार कर सकोगे? वासना का विसर्जन कर दोगे? कीर्त्ति-कामना को निर्वासित कर सकोगे? सुखों से मुँह मोड़ सकोगे? अवश्य! तो आ, नवयुग के पुजारी, नए संसार के शैदा तरुण-राजस्थान! बूढ़े बाधक हैं, रहने दे, तू अपना काम कर। सब पीछे खिंचे चले आएँगे। पर पहले आज तक के सञ्चित अनुभव, विद्या, साम्प्रदायिक-पक्षपात, मिथ्या-धर्म की ठठरी को गाड़ दे। दिल-दिमाग़ को आज़ाद कर इधर पाँव रख। सोच ले, जिनके स्वार्थ-सुख-यश में तुम्हारे द्वारा बाधा पड़ेगी, वे सब तुम्हारी जान के ग्राहक हो जायँगे। हाँ, सत्य के लिए बलिदान होने से बढ़ कर मोक्ष क्या होगी? अरे! ओ प्रलय के दूत! क्रान्ति के मतवाले पागल! ज़रा सावधान! चिकित्सा करने से पूर्व रोगी की दशा देख ले, 'कड़वी भेषज के बिना मिटे न तन की ताप' इस मन्त्र को हृदयङ्गम कर ले, सँभाल समाज की नब्ज़।

कृत्रिमता एवं अस्वाभाविकता का दलदल प्रारब्ध देव, भोग और कर्मवाद की वज्र-शृङ्खला, पाखण्ड और अविवेक का तौक़, रूढ़ि, अन्धविश्वास, आडम्बर और परम्परावाद की बेड़ियाँ उसे जकड़े हैं। जात-पाँत और छुआछूत का भूत बेतरह सता रहा है। राग-द्वेष, स्वार्थ और अनीति का घर-घर डेरा पड़ा है। कपट व असत्य का सार्वभौम साम्राज्य है। दिन-दिन समाज की सञ्जीवनी-सरिता सूखती जाती है। न परस्पर प्रेम है और न सहानुभूति। कुत्तों की तरह बढ़ती असह्य है। 'मनुष्यात्मा' को सम्प्रदायों ने कुचल डाला। पक्षपात ने संस्कारों का संहार कर दिया, सन्तोष ने पुरुषार्थ का गला घोंट दिया। लकीर की फ़क़ीरी ने सबके बुद्धि-स्वातन्त्र्य को बन्दी बना डाला। अधर्म के फ़तवे रूपी बमों ने छिन्न-भिन्न कर डाला है। कुरीतियों के कीड़ों ने समाज का शरीर चलनी बना दिया है। विवाह के नाम पर क्या भयङ्कर आध्यात्मिक दमन नहीं हो रहा? वर-वधू में क्या प्रेम, हृदयैक्य देखा जाता है? भला, आत्म-सम्मेलन में धर्म, जाति-सम्प्रदाय का अड़ङ्गा उचित है? इस रीति-मात्र के अनुसरण में ही तो जो घर प्रेमागार होने चाहिए थे, वे कलहागार हो रहे हैं। पर क़ानून बलात् साथ रहने को विवश करता है। पुरुष चाहे लम्पट हो, रोगी हो, निकम्मा हो, पर उसकी स्त्री दूसरी शादी नहीं कर सकती। हाँ, स्वतन्त्र होकर व्यभिचार करने पर सरकार-समाज का क़ानून मर जाता है। बालक-बालिकाओं को जीवन यापन-योग्य बनाने के पूर्व विवाह की भ्रष्ट वेदी पर वेद की ऋचाओं के साथ वध कर दिया जाता है। मृतप्राय खुर्राटों के गलों में नन्हीं बालिकाएँ लटका दी जाती हैं। शिशुओं-बालाओं के पाँव पसारने पर उन बाल-विधवाओं को

'सतीत्व' सदाचार की शिक्षा देकर बलात् वैधव्य पलवाना क्या यह भीषण नरमेध नहीं है ? नगर-नगर में वेश्याओं के जमघट, मठ-मन्दिरों के निरक्षर विलासी अधीश्वर, तीर्थों के मुस्टण्डे गुण्डे पण्डे परोपजीवी साधु-मण्डली, तथा अन्यान्य अवैध व्यभिचार-सञ्जात शिशु-हत्याएँ क्या सदाचार-पताकोत्तोलन कर रही हैं ? करोड़ों भाइयों को भूखा-नङ्गा देख कर भी विवाह-दहेज, मृत्यु-भोज, श्राद्ध, आठवाँ, जनेऊ और सालग्रहों पर सहस्रों रुपयों को पानी सा बहाना क्या पशुपन नहीं है ? आम रास्ते से, भगवद्दर्शन से, कुएँ से किसी को शूद्र होने के कारण रोकना, उसकी छाया पड़ते ही नहाना, मनुष्य से मुँह छिपा कर भोजन करना क्या मानवता को ठुकराना नहीं है ? लण्ठ, गन्दे, मूर्ख ब्राह्मण को केवल ऊँची जाति होने से सम्मानित करना, और सुशिक्षित, सुशील सदाचारी अब्राह्मण से बात भी न करना, क्या असभ्यता नहीं है ? सर्वत्र ऐसे ही अन्याय-अत्याचार का अकाण्ड-ताण्डव हो रहा है।

बात-बात में शकुन देखना, स्वर ढूँढ़ना, छींक का शुभाशुभ सोचना, छिपकली, कौवे से शरीर-स्पर्श होने पर महा अनर्थ की आशङ्का करना, लग्न, मुहूर्त, योगिनी, दिशा-शूल के चक्कर में आकर आवश्यक कार्य को भी छोड़ देना, गृह-गोचर में गुमराह रहना, और समय-समय पर पत्थर के देवी-देवताओं, भावावेश के आडम्बरी सिर हिलाने वालों से हाथ जोड़ मान्यता करना, क्या घोर नास्तिकता नहीं है ? पुरोहित के शाप, जागा के पुतले, मूर्त्ति के कोप, और मूँठ का ख़्याल कम भीरुता है ? भूत-प्रेत का विश्वास, चलनी व बिल्ली के नाम लेने से रात में चोरी होने की धारणा, पुत्र के श्वेत साफ़ा या पगड़ी बाँधने से पिता के मर जाने का विचार, चारपाई पर बैठ कर भोजन करने पर अगले जन्म में धोबी होने की बात, पृथ्वी का शेषनाग के सिर पर होना, बिना धुला कपड़ा पहनने से मर जाने का ख़्याल, श्राद्ध, दाह-संस्कार के कण्डों को मूँगधणा कह कर किसी के न मरने की बात विचारना, व नुक़्ते का अन्न अपने पुरखों के पास पहुँचने का भरोसादि अन्ध-विश्वासों की आस्था सरासर बुद्धि का दिवालियापन ही तो है ! दब्बूपन, सङ्कीर्णता, सङ्कोचपन और कूप-मण्डूकता तो और बण्टाधार कर रही है।

धर्म का तो जनाज़ा निकल रहा है। उसके आक़ाओं ने उसकी छाया को अपना 'लैटर-बक्स' भरने का साधन बना डाला है। चोटी, जनेऊ, तिलक, कण्ठी आदि में उसे अवरुद्ध कर दिया है। व्रत, स्नान, सन्ध्या पूजा, जप-समाधि में ही उसकी इतिश्री कर डाली है। वेद-शास्त्र, स्मृति-पुराण, क़ुरान, बाइबिल, इतिहासादि यद्यपि भिन्न-भिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न मनुष्यों द्वारा की गई रचनाओं के संग्रह मात्र हैं, जो समाज-शान्ति के लिए निर्मित किए गए थे, पर उन्हीं के बल से गुण्डे दूकानदारियाँ चला रहे हैं। लोगों को इनकी विपरीतता-निगूढ़ता से निकालने के बजाय इन्हीं के चक्करों में डाल ख़ूँख्वार बनाते रहते हैं। धूर्त धर्माचार्य संसार को असार बताते हैं, पर स्वतः इसमें लिप्त एवं परिग्रही बने हैं। मन्दिर-मठ तो इनके रोज़गार की दूकानें हैं। सार्वजनिक स्थलों पर—उनकी प्राप्ति पर उनका एकच्छत्र आधिपत्य रहता है। सर्वव्यापी प्रकृत परमात्मा की कैसी हँसी करा रहे हैं ये दुष्ट ! ब्रह्माण्ड-व्यापी सर्वेश्वर को ये खिलाते हैं, पिलाते हैं, पहिनाते हैं, कितना पाखण्ड ! जो ईश्वरीय सद्विचारों, सत्कृत्यों, सत्प्रवृत्तियों का मूल अन्तःकरण है, उसको स्वकल्पनानुसार रच कर लूटने का कैसा जाल रचा है ! लोग कितने उल्लू हैं, उसी को विधाता मान कर सब कुछ अर्पण करते हैं। यद्यपि कर्तव्यों का समूह आत्मा है, निष्कलङ्क, निष्काम सेवा ही स्वर्ग है, दीन-दुखियों की योग्य सुश्रूषा सच्ची ईश्वर-भक्ति है ! धर्म मन और हृदय को शुद्ध करने की चेष्टा करता है। मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, अशुद्ध भावनाओं के स्थान में शुद्ध भावों को जमा देने के ही तो भिन्न-भिन्न नाम हैं। मन, वचन, कर्म की शुद्धि ही तो उपास्य है। विकार-रहित होना, सच्चा वैराग्य व आसक्ति-निवृत्ति ही जब संन्यास है, तो क्या मनुष्यों में भेद डालने वाला, घृणा पैदा करने वाला, अशान्ति सिखाने वाला धर्म धारणीय है ? क्या धर्म ऐसी चीज़ है, जो छूते ही चला जाय, खाते ही बिगड़ जाय ? उसका स्थान तो हृदय है। यदि छूमन्तर चीज़ है, तो वह सर्वथा त्याज्य है। व्यक्ति और किताबों की ग़ुलामी बड़ी बुरी है। जो बात बुद्धि की कसौटी पर ठीक न उतरे, वह चाहे भगवान की ही उक्ति क्यों न हो, सर्वथा अमान्य है। आज हम

सब तरह से ग़ुलाम हैं, हमारा धर्म तो ग़ुलामी से छुटकारा पाना है, परन्तु क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, क्या आर्थिक, क्या आध्यात्मिक और क्या राजनैतिक, सभी अङ्गों को ग़ुलामी खाए डालती है।

शिक्षणालय भी तो भीषण बध-गृह हैं। वहाँ भी दिल-दिमाग़ ग़ुलामी के गोरख-धन्धे में फँसा दिया है। अब तो तरह-तरह की क्रान्तियों के बिना उद्धार असम्भव है। हिचके मत, मर-मिटने की आदतों से ही अस्तित्व स्थापित रहता है। उठ, सर्वाङ्गीण क्रान्ति का शङ्ख फूँक! काट गिरा रूढ़ि-बन्धनों को, फहरा दे 'विश्व-बन्धुत्व' की पताका और रच दे सम्पूर्ण स्वाधीन, स्वस्थ, स्वावलम्बी, साम्यवादी समाज की रचना। बकने दे इन धर्म-व्यवसाइयों को। मत देख शास्त्रों की ओर, शास्त्र तो तेरे उपयोग के उपकरण हैं। तू तो उन्मत होकर चला चल, आमूल क्रान्ति करता, मनुष्यों के बनाए बन्धनों को तोड़ता, सर्वाङ्गीण विकास का मार्ग साफ़ करता। देख, अन्य देशों के युवक कितने सरपट दौड़ रहे हैं, तू भी सारे बन्धन तोड़-ताड़ कर भाग। जला डाल सब सत्यानाशी व्यवस्थाओं को। इन्होंने तो लाखों को विधवा बना रक्खा है। करोड़ों बहिनों को परदों में सड़ा रक्खा है। पुरुषों को व्यभिचार का 'पासपोर्ट' दे रक्खा है! बच्चों को शिक्षा से वञ्चित कर रक्खा है। बस मनुष्यता का उद्धार कर। मानव-धर्म के अनुयायी! यही सच्ची आस्तिकता है। क्रान्ति-कर्मी! हिंसा-अहिंसा, आशा-निराशा, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, स्वर्ग-नर्क, सुख-दुख, जीवन-मरण और आत्मा-परमात्मा से भी ऊपर उठा दे कर्तव्य-कर्मों को!!

"कर्मण्येवाधिकारस्तु मा फलेषु कदाचन"

राजपूताना

[श्री० श्रीनन्द जी पाण्डेय, बी० ए०]

"राजपूताना नहीं परतन्त्र होगा तू कभी'
ईश ने ही कह दिया तुझको बनाया था जभी।
'सर्वदा स्वच्छन्द होकर वीर-वर के धर्म में,
हो प्रमाण सतीत्व में औदार्य में सत्कर्म में।"

❀

प्रबल रिपु से कृपा-भिक्षा माँग सकते हैं कभी,
वेग में नद के शिला के खण्ड क्या अड़ते कभी?
राजपूताना मगर यह काम कर सकता नहीं;
वेग ही नद का मुड़ेगा अचल तो हटता नहीं।

❀

पञ्चनद उद्धत सदा निज वीरजन उपहार से,
बङ्ग क्रीड़ाप्रिय तथा निज सम्पदा विस्तार से।
शान्त मध्य-प्रदेश भी साम्राज्य का अधिकार दे,
दाक्षिणात्य स्वतन्त्रता-प्रिय चाटुमय व्यवहार से।

❀

आर्य-संस्कृति का भवन जब यवन के आघात से,
और जर्जर हो निरन्तर आन्तरिक उत्पात से,
चरचराता अब गिरा या तब गिरा होता रहा,
तू रहा वह स्तम्भ जिसने बोझ सब दृढ़ हो सहा।

❀

हिन्दुओं का सर्वदा श्रद्धेय राजस्थान तू,
अखिल-भूमण्डल-भटों का शुद्ध तीर्थस्थान तू।
तू चिरस्मरणीय भारतवर्ष के इतिहास में,
जहु जा जब तक धरा पर, सूर्य हैं आकाश में।

स्वयंसेविका

[श्री० राजबहादुर जी वर्मा]

शामगढ़ मारवाड़ का एक प्रतिष्ठित एवं धनाढ्य ठिकाना है। एक समय था, जब इस ठिकाने की उदारता, दानशीलता और न्यायप्रियता की कहानियाँ जोधपुर-राज्य में घर-घर कही जाती थीं। लाख सवा लाख की वार्षिक आय थी। ठिकाने में साठ-सत्तर कोतल घोड़े और सात-आठ हाथी हमेशा बँधे-बँधे खाया करते थे। इसके अतिरिक्त रात-दिन काम में आने वाले घोड़े, साँड़िनियाँ और दूसरी सवारियाँ अलग ही थीं। ठाकुर साहब जब 'काँसा' आरोगने विराजते थे, तो चालीस-पचास साथ के सरदार उनके साथ भोजन किया करते थे। शायद ही कोई ऐसा दिन गुज़रता था, जब कोई गायक या कवि ठाकुर साहब को अपना कौशल दिखलाने को न आता हो और उचित इनाम न पाता हो। ठाकुर साहब ने अपने ख़र्चे से कई ग़रीब कन्याओं के विवाह करवाए थे तथा कई निराश्रय तथा अनाथ विधवाएँ ठिकाने से 'पेटिया' पाती थीं। परन्तु दिन सदा एक से नहीं रहते, कालचक्र घूमा। बड़े ठाकुर साहब हरिशरण हो गए, और शामगढ़ की हवा धीरे-धीरे बदलने लगी। ठिकाने की सम्पदा, ख्याति और लक्ष्मी सब शनैः-शनैः कूच होने लगीं।

कुँवर डूँगरसिंह जी अब ठाकुर डूँगरसिंह जी बन गए। आप बड़ी धूमधाम से गद्दी पर बैठे। उस दिन जोधपुर की रण्डियों का नाच हुआ। ठिकाने की 'डापड़ियों' ने 'सारोला' दिया। डूम, ढाडी, धोला, जागा, राणीमङ्गा, राव बारेठ, पुरोहित, व्यास, पाठक और आचार्य आदि सबको इनाम बाँटा गया। गढ़ में हर्ष और उल्लास की नदी उमड़ आई; परन्तु यह एक क्षणिक आनन्द था। श्यामगढ़ ठिकाने का भाग्य अब पलटना चाहता था। ज़माने ने करवट ली। ठाकुर डूँगरसिंह जी अपनी वंश-परम्परागत उदारता, प्रजाप्रियता, मर्यादिता और गुण-ग्राहिकता को भूल गए। अब शामगढ़ में न गुणियों का आदर था, न पण्डितों की प्रतिष्ठा, न अनाथ विधवाओं को पेटिया मिलता था और न राज को पितृहीन बच्चों की चिन्ता थी। ठाकुर साहब कुछ दिन तक मेयो कॉलेज में पढ़े थे, परन्तु वहाँ के अधिकांश विद्यार्थियों की भाँति आपने भी केवल पोलो खेलना, निहायत बढ़िया अङ्गरेज़ी दूकानों पर सिले हुए विदेशी कपड़े पहनना, शराब पीना, निरन्तर अपने मुँह में सिगरेट धारण करना, शिकार खेलना, अपनी आय से अधिक ख़र्च करना और अपने आपको प्रजा से अलग समझना सीखा था। ठिकाने में रहने वाले बड़े-बूढ़े सरदारों से या अहलकारों से आप अधिक बात नहीं करते थे। कॉलेज

के प्रिंसिपल साहब ने सिखाया था कि ऐसा करने से रोब कम हो जाता है। बड़े-बड़े सेठों से और गाँव के पटेलों तथा बोहरों से जो 'पीढ़ियों' का 'पहरावणी' का व्यवहार था, सो भी आपने बन्द कर दिया था। इसको ठाकुर साहब अनावश्यक और अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे। कॉलेज में उन्होंने टूटी-फूटी अङ्गरेज़ी बोलना ज़रूर सीख लिया था, लेकिन इससे ठिकाने का प्रबन्ध नहीं चल सकता था। नाज और नक़दी के हिसाब तो आप बिल्कुल ही नहीं समझते थे। किसानों की हैसियत का, ज़मीन की क़िस्मों का और लोगों की प्रवृत्तियों का उनको कुछ भी पता न था। यथासम्भव अधिक से अधिक 'कड़ता' वसूल करना और बढ़िया से बढ़िया शराब अधिक मात्रा में पीना, यही ठाकुर डूँगरसिंह जी का काम था। ठिकाने के किसान पुकार करने के लिए कई दिन तक दरवाज़े पर पड़े रहते थे, परन्तु शराब के नशे में पागल होकर पड़े रहने वाले ठाकुर साहब तक उनकी पुकार न पहुँचती थी। शराब, व्यभिचार और अपव्यय के कारण ठिकाने पर दो वर्ष के अन्दर ही लगभग चार-पाँच लाख रुपए का क़र्ज़ा हो गया। विवश होकर ठाकुर साहब ने अपनी शान कम करना शुरू किया। तबेले में अब केवल चार-पाँच बूढ़े-बूढ़े टट्टू थे, एक लँगड़ी हथिनी थी और एक बेमरम्मत शिकरम रह गई थी, जिसमें जोतने के लिए एक बूढ़ा और एक नया बैल था। बहुत से अहलकारों ने महीनों तक तनख़्वाह न मिलने के कारण नौकरी छोड़ दी, बोहरों ने क़र्ज़ देना बन्द कर दिया और गद सुनसान नज़र आने लगा।

इस अवस्था में भी बूढ़ा भेरू पासवान ठिकाने से विमुख नहीं हुआ। बहुत से लोगों ने उसे समझाया कि क्रूर-अत्याचारी स्वामी को त्यागने में कोई दोष नहीं है। समय बहुत पलटा खा चुका। केवल रोटी-कपड़े में रहना और अपनी स्वतन्त्रता को स्वामी के समर्पण कर देना वज्र मूर्खता है। वह कहा करता था—"मैं जानता हूँ कि अब ठिकाने का ढङ्ग बिगड़ गया है। मुझे और मेरे बाल-बच्चों को रोटी-कपड़ा भी कठिनता से मिलता है। मेरी लड़की 'मौखम' हो गई है, परन्तु न ठाकुर साहब उसके विवाह का कोई इन्तज़ाम करते हैं, न मुझे करने देते हैं। लाड़ी जी साहब का स्वभाव ठाकुर साहब से भी अधिक कठोर है। उस दिन 'काँसे' का कटोरा फूट जाने के कारण मेरी छोरी को बहुत बुरी तरह से कोड़ों से पिटवाया। मैं ख़ुद सब आफ़तें झेल सकता हूँ, परन्तु छोरे-छोरी के दुख को देख कर मैं अधीर हो जाता हूँ। परन्तु करूँ क्या? मुझसे ठिकाना नहीं छोड़ा जाता। मैं सरकार के 'नानीरे' से डाइजे (दहेज) में आया हूँ। बचपन में ठाकुर साहब मुझे मामा कहा करते थे। जब से कॉलेज से पढ़ कर पधारे हैं, तब से इन्होंने मुझे मामा कहना छोड़ा है। ये मालिक हैं; इनकी मर्ज़ी है। मेरा शरीर इनके नाना के अन्न से पला है। मुझे ये मारें या काटें, मैं यहाँ से नहीं भाग सकता। जनम भर जिनका गारुड़ा (ग्रास) खाया है, उनको छोड़ कर कैसे जाऊँ और जाऊँ भी तो कहाँ? मैं इनका डाइजवाल हूँ। राजा के लम्बे हाथ हैं, जहाँ जाऊँगा, वहीं से पकड़वा मँगवाएँगे। जो भगवान करेगा सो होगा, अब इस थोड़े से जीने में जो दुख पाना होगा सो पाऊँगा।"

२

आज प्रातःकाल जब ठाकुर साहब साढ़े आठ बजे के लगभग जगे, तो उनकी आँखें लाल हो रही थीं और भौंहें तन रही थीं। तारज (पाख़ाना) में पासवान ने पानी का लोटा भर कर रख दिया और ठाकुर साहब 'सेलाँ' पधारे। पौन घण्टे बाद जब वे टट्टी में से निकले और जल्दी-जल्दी हाथ-मुँह धो लिया, तो ज़ोर से पुकारा—'अरे छोराओ! यहाँ कौन हैं? भेरू को जल्दी बुला लाओ।' भेरू पासवान पास के बरामदे में एक फटी सी गुदड़ी में लिपटा बैठा हुआ था और अपनी हथेली में अफ़ीम मथ रहा था। मालिक की आवाज़ सुनते ही उसने अफ़ीम एक तरफ़ रख दी और ठाकुर साहब के सामने जाकर बोला—"हाज़िर हूँ अन्नदाता, हुक्म बकसाओ (बख़्शाओ)।" भेरू को देखते ही ठाकुर साहब लाल-पीले हो गए और अपने आपे से बाहर होकर बड़े आवेश में आकर बोले—"क्यों रे टुकड़ेल ग़ुलाम! तेरी यह औक़ात और यह अकड़। तू है किसके भरोसे? याद रखना, टुकड़े-टुकड़े के लिए तरसता रहेगा। अभी कामदार को बुला कर तुझे काठ में धरवाता हूँ। तू समझता क्या है? मैं चाहूँ तो

तेरे सारे कुटुम्ब को जीता गड़वा सकता हूँ ।" भेरू बोला—"अन्नदाता ! चाकर से क्या कसूर हुआ ? हजूर की चाकरी करते-करते बूढ़ा हो गया, कभी मेरे ऊपर ऐसा कोप नहीं हुआ था । क्या बात हो गई, जो धणी आज इस तरह नाराज हैं ।" ठाकुर डूँगरसिंह जी की आँखें लाल हो रही थीं और क्रोध तथा शराब के कारण शरीर काँप रहा था । उधर भेरू पासवान हाथ जोड़े हुए थर-थर करता हुआ खड़ा था । उसकी आँखों में आँसू थे और मन में कई प्रकार के सङ्कल्प-विकल्प ।

ठाकुर साहब बोले—"बात ? मुझसे ही पूछता है क्या बात हुई । बात पूछ अपनी छोरी से । मेरे घर के टुकड़े खा-खाकर वह पली है और मुझे ही 'सामा' जवाब देती है । मैं उसको ऐसी सज़ा दूँगा, जो वह जनम भर नहीं भूलेगी और साथ ही मैं तेरी भी पूरी ख़बर लूँगा ।"

"अन्नदाता ! हजूर धणी हैं । पिरथीनाथ हैं । जो चाहे सो कर सकते हैं । चाकर ने जनम भर हजूर के ही गासड़े खाए हैं । तावेदार ठिकाने का ही पञ्छी है । हजूर की मर्जी हो मारें, हजूर की मर्जी हो काटें । परन्तु अर्ज यह है कि मेरी छोरी केसर अभी नासमझ लड़की है, नादान है, कोई भूल हो गई होगी, अब मैं उसको समझा दूँगा और आयन्दा कभी चूक न होगी । अब की बार माफी बख्शी जावे ।"—यह कह कर भेरू पासवान ने रोते हुए अपनी पगड़ी ठाकुर डूँगरसिंह के पैरों में रख दी । परन्तु उसको ठाकुर साहब ने ठुकरा दिया और कहा—"जा, यहाँ से हट जा, लड़की को समझा देना, वरना याद रखना, तुझे नीम से बाँध कर पिटवाऊँगा ।"

भेरू दिन भर मामूली काम-काज तो करता रहा, परन्तु मन में बड़ा दुखी और उद्विग्न था । उसे अपनी लड़की के अपराध का स्पष्ट पता न था और न ठाकुर साहब से ही पूछने का उसका साहस हुआ । इसलिए मन में बार-बार यही सोचता था कि आख़िर लड़की ने ऐसा क्या अपराध कर डाला, जिससे सरकार नाराज़ हो गए । उसकी लड़की और स्त्री दिन भर रावले में काम करती रहीं । रात को ग्यारह बजे से सुबह चार बजे तक के लिए एक दिन केसर को और एक दिन उसकी माँ को घर आने की छुट्टी मिलती थी । गढ़ के बाहर एक टूटा-सा कवेलूपोश घर था, जहाँ पर भेरू पासवान का दुखी परिवार अपनी रातें बिताया करता था । दो फटी हुई गुदड़ी, एक फूटा सा पीतल का लोटा और एक घड़ा भेरू की सम्पत्ति थी । बड़े ठाकुर साहब के ज़माने में दीपक जलाने के लिए रोज 'ढाणी' भर तेल मिल जाया करता था, परन्तु ठाकुर डूँगरसिंह जी ने मेयो कॉलेज से पढ़ कर पधारते ही यह बन्द करवा दिया था ।

उस दिन भेरू की लड़की और स्त्री दोनों को ठाकुर साहब ने रात के ६ बजे ही घर जाने की छुट्टी दे दी । जाने से पहले केसर की माँ को अलग बुला कर ठाकुर साहब ने बहुत फटकारा और कहा—आज तुम दोनों लोग-लुगाई मिल कर अपनी लड़की को समझा देना, वरना मैं तुम्हारी गत बिगाड़ दूँगा ।

ज्योंही तीनों मिले तो भेरू बोला—"तुम लोग मेरे प्राणों के क्यों भूखे हो रहे हो ? तुम्हें सूझा क्या है, क्या तुम मुझे काठ में सड़वाना चाहते हो ? सरकार आज मुझसे बहुत नाराज़ हुए ।" भेरू की स्त्री ने कहा—"मुझसे भी आते समय सरकार नाराज़ हुए थे और कहा था कि तू अपनी छोरी को समझा देना । यह छोरी इतनी बड़ी हो गई है और अब भी इसमें अक्ल नहीं आई । न जाने इसने सरकार से क्या कह दिया, जिससे वे इतने नाराज़ हो गए ।"

"यह लड़की बुढ़ापे में मेरी मिट्टी बिगड़ावेगी । धणी को नाराज़ करके कहाँ रहेंगे, हम तो बिना पाँख के पञ्छी हैं । रुख़ देख कर काम करना चाहिए और अपने मालिक को सदा ख़ुश रखना चाहिए ।"

भेरू की स्त्री बोली—"क्यों बेटी केसर ! तूने क्या किया ? सरकार क्यों नाराज हैं ? तूने क्या काम बिगाड़ डाला, बता तो सही ।"

भेरू ने और उसकी स्त्री ने सैकड़ों बार केसर से ठाकुर डूँगरसिंह जी की नाराज़गी का कारण पूछा, पर उसने कुछ उत्तर नहीं दिया । उसने जो नीचा मुँह किया तो फिर ऊँचा देखा भी नहीं । टप्-टप् आँसू गिराने के अतिरिक्त और कभी-कभी दीर्घ-निःश्वासों के सिवाय वह कुछ नहीं बोली । बोलती भी क्या, उसका हृदय घोर अपमान और अत्याचार की चट्टान पर टकरा कर चूर-चूर हो गया था । वह अन्तर्वेदना से झुलस चुकी थी ।

माँ-बाप से भी अपनी कहानी कैसे कहती और कहती भी तो बेचारा भेरू क्या करता? उसके निरन्तर आँसू और निःश्वासों को देख कर पति-पत्नियों ने अनुमान कर लिया कि कोई साधारण बात नहीं है। उन्होंने भी अपनी असहाय अवस्था पर दो आँसू बहाए और लम्बी साँसें खींचीं। अन्त को तीनों प्राणी सिसकियाँ भरते हुए लगभग साढ़े बारह बजे रात को बन्द हुए और कुछ घण्टों के लिए निद्रा देवी की गोद में सुख से सोए।

३

केसर, भेरू पासवान की इकलौती पुत्री थी। उसके कई सन्तानें हुई थीं, पर सब मलेरिया बुख़ार की भेंट हो गई थीं। अन्त में केसर ही बची और उसीको देख कर माँ-बाप अपने दुखमय जीवन में कभी-कभी सुख-लाभ किया करते थे। केसर थी तो पासवान की लड़की, परन्तु इतनी सुन्दर थी कि फटे कपड़ों में भी शैवाल से घिरे हुए कमल की भाँति उसका लावण्य दमकता था—तीज, गणगोर और होली पर जब उसको पहनने के लिए अच्छे कपड़े और ज़ेवर मिलते थे, तो 'रावले' में वही वह दिखाई देती थी। गाँव की स्त्रियों की आँखें उसी पर जाया करती थीं। वास्तव में वही ठकुरानी मालूम होती थी। केसर में विशेषता यह थी कि वह अन्य बाँदियों की भाँति गिरी हुई नहीं थी। उसको नीच से नीच सेवा करनी पड़ती थी, कई बार ठकुरानी का पेशाब और पाख़ाना भी उसने उठाया था, परन्तु फिर भी उसमें एक गुण था, जिसका अन्य दासियों में नितान्त अभाव था। वास्तव में दासियों का क्या मान और प्रतिष्ठा और क्या उनके अधिकार। वे अपने-अपने स्वामी के हाथ की कठपुतली होती हैं। स्वामी चाहे जैसा अधम और पाशविक प्रकृति वाला हो, दासियाँ उसकी आज्ञाओं का विरोध नहीं कर सकतीं। उसकी कठोरता उनको सहनी पड़ती है और उसकी विलासिता तथा कामुकता में उनको उपकरण बनना पड़ता है। केसर कई बार अपने सरकार के हाथों से पिट चुकी थी। ठकुरानी भी उसे कई बार कोड़े लगवा चुकी थीं। ये सब कुछ उसने जी मसोस कर सहा। परन्तु फिर भी वह समझती थी कि निर्धन दास के पास भी एक ऐसा धन होना चाहिए, जिस पर क्रूर से क्रूर स्वामी भी आक्रमण नहीं कर सकता। वह धन उसकी अमर निधि है, उसके जीवन का सन्तोष है और असहाय अवस्था का नशा है। वह धन है चरित्र। पता नहीं, कहाँ से केसर के हृदय में यह बात जम गई थी कि चरित्र और इज़्ज़त राजा और महाराजा के भी भेंट नहीं किए जा सकते।

जिस दिन ठाकुर साहब भेरू पर इतने नाराज़ हुए, उससे पहिली रात्रि को केसर के जीवन में एक अद्भुत घटना घटित हुई। इससे पहिले भी ठाकुर साहब कई बार उसकी ओर मुस्कुरा चुके थे, अपनी मद-भरी आँखों से उसकी ओर देख चुके थे और एकान्त में उसके बालों की तथा उसके अन्य अङ्गों की प्रशंसा कर चुके थे। परन्तु इन अवसरों पर केसर हाथ जोड़ कर एक क्षण के लिए खड़ी हो जाती थी और "अन्नदाता माफ़ करें।" यह कह कर अन्य दासियों में जा शामिल होती थी। परन्तु उस रात को केसर को ठाकुर साहब की अधिक जाग्रत और उत्तेजित पाप-वासना का सामना करना पड़ा। दूध का कटोरा लेकर जब केसर ठाकुर साहब के शयनागार में पहुँची, तो वे शराब के नशे में चूर थे। आज ठकुरानी जी को ज्वर था, इसलिए वे अलग कमरे में सोई हुई थीं। ठाकुर साहब ने दूध पीकर कटोरा पलँग के नीचे फेंक दिया और केसर की तरफ़ अपना हाथ बढ़ाया। केसर हाथ जोड़ कर दरवाज़े की ओर हटी और बाहर निकलना ही चाहती थी कि ठाकुर साहब ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसको अपनी ओर खींचा। केसर में एकदम आत्मबल जाग्रत हो उठा, जिसके कारण उसका चेहरा लाल हो गया, होंठ फड़कने लगे और साहस तथा स्वाभिमान से उसके शरीर में एक अपूर्व शक्ति आ गई। उसने फ़ौरन ठाकुर साहब का हाथ झटका। वे नशे में चूर तो थे ही, धड़ से आधे पलँग पर गिरे और आधे नीचे। केसर दौड़ कर दासियों में जा मिली। दूसरे ही दिन ठाकुर साहब ने केसर पर क्रोध प्रकट किया। ख़ूब उसको फटकारा, कोड़े लगवाए और अन्त में चिमटा गरम करके उसकी जङ्घा पर चिपकाया गया। इस प्रकार अपनी न्याय-प्रियता का परिचय देकर केसर को 'रावले' की एक एकान्त कोठरी में डाल दिया गया और एक भारी चक्की से उससे रोज़ पचीस सेर बारीक आटा

पिसवाया जाने लगा। जन्म से ही केसर इस प्रकार के अत्याचार सहने की आदी थी।

इस घटना से केसर के मन में महान वेदना तथा ग्लानि उत्पन्न हुई। ठाकुर साहब की कुत्सित भावनाओं और अपनी विवशता पर उसे निरन्तर ध्यान रहने लगा। अनेक प्रकार के सङ्कल्प-विकल्प उसके हृदय में उत्पन्न होते थे। एक असहाय बन्दी की भाँति वह अपने छुटकारे की अनेक विधियाँ सोचा करती थी, पर सब प्रातःकाल के कोहरे की भाँति उसके निराश मन में एक क्षण के लिए उत्पन्न होकर एक क्षण में ही विलीन हो जाती थीं। वास्तव में उसे उस महान पाश से मुक्ति दिलाने वाला कोई भी दिखाई नहीं देता था।

महीनों गुज़र गए, परन्तु न केसर की चरित्र-दृढ़ता कम हुई, न ठाकुर डूँगरसिंह की कामुकता।

ठाकुर साहब अपने ठिकाने के प्रबन्ध में और पारस्परिक शिष्टाचार में तो अधिक कुशल नहीं थे, पर छल और चालाकी की उनमें कमी नहीं थी। अपनी कुत्सित वासना की तृप्ति के लिए घृणित से घृणित साधनों का अवलम्बन करने में तथा नीच से नीच मनुष्यों की सहायता चाहने में उनको सङ्कोच नहीं होता था। ठिकाने के पुराने कामदार भूरालाल जी से और बोहरा गोरीलाल जी से अधिक बातचीत करना वे अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे, परन्तु अपनी डायजवाल कञ्चन से वे घण्टों तक घुट-घुट कर बातें किया करते थे। एक दिन जब ठाकुर साहब काँसा आरोग चुके और दोपहर के लगभग बारह बजे सब दासियाँ एकत्र हुईं तो कञ्चन केसर को एक तरफ़ ले जाकर कहने लगी—"तू यह मत समझना कि सरकार तुझसे या तेरे माँ-बाप से नाराज़ हैं। उनकी तेरे ऊपर बड़ी सुदृष्टि है। वे तुझे अपनी मर्ज़ी-पात्र बनाना चाहते हैं। किसका भाग्य है जो धणी इतना ख़ुश हो। तू अपने भाग्य को सराह और जान-बूझ कर इस मौक़े को हाथ से मत जाने दे। अपना क्या, पासवान हैं, अपना शरीर, इज़्ज़त-आबरू सब सरकार की है। जिसमें अन्नदाता ख़ुश हों वही काम करना चाहिए और फिर देख तेरी ही सब कुछ चलेगी। आज तो तू हमसे बात भी करती है, फिर हमको पास भी नहीं बैठने देगी। अगर भगवान की दया हुई तो अन्नदाता तुझे पर्दा बख़्श देंगे और तू पड़दायत बन जायगी। तब तेरे माँ और बाप का भी दुख दूर हो जावेगा। रतनगढ़, राजगढ़, सरूपनगर आदि कितने ही ठिकानों में आज मामूली पासवानों की लड़कियाँ ठकुरानियों से भी अधिक प्यारी और ज़ोरदार बन गई हैं। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो पड़दायतों की ही तूती बोलती है और ठाकुरों को तो कोई नहीं पूछता। इसलिए तू सोच-समझ कर काम कर। आज मैं तुझे अपने साथ सरकार के पास ले चलूँगी। तेरे हाथ से आज वे आसा (जयपुर की शराब) आरोगेंगे। उस दिन की तरह गुस्ताख़ी मत करना।"

केसर ने कुछ उत्तर नहीं दिया। कञ्चन ने बार-बार उसके मन की बात स्पष्ट जानना चाही, पर उसने अपने मुँह से एक शब्द भी न निकाला। अन्य दासियों को भी पता था कि ठाकुर साहब केसर पर मेहरबानी करना चाहते हैं। जब कञ्चन और केसर सब में शामिल हुईं तो बातों ही बातों में औरों ने भी उसको यही सलाह दी कि उसको फ़ौरन ठाकुर साहब की सेवा में हाज़िर हो जाना चाहिए और चरित्र-रक्षा के झूठे जञ्जाल में पड़ कर आते हुए वैभव को नहीं ठुकराना चाहिए। गोरा 'बड़ारण' ने कहा कि—"ठाकुर साहब की आँखों की पुतली बनना अच्छा या जन्म भर काल-कोठड़ी में बैठ कर चक्की पीसना अच्छा?"

केसर ये सब बातें सुन कर अपनी कोठरी में चली गई और चक्की पीसने लगी। शाम के ६ बजे के लगभग ठाकुर साहब बीस बटेर, बारह तीतर, छः ख़रगोश, दो-तीन बगुले और बतख़ें मार कर वापस पधारे तो जल्दी से उस दिन की डाक देखी। चिट्ठियों को बिना खोले ही रख दिया, लेकिन 'पायोनियर' को खोल कर उसमें जल्दी से विजयानगरम् महाराज-कुमार की क्रिकेट टीम का हाल पढ़ा और फिर ज़नाने में पधारे। रावले के एक हिस्से में कञ्चन को बुला कर केसर का हाल पूछा और प्रसन्न होकर उसको एक प्याला शराब बख़्शा। शाम को दस बजे के लगभग केसर को एक मलमल की साड़ी, एक छींट का लहँगा और कुड़ती तथा काँचली बख़्शी गई। रात के ग्यारह बजे कञ्चन ने जाकर उससे कहा—"आ, मेरे साथ चल, मैं अन्नदाता से तुझे माफ़ी दिला दूँगी और तेरे हाथ से वे शराब आरोग लेंगे। मेरे ही कहने से तुझको ये कपड़े बख़्शे गए हैं।"

कञ्चन ने बहुत-कुछ ज़िद की, लेकिन केसर टस से

मस नहीं हुई। आख़िर हार मान कर वह वापस चली गई और ठाकुर साहब से अर्ज़ की कि केसर दो दिन के अन्दर अवश्य राज़ी हो जावेगी। केसर ने नए कपड़ों को एक बार पहना और अपने शरीर को ऊपर से नीचे तक कुछ अतर्क्य भावों के साथ देखा। उन्हीं कपड़ों को पहने हुए वह लेट गई, पर उसको नींद नहीं आई। उसका मन अनेक प्रकार के विचारों में डूबा रहा। कभी वह ठाकुर साहब की मर्ज़ी-पात्र बन कर सोना और मोतियों के ज़ेवर पहनने की, सुख के महल में उनके साथ ढोलणी (पलँग) पर बैठी हुई शराब पीने की, और सम्पूर्ण 'रावले' पर हुकूमत करने की कल्पना करती थी और कभी इस सब वैभव को ठुकरा कर अपनी इज़्ज़त और आबरू की रक्षा करने का निश्चय करती थी। मन कभी इधर खिंचता था, कभी उधर। रात भर इस झूले में झूलती रही। न वह पड़दायत बनने का निश्चय कर सकी और न चरित्र-रक्षा का। प्रातःकाल उसने कञ्चन के द्वारा अपने माँ-बाप के साथ घर जाने की इजाज़त माँगी, जो ठाकुर साहब ने फ़ौरन दे दी।

४

भेरू पासवान के झोंपड़े के पास ही ठिकाने के पुरोहित गणपतलाल जी का मकान था, जिनकी धर्मपत्नी अजमेर की थी। वहाँ आर्य-कन्या-पाठशाला में इसने चार-पाँच वर्ष तक शिक्षा पाई थी। विवाह बचपन में ही हो गया था, तो भी साधारण लिखना-पढ़ना उसको आ गया था और हवन-मन्त्र तथा कई आर्य-समाजी भजन उसको कण्ठ थे। दो-चार भजन हारमोनियम बाजे पर भी टूटी-फूटी रीति से निकाल लेती थी। जब महात्मा गाँधी ने साबरमती आश्रम से डाँडी की ओर प्रस्थान किया और देश में एकदम राजनैतिक प्रक्षोभ उत्पन्न हुआ, उस समय पुरोहित जी की धर्मपत्नी अजमेर में थी। तभी से इसको समाचार-पत्र पढ़ने का शौक़ हुआ और एक मासिक तथा एक साप्ताहिक पत्र मँगवाने लगी। एक-दो बार ठाकुर साहब ने पुरोहित जी से पूछा भी कि उनके यहाँ 'प्रताप' और 'चाँद' क्यों आते हैं। पर जब उनको पता चला कि अख़बारों को केवल पुरोहिताणी जी ही पढ़ती हैं, पुरोहित जी नहीं पढ़ते, तो उनकी चिन्ता दूर हो गई और भविष्य में उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की। पुरोहिताणी जी अजमेर से महात्मा गाँधी का एक चित्र भी साथ लाई थीं, जो उन्होंने अपने कमरे में लगा रक्खा था। वर्ष में दो-चार बार जब कभी केसर को दिन में भी अपने घर पर रहने का अवसर मिलता था तो वह पुरोहिताणी जी के पास चली जाया करती थी और उनके भजन सुना करती थी। पिछले चार-पाँच मास में उसको कई बार घर पर रहने का मौक़ा मिला। एक बार जब भेरू पासवान बीमार हो गया तो उसको लगातार दस दिन तक घर पर रहने की इजाज़त बख़्श दी गई थी। उन दिनों में केसर रोज़ पुरोहिताणी जी से मिला करती थी, और वे उसको कभी भजन सुनाया करती थीं और कभी महात्मा गाँधी के नेतृत्व में होने वाले भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम की कहानियाँ कहा करती थीं। स्वराज्य क्या है और अङ्गरेज़ सरकार क्या है, यह केसर की समझ में नहीं आ सकता था। उसने पुरोहिताणी जी से केवल यह बात आश्चर्य और उल्लास के साथ सुनी थी कि महात्मा गाँधी के सिपाही बन्दूक़ और तलवारों के सामने बिना हथियार के लड़ते हैं और सब जगह बन्दूक़ और तलवार की हार होती है। उसको यह बात जान कर भी बड़ी प्रसन्नता हुई थी कि महात्मा गाँधी जाति-पाँति के भेद को नहीं मानते और वेश्याओं को भी बहिन कह कर पुकारते हैं। केसर जब पुरोहिताणी जी से मिलने जाती थी, तो सब से पहले महात्मा जी के चित्र को नमस्कार करती थी और बहुत देर तक उसकी तरफ़ इकटक देखा करती थी।

आज केसर अपने घर पहुँची और अपने माँ-बाप से दो-चार बातें करने के बाद पुरोहिताणी जी के यहाँ चली गई। माँ-बाप को पता लग गया था कि मामला क्या है। परम्परागत संस्कारों के कारण वे अपनी लड़की के पड़दायत बनने में कोई हानि नहीं समझते थे। केसर से उन्होंने दबे शब्दों में कहा कि सरकार को नाराज़ नहीं करना चाहिए, परन्तु उसने हाँ या ना कुछ उत्तर न दिया। जब वह पुरोहिताणी जी के यहाँ पहुँची तो दरवाज़े में घुसते ही उसको हारमोनियम के स्वर के साथ-साथ यह गाना सुनाई दिया —

अरे रावण तू धमकी दिखाता किसे,
मुझे मरने का ख़ौफ़ो-ख़तर ही नहीं।

केसर के हृदय में भी इसकी प्रतिध्वनि होने लगी। केसर ने पहले भी इस गीत को एक-दो बार सुना था, किन्तु आज इस गाने में उसे अनोखा रस आया। महात्मा जी के चित्र को नमस्कार करके वह चुपचाप पुरोहितानी जी के पास बैठ गई और धीरे-धीरे वह भी उनके स्वर में अपना स्वर मिलाने लगी। गाते-गाते जब—

क्या तू सोने की लङ्का का मान करे,
मेरे आगे वह मिट्टी का घर भी नहीं।

पद आया तो केसर ने बड़े ज़ोर की आवाज़ से इसको गाया। उसका चेहरा एक अपूर्व ओज से दमकने लगा और आँखों में तेज छलकने लगा। पुरोहितानी जी को ऐसा जान पड़ने लगा, मानो उनके सामने केसर नहीं, कोई भावमयी उपदेशिका बैठी हुई है। परन्तु गीत की समाप्ति होने पर केसर की भावातिशयता की भी समाप्ति हो गई और उसके हृदय में एक द्वन्द्व होने लगा। क्या निर्बल और सबल की लड़ाई, राजा और ग़ुलाम की मुठभेड़ सम्भव है? उसने पुरोहितानी जी से पूछा—"हुज़ूर, सीता माता तो लक्ष्मी जी का ऊँतार थीं, भगवान की स्त्री थीं, इसलिए रावण जैसे महाराजा का सामना कर सकती थीं। आप यह तो बतलाओ कि अगर मुझ जैसी दुखिया पासवान की छोरी पर कोई हाथ उठावे, तो वह क्या करे?"

पुरोहितानी जी—कोई भी दुष्ट किसी अच्छी स्त्री पर हाथ नहीं उठा सकता।

केसर—नहीं, पुरोहितानी जी, ऐसे दुष्ट बहुत हैं, जो अपने घर में पली हुई बाँदियों को भी बुरी नज़र से देखते हैं।

पुरोहितानी जी—हाँ, यह ठीक है, पर वे बाँदियाँ भी वैसी ही होती हैं।

केसर—ठीक हुकुम है, परन्तु बाँदी करे भी तो क्या, राजा के आगे उसकी क्या चले।

पुरोहितानी जी—जहाँ अपने चरित्र और धर्म का सवाल है, वहाँ क्या राजा और क्या बादशाह।

केसर—तो क्या करना चाहिए?

पुरोहितानी जी—अपने चरित्र की रक्षा के लिए यदि हो सके तो ऐसे दुष्ट का सफ़ाया कर देना चाहिए।

केसर—अजी हुज़ूर, बाँदियों की यह कहाँ औक़ात! कहाँ उनके पास तलवार, कहाँ बन्दूक़? थोड़ी हुकुमउदूली करते ही तो बेचारियों को काली कोठड़ी में डाल कर चक्की पिसवाई जाने लगती है और जो अपनी इज़्ज़त देने पर तैयार नहीं होतीं तो उनको गरम लोहे से जलाया जाता है। ऐसी दशा में क्या करना चाहिए?

पुरोहितानी जी—जब यह बात हो तो प्राण दे देना चाहिए। चरित्र को खोने से प्राणों का खोना अच्छा है।

केसर ने बड़ी उत्सुकता से और बड़े आदर से पुरोहितानी जी के उत्तर सुने। जब वह वहाँ से आने लगी तो खड़ी होकर बहुत देर तक महात्मा जी के चित्र के सामने हाथ जोड़े रही और आँखें मूँद कर कुछ गुनगुनाती रही। फिर वह पुरोहितानी जी के चरणों में गिर गई और फूट-फूट कर रोने लगी। पुरोहितानी जी नहीं समझ सकीं कि इसका क्या कारण है। उन्होंने एक-दो बार पूछा भी, परन्तु उसने नहीं बतलाया। इस समय पुरोहितानी जी की अवस्था भी लगभग अठारह वर्ष की थी, उनको ज़नाने में भी केवल दो-चार बार ही थोड़ी देर के लिए जाने का काम पड़ा था। न उनको संसार का अधिक अनुभव था, न ठाकुर डूँगरसिंह के घर का हाल मालूम था। जब केसर का हृदय हल्का हुआ तो उसने पुरोहितानी जी से कहा, 'आप मेरी असली माँ हो' और महात्मा जी के चित्र की तरफ़ देखते हुए कहा, 'यह मेरा असली बाप है।' यह कहती हुई और फिर-फिर कर महात्मा जी के चित्र की तरफ़ देखती हुई वह अपने घर चली गई।

५

रात के दस बजे फिर कञ्चन केसर के पास आई और उसे बहुत-कुछ समझा-बुझा कर ठाकुर साहब की सेवा में हाज़िर होने के लिए आग्रह किया, पर केसर ने एक न सुनी। चरित्र-रक्षा के लिए घोर से घोर कष्ट झेलने का और अन्तिम साँस तक अत्याचार के विरोध करने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था। जब कञ्चन को विफलता हुई, तो उसने केसर के नए कपड़े छीन लिए और उसके एक-दो लात और घूँसे जमा कर

चली गई। केसर अँधेरी कोठड़ी में चक्की का सिरहाना लगा कर ज़मीन पर पड़ गई। उसने कई बार सोने का प्रयत्न किया, पर नींद नहीं आई। उसकी आँखों के सामने से महात्मा गाँधी का चित्र नहीं हटता था, और न बन्द होती थी यह स्वतः गुनगुनाहट—

अरे रावण तू धमकी दिखाता किसे,
मुझे मरने का ख़ौफ़ो ख़तर ही नहीं...

एक बजे के लगभग उसे झपकी लगी, तो स्वप्न में क्या देखती है कि ठाकुर साहब के सोने के कमरे में दो दासियाँ उसको पकड़े हुए खड़ी हैं और ठाकुर साहब उसको अपनी तरफ़ खींच रहे हैं। केसर गिड़गिड़ाती है, हाथ जोड़ती है, रोती है और चरित्र की भिक्षा माँगती है, पर किसी का हृदय नहीं पसीजता।

थोड़ी ही देर में केसर की आँख खुल गई। उसके हृदय में भारी धड़कन हो रही थी। यहाँ कुछ भी न था, पर भय से उसका मन बैठा ही जाता था। बाहर निकली तो भयङ्कर अँधेरी रात थी, इससे तो उसकी काल-कोठड़ी ही अच्छी थी। चारों ओर सन्नाटा था। केवल महल में दूर पर एक धीमा सा दीपक टिमटिमा रहा था, केसर का भय और भी बढ़ा। स्वप्न की घटना में उसे सचाई नज़र आने लगी। विह्वल होकर वह इधर-उधर देखने लगी। चारों ओर उसको भयङ्करता और निराशा नज़र आती थी। वह एक बार फिर अपनी कोठड़ी में गई और फिर बाहर आई। उसने आकाश की ओर देखा। प्रत्येक तारे में उसको महात्मा गाँधी का चित्र दिखाई दिया। नीरव रजनी की सनसनाहट में उसे 'अरे रावण तू धमकी दिखाता किसे' शब्द सुनाई दिया। अकस्मात् उसने निश्चय कर लिया कि चरित्र-रक्षा के लिए प्राण दे देना अच्छा है। वह एक बार फिर कोठड़ी में घुसी। अपनी फटी गुदड़ी अपने साथ ली और चुपके से महल की छत पर पहुँची। नीचे देखा तो जाल के कटीले वृक्ष थे और लगभग ४० फुट ऊँची दीवार थी। केसर ने अपने शरीर को गुदड़ी में लपेटा और कूदने को तैयार हुई। एक क्षण के लिए उसे पुनः कञ्चन की बातें याद आईं और अपने प्राणों का मोह जाग्रत हुआ। परन्तु तत्काल ही वह गुनगुनाने लगी, 'मुझे मरने का ख़ौफ़ो ख़तर ही नहीं'। यह गीत गुनगुनाती हुई वह छत पर से छटकी और एक जाल के पेड़ पर गिरी। गुदड़ी के आवरण से बहुत-कुछ रक्षा हुई, परन्तु फिर भी उसके कई जगह चोट आई और कितने ही काँटे चुभे। अपने आहत शरीर को उसने धन्य समझा और अपनी वेदना की परवाह न करके वह वहाँ से चल दी। नहीं समझती थी कि वह कहाँ जा रही है। उसे रास्ते का भी कुछ ज्ञान नहीं था। ग्यारह-बारह वर्ष की अवस्था में वह मारवाड़-जङ्क्शन से रेल में बैठ कर बड़े ठाकुर साहब के ज़माने में उनकी ठकुरानी जी के साथ रामगढ़ गई थी। पर वह स्मृति अब धुँधली सी हो गई थी, तिस पर भी रात और ठिकाने के सवारों का डर। फिर भी वह चलती रही। लगभग चार बजे जब प्रकाश होने लगा, तो उसने देखा कि वह मारवाड़-जङ्क्शन के पास है।

६

२०वीं जून बम्बई में एक अपूर्व दिन था। भगवान भास्कर प्रखर किरणों से संसार को तपा रहे थे। अङ्गरेज़ सरकार भी अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग करके पिकेटिङ्ग का अन्त कर देना चाहती थी। लगभग पन्द्रह हज़ार स्वयंसेवक और तीन हज़ार देश-सेविकाएँ जेल जा चुकी थीं। कितने ही देश-भक्त पुलिस की लाठियों से आहत होकर कॉङ्ग्रेस के अस्पताल में पड़े हुए थे। महात्मा गाँधी, अब्बास तैयब जी, सरोजिनी नायडू, श्रीमती मुन्शी, आदि नेता जेल में बन्द किए जा चुके थे, तो भी जनता का उत्साह भङ्ग नहीं हुआ था। स्वातन्त्र्याभिलाषा अधिकाधिक प्रबल होती जाती थी। बलिदान-कामना बढ़ती जाती थी और मातृभूमि की रक्षा के लिए युवक और युवतियाँ अपने प्राणों को न्योछावर करने के लिए लालायित हो रहे थे। परन्तु आज था अपूर्व परीक्षा का दिन। बम्बई के नए पुलिस-कमिश्नर दमन को महौषधि समझते थे और लाठी तथा तलवार को अमोघ अस्त्र। कॉङ्ग्रेस स्वयंसेवक और स्वयंसेविकाओं का जुलूस निकाल कर पिकेटिङ्ग करने पर तुली हुई थी और सरकार बड़े पैमाने पर लाठी-चार्ज करके इस संस्था का अन्त करना चाहती थी। सरकार ने घोषणा कर दी कि यदि जुलूस निकाला जायगा तो सरकार लाठी-चार्ज करवाएगी। बम्बई से बाहर की

पुलिस बुलवाई गई और जिस बाज़ार में होकर जुलूस निकलने वाला था, वहाँ लगभग ५०० पुलिस-मैन मज़बूत लाठियों के साथ खड़े किए गए! रण की गति को देखने के लिए पुलिस के वीर नायक एक सरकारी मकान की छत पर हाथ में बेंत लिए हुए खड़े हो गए।

आख़िर कॉङ्ग्रेस ने जुलूस निकाला ही। श्रीमती हंसा मेहता के मकान पर युद्ध-समिति की बैठक हुई। यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि आज देश-सेविकाओं के दल का नेतृत्व कौन ग्रहण करेगी। यह बड़ी ज़िम्मेवारी का, साहस का, और वीरता का काम था। उस समय मातृ-भूमि की बलि-वेदी पर बलिदान होने के लिए अनेक युवतियाँ तैयार थीं, परन्तु श्रीमती मेहता ने निश्चय किया कि आज केसर बहिन कप्तान बनाई जावेगी। केसर आरम्भ में साधारण देशसेविका बनी थी, पर दो सप्ताह के अन्दर ही कॉङ्ग्रेस के उच्च अधिकारी उसको पहचानने लगे और उसकी दृढ़ता, निर्भीकता तथा देश-भक्ति की प्रशंसा होने लगी। धूप में घण्टों तक खड़े रहना, दो दिन तक बिना खाए-पिए काम करते रहना, ज़मीन पर सोना और कठोर से कठोर कष्ट को शान्ति-पूर्वक सहना, केसर के लिए साधारण बात थी। इतना काम करते हुए भी केसर ने दो मास के अन्दर ही हिन्दी लिखना-पढ़ना और रात-दिन काम में आने वाले अङ्गरेज़ी के शब्द सीख लिए थे। इन अद्भुत गुणों के कारण श्रीमती मेहता और मुन्शी उस पर मुग्ध थीं। कई बार उसको श्रीमती हंसा मेहता ने अपने मकान पर चाय पीने के लिए बुलाया था और श्रीमती मुन्शी ने उसे अपने बँगले में रहने के लिए एक कमरा दे दिया था।

जुलूस निकला। लाठी-चार्ज हुआ। लाठियों की दारुण चोटों से आहत होकर गिरते हुए स्वयंसेवकों को पुलिस-कमिश्नर ने विनोदपूर्वक देखा। कॉङ्ग्रेस की एम्ब्युलेन्स मोटरें आहत सत्याग्रहियों को कॉङ्ग्रेस अस्पताल में ले गईं। फिर भी जुलूस निकला ही। केसर बहिन देशसेविकाओं के दल के आगे "स्वतन्त्र भारत, स्वतन्त्र भारत" गाना गाती हुई निकली। जिधर की ओर केसरिया खद्दर की साड़ी पहने हुए देशसेविकाओं का यह दल जाता था, उधर गगन-भेदी हर्ष-ध्वनि होती थी और लोग केसर बहिन की ओर सङ्केत करके कहते थे कि यह राजपूताने की एक वीराङ्गना है, जो थोड़े दिन पहले ही स्वातन्त्र्य-संग्राम में सम्मिलित हुई थी।

हॉर्नबी रोड पर जाकर केसर बहिन ने देश-सेविकाओं को विदेशी कपड़ों की दूकानों पर और शराब की दूकानों पर पिकेटिङ्ग करने के लिए विभक्त कर दिया और स्वयं एक अङ्गरेज़ी दूकान के सामने हाथ में बहुत बड़ा कॉङ्ग्रेस-झण्डा लिए हुए पिकेटिङ्ग करने लगी।

७

महाराजा जोधपुर पोलो खेलने के लिए ऊटी पधारने लगे तो ठाकुर डूँगरसिंह जी को भी साथ ले गए। परन्तु उनसे यह वचन ले लिया था कि मार्ग में कहीं शराब न पिएँगे। दो दिन के लिए महाराजा साहब बम्बई ताज-महल होटल में ठहर गए। ठाकुर डूँगरसिंह को चार दिन से शराब नहीं मिली थी। बड़े परेशान थे और क्षण-क्षण ऐसे अवसर की तलाश में थे, जब उनको शराब मिल सके। महाराजा साहब के सामने तो वे नहीं पी सकते थे, परन्तु कम से कम रात में तो पीकर सोते। शामगढ़ से रवाना होते समय बोहरा रतनलाल से बहुत-कुछ कह-सुन कर वे ५०) कर्ज़ा ले आए थे। यह सब रुपया शराब के ही लिए था। शेष ख़र्चा उनका महाराजा साहब के ऊपर था। यदि बस चलता तो ठाकुर साहब घर से हज़ार-पाँच सौ रुपए साथ लेकर चलते, परन्तु कर्ज़दारी बढ़ जाने के कारण तथा ज़ुलम और बदचलनी की शिकायतों के कारण उनका ठिकाना रियासत ने कोर्ट कर लिया था। उनको अपने ख़र्च के लिए केवल ३००) महीना मिलते थे।

दोपहर को ठाकुर डूँगरसिंह ने महाराजा साहब से शहर देखने को जाने की इजाज़त माँगी और भेरू पासवान को साथ लेकर मोटर में बैठ कर हॉर्नबी रोड की ओर रवाना हुए। ठाकुर साहब जिधर जाते थे, उधर उनके विदेशी कपड़ों को देख कर बच्चे चिल्लाते थे—'टोडी बच्चा हाय! हाय!' पर ठाकुर साहब को इसकी क्या चिन्ता थी। उनका ध्यान था केवल शराब में। फ़ौरन उनकी मोटर एक अङ्गरेज़ कलाल की दूकान पर पहुँची और वे शराब ख़रीदने के लिए उतरे। आगे क्या देखते हैं कि एक देशसेविका हाथ जोड़े हुए उनके सामने खड़ी है और कहती है—'देश का और अपना

नाश मत करो, शराब मत ख़रीदो।' ठाकुर साहब ने ज्योंही उसकी ओर देखा तो अचम्भित हो गए। हैं, यह कौन? उनके मुँह से कोई बात नहीं निकली, भेरू भी चिल्ला उठा—'बेटी केसर!' वे दोनों कई मिनट तक अचम्भित-भाव से खड़े रहे। केसर की आँखों के सामने साबरमती के सन्त का सुन्दर चित्र मँडराने लगा और वह गाने लगी—

अरे रावण तू धमकी दिखाता किसे,
मुझे मरने का ख़ौफ़ो ख़तर ही नहीं।

भेरू ने अपनी बेटी के माथे पर हाथ फेरा और ठाकुर डूँगरसिंह लज्जित होकर वापस मोटर में बैठ गए। इस अर्से में वहाँ अनेक लोग एकत्रित हो गए और सब ज़ोर से चिल्लाए—'महात्मा गाँधी की जय!' 'केसर बहिन की जय!'

महात्मा गाँधी का बोझ

राजभक्ति का पाप

[श्री० मोतीलाल जी पहाड़िया, कुनाड़ी]

भारत का राजनीतिक जीवन एक बड़े समय से राजा और प्रजा दो समुदायों में विभक्त है। सिद्धान्त की दृष्टि से राजा लोग अपनी प्रजा के सेवक और प्रतिनिधि की हैसियत रखते हैं, लेकिन समय के परिवर्तन ने राजा और प्रजा के इस सम्बन्ध में बड़ा भारी उलट-फेर कर दिया है। आज के अधिकांश राजा लोग अपने आपको प्रजा के प्रतिनिधि नहीं मानते, बल्कि वे मानते हैं अपने आपको प्रजा के तईं ठोक-पीट कर सीधी रखने के लिए ईश्वर की भेजी हुई एक शक्ति। अब राजा लोग प्रजा को अपनी पैतृक सम्पत्ति ख़्याल करके उस पर बड़े-बड़े अत्याचार करने को उतारू हो चले हैं। हिन्दू संस्कृति में राजा और प्रजा के बड़े-बड़े कर्तव्य बतलाए गए हैं। उन कर्तव्यों को राजा लोग तो प्रजा के दिए हुए अधिकारों के मद में क़तई भुला चुके हैं, परन्तु भारतीय प्रजा के दिलों में आज भी राजभक्ति और कर्तव्य-पालन के भाव ठोंक-ठोंक कर भरे हुए हैं। आज हमारे देशी राज्यों की प्रजा अपने अन्नदाता कहे जाने वाले सेवकों के डण्डों से पिटती है, वह अपनी बहिन और बेटियों की इज़्ज़त सरे बाज़ार अपने प्रभुओं द्वारा लुटती हुई अपनी आँखों से देखती है, और वह राजाओं के बड़े-बड़े अत्याचार मन मसोस कर सहती है, लेकिन वाह रे राजभक्ति, कि वह तनिक भी चूँ करना अब तक पाप और घोर पाप समझती आई है। यहाँ तक कि प्रजा अपने राजाओं के अत्याचार बिना किसी चूँ-चपड़ के सह लेना भी अपना पुनीत कर्तव्य समझने लग गई है।

प्रजा ने कर्तव्य-पालन और राजभक्ति के पाप में अनेक प्रकार के सङ्कट और दुःख अपने माथे पर ले लिए। ज्यों-ज्यों उसने राजभक्ति प्रकट की और ज्यों-ज्यों वह अधिक कर्तव्य-पालन पर दृढ़ रही, त्यों-त्यों ही उसके ऊपर अत्याचारों के बम्ब गिरते रहे। राजा तो बड़ी चीज़ है, लेकिन राजा का मेहतर आज प्रजा पर मनमानी हुकूमत और अत्याचार करना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझता है। खेद है, राजभक्ति आज प्रजा के लिए एक प्रकार से श्राप सिद्ध हो रही है। आज यह बड़े दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि राजाओं ने प्रजाभक्ति के भाव अपने हृदय से क़तई हटा दिए हैं। पहले के राजा लोग अपनी प्रजा को रक्षा के लिए फ़ौजें रखते थे, लेकिन आज के राजा लोग प्रजा को दबाने के लिए फ़ौजें रखते हैं। कर्तव्य-पालन का कितना उपहास है?

भारतीय राजनीति धर्म के स्तम्भों पर अवलम्बित है। संसार के महापुरुष महात्मा गाँधी की राजनीति भी धर्म से जुदा नहीं है, क्योंकि महात्मा गाँधी भारतीय हैं। सहानुभूति, दया और प्रेम, धर्म के बड़े भारी तत्व हैं। दूसरों के प्रति सहानुभूति और प्रेम रखने से मनुष्य अपने प्रति सहानुभूति और प्रेम का क्षेत्र विस्तीर्ण कर लेता है। जहाँ राजा और प्रजा के दरमियान सहानुभूति और प्रेम है, वहीं राम-राज्य है और वहाँ राजा और प्रजा के सम्बन्ध की नींव गहरी, पक्की और सुदृढ़ है। यदि राजा और प्रजा में सहानुभूति है और दोनों एक-दूसरे के सुख-दुःख के समान भागीदार हैं तो वहाँ बाहरी दुश्मन से बचने के लिए किसी कोट, परकोट, तोपख़ाने, मेगज़ीन, हाथी, घोड़े, ऊँट, मैशीनगन और सैनिक शक्ति रखने की ज़रूरत नहीं होती है, वहाँ तो प्रजा का बच्चा-बच्चा भी राजा की ढाल है। परन्तु यह सहानुभूति होनी चाहिए स्वार्थ-शून्य। जहाँ ज़रा सा भी स्वार्थ आ जाता है, वहाँ पलड़ा विपक्ष में झुक जाता है। आज राजा और प्रजा के दरमियान कहीं भी सहानुभूति नहीं पाई जाती, क्योंकि राजाओं में स्वार्थ की मात्रा अधिकाधिक बढ़ती जा रही है। जब राजाओं में स्वार्थ आने लगा,

प्रजा को अन्यायों और अत्याचारों से लूट कर अपने ख़ज़ाने भरने की फ़िक्र होने लगी, प्रजा के अधिकारों को कुचला जाने लगा, राजा लोग प्रजा के ख़ज़ाने को अपना ही पैतृक ख़ज़ाना समझने लगे, प्रजा पर अत्याचार करना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार माना जाने लगा, प्रजा की गाढ़ी कमाई और खरे पसीने का पैसा रण्डीबाज़ी, शराबख़ोरी और भाँड़-भड़ुवे आदि में या रङ्ग-महलों की सजावट की सामग्रियाँ ख़रीदने, सात समुद्र पार की परियों के तलवे चाटने, पातरियों के घाघरे सूँघने और प्रजा की बहिन-बेटियों की आबरू लूटने में ख़र्च होने लगा, तो आज प्रजा ने भी किनारा काटना शुरू कर दिया।

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि राजभक्ति के पाप से प्रजा के माथे पर आज अनेक प्रकार के सङ्कट और दुःख लद गए हैं, जिनमें नज़राने, लागत और बेगार भी शामिल हैं।

होली, गनगौर, तीज, दशहरा आदि त्योहारों और वर्षगाँठ, गद्दी-नशीनी आदि उत्सवों के शुभ अवसर पर छोटे-बड़े, जागीरदार-सरदार और नगर के सेठ-साहूकार आदि प्रतिष्ठित लोग अपने राजा से "राम-राम" करने के लिए जाया करते थे, तो अपने स्वामी से ख़ाली हाथ मिलना अशुभ और नीति के विरुद्ध समझ कर वे लोग बिना किसी दबाव या माँग के स्वयं ही भक्तिवश कुछ न कुछ नज़र किया करते थे। जो व्यक्ति जिस हैसियत का होता था, उसीके अनुसार वह नज़र किया करता था। इसी तरह जब राजा लोग अपनी राजधानी छोड़ कर कभी अपनी प्रजा की देख-भाल के लिए देहात में जाया करते थे, तो प्रजा ख़ुशी के मारे फूली नहीं समाती थी और राजा को अपने नगर में आया हुआ देख कर बड़ी प्रसन्न होती थी। गाँवों के पटेल, सेठ-साहूकार, महाजन और प्रतिष्ठित लोग जब अपना दुख-दर्द अर्ज़ करने के लिए अपने दरबार से मिलते थे, तो वे भी अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार कुछ नज़र करके "राम-राम" किया करते थे। वह भेंट या नज़र (जिसने आगे जाकर अनिवार्य भेंट या लाज़िमी नज़राने का रूप धारण कर लिया) राजा लोग नहीं रक्खा करते थे। यदि वह भेंट करने वाले के विशेष आग्रह से कभी रख ली जाया करती थी, तो वह तदुपस्थित दरबारी ख़िदमतगारों में ही विभक्त हो जाया करती थी। हाथी की सवारी के समय की नज़र फीलवान को, घोड़े की सवारी के समय की नज़र सईस को, पालकी की सवारी के समय की नज़र भोइयों और कहारों को, भोजन करते समय की नज़र रसोईदारों को और दरबार के समय की नज़र चोपदार, पासवान, छड़ीवान और फ़र्रास आदि को दे दी जाया करती थी। यदि विशेष आग्रह से भी राजा लोग यह नज़र नहीं रखते थे, तो नज़र करने वाले लोग स्वयं ही अपनी भक्तिवश अपने स्वामी के ऊपर वार कर तदुपस्थित सेवकों को

श्री० मोतीलाल पहाड़्या

(इस लेख के लेखक)

दे दिया करते थे। इसे ही "न्छरावल" कहते हैं। इसके बाद आगन्तुक प्रतिष्ठित लोग अपने-अपने गाँव का हाल और दुःख-दर्द राजा से निवेदन किया करते थे। उस वक़्त कोर्ट-फ़ी के स्टाम्प्स पर दरख़्वास्त नहीं लगती थी, सब ज़बानी ही अर्ज़ की जाया करती थी और ज़बानी ही मुनासिब हुक्म दे दिया जाता था। ऐसी भेंट में राजाओं का तनिक भी लोभ और स्वार्थ नहीं था। परन्तु समय ने पलटा खाया। जब राजा लोगों के दिलों में स्वार्थ ने स्थान जमाया तो उस भक्तिपूर्वक की जाने

वाली तमाम नज़र और भेंट में लाज़िमीपन आ गया। जो लोग उस दिन बिना किसी माँग और दबाव के नज़र किया करते थे, आज वही नज़राना तहसील या निज़ामत के चपरासियों और बख़्शीख़ाने के हलकारों द्वारा बलपूर्वक वसूल किया जाता है। चाहे राजा साहब कभी किसी साल देहात में प्रजा का निरीक्षण करने जायँ या न जायँ, लेकिन हर साल किए जाने वाले नज़राने की रक़म तो ज़रूर ही तहसील में जमा कर देनी होती है। राजाओं के समान कई जागीरदार लोगों ने भी अपनी-अपनी जागीर में यह अमल कर रक्खा है। यह हुआ राजभक्ति का पहला पाप।

उपरोक्त उत्सवों और त्योहारों पर या दौरे में यह भी होता था कि पेशावर लोग अपने-अपने हाथ की तैयार की हुई अच्छी चीज़ें भी राजाओं को भेंट किया करते थे। कहीं-कहीं तो यह हो गया कि अपनी कारीगरी की चीज़ भेंट करने वाले को इनाम दिया जाता था, और कहीं-कहीं यह हो गया कि भेंट करने वाले की पीढ़ियों तक के लिए वह भेंट "लागत" बन गई। राजपूताने में ऐसी 'लागतें' दो-चार नहीं, बल्कि हज़ारों हैं। एक जागीरदार घोड़े पर सवार होकर अपनी जागीर का गाँव सँभालने को गए, खड्डे में गिर जाने से घोड़े का पैर टूट गया और घोड़ा बेकार हो गया। उस गाँव के एक भले आदमी ने अपना एक अच्छा घोड़ा बड़े प्रेम और राजभक्ति के साथ जागीरदार साहब को नज़र कर दिया। इन जागीरदार साहब के देवलोक हो जाने के बाद तीसरी पीढ़ी के एक जागीरदार भी कहीं घोड़े पर सैर करने को निकले और उनका भी घोड़ा इसी प्रकार बेकार हो गया। फिर क्या था, उसी भले आदमी के घर से पुनः एक घोड़ा माँगा गया। उस वक़्त जब उसके घर में घोड़ा मौजूद नहीं था तो, बेचारे को ख़रीद कर देना पड़ा। कहते हैं, यह घुड़पड़ी की लागत अब तक कहीं-कहीं बदस्तूर जारी है। एक मुसलमान तहसीलदार अपने इलाक़े में दौरा करने की ग़र्ज़ से निकले। जिस गाँव में वे पहुँचे, वहाँ उनके एक परिचित मुसलमान दोस्त ने उनके लिए खाट का प्रबन्ध कर दिया। जब-जब वह तहसीलदार साहब वहाँ पहुँचते थे, तो उनका वही अभागा मुसलमान दोस्त खाट का प्रबन्ध कर दिया करता था। तीन-चार साल बाद इन मुसलमान तहसीलदार साहब का तबादला हो गया, तो इनके स्थान पर एक ठाकुर तहसीलदार साहब पधारे। जब यह अपने दौरे पर उस गाँव में पहुँचे, तो तहसीलदार साहब के छोटे मुलाज़िम लोग उन्हीं मुसलमान मियाँ जी के घर खाट लेने को गए। मियाँ ने इस वक़्त देने से इनकार किया, तो उनके साथ सख़्ती का व्यवहार किया गया। परिणाम यह हुआ कि अब उन मियाँ जी के घर खाट की "लाग" सदैव के लिए लद गई। अब इस "खाट की लाग" का अदा करना मियाँ जी के फ़र्ज़ में दाख़िल हो गया। इस तरह प्रजा के किसी अङ्ग ने कभी थोड़ी सी भी सहानुभूति राजा या उसके कर्मचारी के साथ दिखलाई, तो वह सहानुभूति उस व्यक्ति के ऊपर पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए 'लाग' या 'लागत' के रूप में लद गई और हमेशा के लिए फ़र्ज़ में दाख़िल हो गई।

पाठकों को याद होगा कि कई वर्ष पूर्व ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के क़ायम किए हुए "अवर डे" फ़रड (Our Day Fund) के लिए राजपूताने की रियासतों ने भी अपनी प्रजा से लाखों रुपया इकट्ठा किया था। प्रजा ने अपने-अपने राजा के हुक्म की तामील में यथाशक्ति इस फ़ण्ड में लाखों ही रुपया दिया था। यह कोई हमेशा की "लाग" नहीं थी, लेकिन एक रियासत ने तो इस बीसवीं सदी में भी कई वर्षों तक हर साल "अवर डे" की वसूली जारी रक्खी, जो राजस्थान सेवा-सङ्घ के पत्र द्वारा आन्दोलन होने पर कहीं जाकर बन्द हो पाई, वरना "अवर डे" की लाग बेचारी प्रजा पर लग चुकी थी। एक रियासत में एक ब्रिटिश पोलिटिकल अफ़सर रहते थे। वहाँ के राजा केवल सम्मान और आतिथ्य-भाव से हर साल किन्हीं त्योहारों पर 'राज-मन्दिर का प्रसाद' और इत्र वग़ैरह उनके बँगले पर भेज दिया करते थे। जब उनका हेड-ऑफ़िस वहाँ से उठ कर दूसरी रियासत में चला गया, तो उन नरेश ने वह हर साल भेजा जाने वाला प्रसाद और इत्र वहाँ भेजने की ज़रूरत नहीं समझी और न इसकी ज़रूरत ही थी। जब दो-चार वर्षों तक वह प्रसाद और इत्र नहीं पहुँचा तो रियासत को चिट्ठी लिखी गई कि अब प्रसाद वग़ैरह का आना क्यों बन्द कर दिया गया है? राजपूताना के दूषित वातावरण में एक पोलिटिकल अफ़सर को भी अपनी 'लाग' क़ायम रखने का कितना ख़्याल है, यह

पाठकों के समझने की बात है। राजपूताने के राज्यों और ठिकानों में इस क़िस्म की हज़ारों ही 'लाग' या 'लागतें' मौजूद हैं, जो कहीं 'घुड़पड़ी' और कहीं 'कुगल्या टोपी' आदि के जुदा-जुदा नामों से मशहूर हैं। यह इस वक्त मानना पड़ेगा कि चन्द रियासतों ने इसमें सुधार कर दिया है, लेकिन ठिकाने जात में तो यह 'लागें' आज भी उग्र-रूप से प्रचलित हैं। यदि कोई ठिकाना इस रोग से मुक्त हो तो वह स्तुत्य है। यह 'लागें' हैं राजभक्ति का दूसरा पाप।

राजपूताना में बेगार की प्रथा बहुत प्रचलित है। किसी से बिला रज़ामन्दी काम लेने को "बेगार" कहा जाता है। राजा, जागीरदार और उनके कर्मचारी प्रजा से बेगार लेना अपना "हक़" समझते हैं। यह भाव ऊपर बतलाया जा चुका है कि जब राजा और प्रजा में परस्पर सहानुभूति थी तो प्रजा बिना किसी माँग या दबाव के राज्य और राजकर्मचारियों की स्वेच्छापूर्वक ही सेवाएँ किया करती थी। राज का जो काम हज़ारों रुपया ख़र्च करने पर भी नहीं निकल सकता था, वह राजा और प्रजा की परस्पर सहानुभूति के बल पर बिना एक कौड़ी ख़र्च किए एक क्षण भर में हो जाया करता था। आज-कल राजाओं और राजकर्मचारियों के दौरे के समय मोटरों व घोड़े-गाड़ियों के लिए रास्तों को ठीक कराना, डेरा, छोलदारी लगवाना, हाथी-घोड़ा आदि जानवरों के लिए घास काट कर इकट्ठा कराना, डेरों पर पानी मँगवाना, चौका लगवाना, धोतियाँ धुलवाना, जङ्गल से लकड़ी कटवाना, दूध के लिए लोगों की गायों और भैंसों को कैम्प पर बँधवा देना आदि सारे काम आज राजपूताना में बिना कुछ उजरत या मज़दूरी दिए प्रजा से बलपूर्वक कराए जाते हैं और कहीं-कहीं मामूली पेटिया या दो-चार पैसे दे दिए जाते हैं। जब तक दौरा करने वाले राजा या उनके कर्मचारी उस गाँव में अपना कैम्प लगाए रहते हैं, तब तक उस गाँव भर में ख़ासा आतङ्क छाया हुआ रहता है। पचासों आदमियों का घरू धन्धा रोक दिया जाता है। बेगार पर जाने के लिए इनकार करने वाले लोगों को राज के छोटे कर्मचारी लोग जूतों और डण्डों से पीटते हैं, बेतों से चमड़ा फाड़ देते हैं और स्त्रियों के गुप्त स्थानों तक में डण्डे घुसेड़ देते सुने गए हैं। जिस वक्त अपने दरबार के लिए शिकार का हाँका लगता है, उस वक्त कई गाँवों के लोग इकट्ठा कर लिए जाते हैं। कई जगह शेर, चीता आदि जानवरों के हमले से लोगों का मरना तक भी सुना गया है। उनके बाल-बच्चों की परवरिश का कोई प्रबन्ध राज नहीं करता। जब कभी राज का कोई सामान एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया जाता है, तो वह बेगार ही में पहुँचाया जाता है। दौरे में कैम्प पर महाजनों की दूकानें लगती हैं, जिनसे बाज़ार भाव की अपेक्षा बहुत सस्ते भाव पर राज के मुलाज़िम आटा, दाल, घी और मसाला वग़ैरह ख़रीदते हैं। बेचारे दूकानदार लोग, जो क़ीमत उन्हें दी जाती है, बिना किसी चूँ-चपड़ के चुपचाप ले लेते हैं। दौरे के अलावा बेरूँजात में मुक़ामी बेगार भी बहुत है। सरकारी मकानों की लिपाई, पुताई और सराई करना तहसील के पटवारियों व क़ानूनगोयान के काग़ज़ और बिस्तरे एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाना, अफ़-सरों की सरबराही के लिए घास, लकड़ी, पत्तल, दोना, मिट्टी के बर्तन, चूल्हा, सिगरा, खाट, पाटा, माँचड़ा, टिखटी, मेख़ वग़ैरह सामान देना आदि सारा काम प्रजा से बेगार में लिया जाता है। राज के अलावा राज-कर्मचारियों की बेगारें तो असीमित हैं। जो राज के मुलाज़मान बेरूँजात में रहते हैं, वे अपने घर पर मालियों या कुम्हारों से पानी भरवाते हैं, चमारों से गारा-गोबर, लिपाई-पुताई, सराई, घास ढुलाई आदि काम करवाते हैं, नाइयों से चौका-बर्तन करवाते, हजामत बनवाते और रात के वक्त पगचम्पी करवाते हैं। काश्तकारों से अपने जानवरों के लिए पानी मँगवाते हैं। लोगों से पीसना पिसवाते हैं और हरे घास के भारे, छाने कण्डे, लकड़ी, घड़े आदि मँगवाते हैं। ये लोग अपने घरों का जितना भी काम होता है, वह अधिकांश में मुफ़्त या बरायनाम क़ीमत या उजरत देकर कराते हैं। किसी की ताक़त नहीं, जो इस बेगारी ख़िदमत के लिए इनकार करे। ये बेगारें प्रजा के सिर जातिवार बँधी हुई हैं। ज़्यादा बेगार चमारों के सर पर लदी हुई होती है, यहाँ तक कि चमारों की जाति को तो अब राजपूताना में कई जगह "बेगारी" जाति ही कहा जाने लग गया है। चमारों के अलावा कुम्हार, नाई, माली, खाती, भोई आदि जातियों से भी बहुत

बेगार ली जाती है। केवल राजपूत जाति ही एक ऐसी बची हुई है कि जिससे शायद राजपूताने में कहीं भी बेगार नहीं ली जाती हो। मुमकिन है और भी कोई जाति इससे बची हुई हो। हाँ, यह भी होता है कि चमार वग़ैरह अगर ईसाई हो जाते हैं, तो वे भी बेगार से मुस्तसना हो जाते हैं, क्योंकि ईसाइयों से बेगार नहीं ली जाती है।

बेचारी प्रजा, जब राजा और प्रजा में परस्पर सहानुभूति थी, तो केवल राजा ही की नहीं, बल्कि राज के छोटे-छोटे कर्मचारियों तक की अनहोनी ख़िदमत बड़ी प्रेम-भावना और सच्ची राजभक्ति से करती थी, जिसके बदले में वह न कुछ पैसा लेती थी और न कभी पेटिया माँगती थी। लेकिन राजाओं की स्वार्थ-लोलुपता और अधिकारों की बढ़ती हुई प्रथा ने इन तमाम सेवाओं को 'बेगार' के रूप में पलट दिया, जो आज राजपूताना के देशी नरेशों के लिए कलङ्क—घोर कलङ्क—की सूचक प्रथा है। जहाँ तक यह प्रथा राजपूताना में प्रचलित रहेगी, वहाँ तक राजपूताना के नरेशों पर घोर कलङ्क लगा हुआ रहेगा। प्रजा की सेवाएँ वास्तव में अगर सेवाएँ ही रहतीं, तो आज भी बुरी नहीं हो सकतीं, लेकिन जब से इन सेवाओं ने बेगार के रूप में पलटा खाया है तभी से राजा और प्रजा के प्रेम में बड़ा अन्तर आ गया है। या यों कहिए कि जब से राजा और प्रजा के प्रेम में अन्तर आ गया है, तभी से राजभक्ति के आवेश में की जाने वाली तमाम सेवाएँ 'बेगार' बन कर प्रजा के सर पर पाप होकर लद गई हैं। यह बेगार-प्रथा है राजभक्ति का तीसरा पाप।

इसमें किसी को सन्देह नहीं है कि राजपूताना की प्रजा बहुत ही राजभक्त रहती आई है। पाठकों को मालूम हुआ होगा कि स्वेच्छापूर्वक की जाने वाली सेवा और राजभक्ति ने राजपूताने की प्रजा का कितना अनिष्ट कर दिया है। राजपूताने की प्रजा आज अपने पापों का प्रायश्चित जूतों की मार और बेतों के सड़ाके खाकर कर रही है। एक दिन वह था कि लोग अपने नरेश का दौरा जब अपने गाँव या अपनी तहसील में होना सुनते थे, तो उनके दिल उल्लास के मारे खिल उठते थे। आज वह दिन आँखों के सामने मौजूद है कि राजा जी के दौरे की ख़बर पाकर कुछ दिन पहले ही से लोग कई दिनों के लिए गाँव से ग़ायब हो जाते हैं। यह ऐतिहासिक सत्य है कि जब राजा और प्रजा के परस्पर व्यवहार में अन्तर आने लग जाता है या आ जाता है, तो वहाँ घोर राजनीतिक क्रान्ति के चिन्ह दीखने लग जाते हैं। राजपूताना आज राजनीतिक क्रान्ति के मार्ग में होकर गुज़र रहा है। यद्यपि शिक्षा की कमी के कारण इस प्रान्त में क्रान्ति की गति बहुत धीमी है, परन्तु फिर भी यह असम्भव है कि राजपूताना समय के राजनैतिक झोंकों के असर से बच जाय।

हम चाहते हैं कि राजा और प्रजा के बीच पुनः सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार स्थापित हो। प्रजा राजाओं और राज-कर्मचारियों की सेवा "बेगार" के नाम से नहीं, बल्कि स्वेच्छापूर्वक, जैसी ज़रूरत हो, करे। क्योंकि राजा और प्रजा में परस्पर सहानुभूति और प्रेम होने ही से राष्ट्र बलवान और सर्वसुख-सम्पन्न हो सकता है। आशा है राजा लोग भी अपने कर्तव्य-पालन को सीख जायँगे।*

* यह प्रसन्नता की बात है कि आज नौ वर्षों से श्री० कोटा-नरेश ने अपने राज्य से बेगार-प्रथा उठा दी है। अब कोटा राज्य में यदि किसी से सरकारी काम लिया जाता है और सरकारी काम के लिए बाज़ार से कोई चीज़ मँगाई जाती है, तो हिसाब करके एक-एक पाई उसकी मज़दूरी या क़ीमत की अदा की जाती है। राज-कर्मचारी अगर किसी से भी बेगार लेते हैं, तो रियासत के सरक्यूलर के मुताबिक़ उन्हें बरख़्वास्तगी तक की सज़ा दी जाती है। बेगार-प्रथा की रोक से कोटा राज्य के ख़र्च के बजट में लगभग तीस हज़ार रुपया राज को बढ़ाना पड़ा है। यहाँ इस बात का खेद अवश्य है कि कोटा राज्य के ठिकानेधारी जागीरदारों ने अपने यहाँ से अभी बेगार नहीं उठाई है, मालूम होता है कि समय के तक़ाज़े ने अभी उन पर असर नहीं किया है।

—लेखक

बीकानेर के सुप्रसिद्ध सुधारक—सेठ रामगोपाल जी मोहता

सुविख्यात बिड़ला-बन्धुओं के सौभाग्यशाली पिता

राजा बलदेवदास जी बिड़ला

मारवाड़ी-समाज के चार रत्न

१—श्री० घनश्यामदास जी बिड़ला

२—श्री० रामेश्वरदास जी बिड़ला

३—श्री० जुगलकिशोर जी बिड़ला

४—श्री० ब्रजमोहनदास जी बिड़ला

बिड़ला हाई स्कूल, पिलानी

बिड़ला टैङ्क, पिलानी का भीतरी दृश्य

बिड़ला बार्डिङ्ग हाउस, पिलानी

बिड़ला गैस्ट हाउस (अतिथि-गृह), पिलानी

चाँद

रायसाहब हरविलास जी शारदा, एम० एल० ए०

जाग्रत राजस्थान के कतिपय गीत

[श्री० आशासिंह जी]

सन् १९१९ के सत्याग्रह संग्राम के समय राजस्थान के मेवाड़ राज्यान्तर्गत बिजौलिया ठिकाने के शासक और प्रजा के बीच भी गहरा मनोमालिन्य उठ खड़ा हुआ था। शासकों द्वारा लगाए हुए अन्यायपूर्ण करों तथा असह्य अत्याचारों से विक्षुब्ध होकर प्रजा एकबारगी ही विद्रोही हो उठी थी। उसने अन्य-अन्य करों के साथ ही ज़मीन का लगान तक शासकों को देना स्थगित कर दिया था। और यह दुरूह स्थिति दो-तीन वर्ष तक इसी प्रकार बनी रही थी। इस आन्दोलन के पूरे विवरण को यहाँ प्रकाशित करना अप्रासङ्गिक समझ कर, हम यहाँ कुछ ऐसे गीत दे रहे हैं, जिनसे पाठकों को विदित हो जायगा कि उस स्वतन्त्रता-संग्राम में राजपूताना के मूक किसान किस प्रकार निर्भयतापूर्वक अपने स्वत्वों की प्राप्ति के लिए शासकों के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। पहले और दूसरे वे गीत हैं, जिन्हें बिजौलिया के सत्याग्रही कृषक आन्दोलन के समय गाया करते थे। ये गीत इस बात के परिचायक हैं कि बिजौलिया के कृषकों में सत्याग्रह के लिए कैसी श्रद्धा तथा विश्वास था।

तीसरा गीत उस स्थिति की ओर निर्देश करता है, जो बूँदी-राज्य में आज से कोई दस वर्ष पहले उत्पन्न हो गई थी और जिसके दबाने के लिए राज्य ने भालों और बन्दूक़ों तक से काम लिया था। अन्यायपूर्ण करों की अधिकता तथा शासकवर्ग के अत्याचार के कारण ही इन राज्यों तथा ठिकानों में ऐसी विषम स्थिति उत्पन्न हुई थी। राजपूताने में कुछ ऐसी रियासतें भी अवश्य हैं, जहाँ की प्रजा सामान्यतया सुखी है और जहाँ के शासक प्रजा-हित-चिन्तक हैं, परन्तु इस जाग्रति के युग में भी यहाँ ऐसी रियासतों की कमी नहीं, जहाँ दिन-दहाड़े प्रजा की बहू-बेटियों की इज़्ज़त लूटी जाती है और मूक प्रजा पर अत्याचार किया जाता है।

ये गीत हाड़ोती भाषा में हैं, और एक विशेष लय में (जो हाड़ोती प्रान्त और उसके आस-पास बहुत प्रचलित है) गाए जाने पर मृतक में भी जान फूँकने की शक्ति रखते हैं।

(१) पीड़ितों की पञ्छोड़ा

मर्दाओं रे ! काली तो भादूँड़ा री राताँ सोवे छा
तन का कपड़ा भी खोवे छा, हाय पड़्या-पड़्या थें रोवे छा
आँसू सूँ डिलड़ो धोवे छा। मर्दाओं रे० ॥१॥

अर्थात्—हे वीर पुरुषो ! काली-काली भादों महीने की रातों में हम अकेले पड़े रहते थे। शरीर के थोड़े से वस्त्र भी न जाने कहाँ खो जाते थे। हम पड़े-पड़े रोया करते और आँसुओं से अपने शरीर को धोया करते थे।

मर्दाओं रे ! ढाँडा थाने जाण सिपाही कूटे छा
धन माल कमाई लूटे छा, दूजाँ के खूँटे-खूँटे छा
आपस में भाई फूटे छा। मर्दाओं रे० ॥ २ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! राज्य के सिपाही तुम्हें पशु समझ कर निर्दयता से मारते थे, तुम्हारी सम्पत्ति लूटते थे और दूसरों के ज़ोर पर गरजा करते थे। उनके इस अत्याचार के कारण भाई भाई से विश्वासघात कर जाता था।

मर्दाओं रे ! बेगाराँ का जूता माथे लागे छा
थे देख सिपाही भागे छा, बेगारी नाम सूँ बागे छा
पहरा में नित का आगे छा। मर्दाओं रे० ॥ ३ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! जब हमने अपने स्वत्वों के लिए संग्राम आरम्भ नहीं किया था, उस समय सरकार के नौकर बेगार कराने के लिए हमें जूतों से पीट कर ले जाते थे। हम लोग सिपाही को देख कर ही भागते थे, हमें बेगारी नाम से सम्बोधन किया जाता था और काम न करने पर पहरे में रख दिया जाता था।

मर्दाओं रे ! शहणा कोऊ खाट तोड़बो ऊब्यो छै
लोहू को गटको छूट्यो छै, लूण्या को हाँडो फूट्यो छै
यो नार आँक सू खूट्यो छै। मर्दाओं रे० ॥ ४ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! स्वत्त्व-संग्राम के पश्चात् अब राज्य के कर्मचारियों का चारपाइयाँ तोड़ना छूट गया है। अब वह पहिले की तरह हमारा रक्त नहीं पी सकते। मुफ़्त का मक्खन उड़ाना अब स्वप्न हो गया है। हममें अब अपूर्व जाग्रति हो गई है।

मर्दाओं रे ! दड़क-दड़क रुपया को छुन-छुन निठगी छै
कटती बत्तो सब कटगी छै, घोसा और गाड्याँ मिटगी छै
परणा की कीमत घटगी छै। मर्दाओं रे० ॥ ५ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! अब वे तरह-तरह के अन्यायपूर्ण कर उठ गए हैं।

मर्दाओं रे ! दौड़ दौड़ छूट्यो नजराणो देबो
छाने-छाने रिश्वत लेबो, वो "पागल-उल्लू" को कहबो
बलदाँ ज्यूँ रात-दिन बहबो। मर्दाओं रे० ॥ ६ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! अब वो दौड़-दौड़ कर नज़रें करना छूट गया है। सरकारी नौकरों का चुपके-चुपके घूस लेना और हमें पागल और उल्लू नामों से पुकारना बन्द कर देना पड़ा है। अब हमसे पशुओं की भाँति रात-दिन बेगार नहीं ली जाती।

मर्दाओं रे ! एकठ थाँकी देख सभा ने रोके छा
बन्दे की बोली रोके छा, भूठा-भूताँ ने धोके छा
बिन बादल मोरया कोके छा। मर्दाओं रे० ॥ ७ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! राज्य के कर्मचारी तुम्हारी सभा इकट्ठी होने के समाचार पाकर उसे रोक दिया करते थे। 'वन्देमातरम्' कहना दण्डनीय अपराध समझा जाता था। हमें झूठे और पापी मनुष्यों की अभ्यर्थना करनी पड़ती थी। बिना ही बादलों के मोर बोला करते थे।

मर्दाओं रे ! थाँ का बालक हाय कँवारा रहवे छा
पण नून बराँडा देवे छा, घर भूखा रहबो सहवै छा
थे हाय निसासी लेवे छा। मर्दाओं रे० ॥ ८ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! तुम्हारे बालक तो कुँवारे रह जाया करते थे, परन्तु शासकों के ब्याहों में तुम्हें कई-कई नेग देने पड़ते थे। तुम घर पर भूखे ही सो रहते थे और तुम निश्वासें लिया करते थे।

मर्दाओं रे ! हाकम-हाकम करता-करता हार्‌या छा
कूँता में पूरा मार्‌या छा, घर में नहिं बचता खार्‌या छा
सोमल खा मरबो धार्‌याँ छा। मर्दाओं रे० ॥ ९ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! हम हाकिमों से हुज़ूर-हुज़ूर करते थक गए थे, मगर करों से छुटकारा नहीं मिला था। घर में अनाज का भूसा भी नहीं बचता था और हमने संखिया खाकर मरना धार लिया था।

मर्दाओं रे ! सुण कर अरजी एक देवता आयो छै
जीं को पैं तो नहीं पायो छै, बूँटी सत्याग्रह लायो छै
सब लोगों के मन भायो छै। मर्दाओं रे० ॥ १० ॥

अर्थात्—हे वीरो ! हमारा आर्त्तनाद सुन कर एक देवता जिसकी महिमा अपार है, सत्याग्रह की बूटी लेकर आया है। वह हमें अति प्रिय लगता है।

मर्दाओं रे ! देखो आँख्या खोल सूरजो ऊग्यो छै
दूजो काको जो पूग्यो छै, पापीड़ो पड़ग्यौ लूगो छै
यो बीज धरम को ऊग्यो छै। मर्दाओं रे० ॥ ११ ॥

अर्थात्—हे मर्दो, आँखें खोल कर देखो, सूरज उग गया है, अब इन अत्याचारियों से अधिक प्रबल शक्ति उठ खड़ी हुई है। पापी का कलेजा दहल गया है। यह धर्म का बीज उग गया है।

मर्दाओं रे ! काँटा की या बाड़ खेत ने नागी छै
या भूख जवाला लागी छै, लुगायाँ होगी नागी छै
या मौत सामने आगी छै। मर्दाओं रे० ॥ १२ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! काँटों की बाड़ ही खेत को खा गई है अथवा हमारे रक्षकों ने ही हमारा भक्षण करना आरम्भ कर दिया है। भूख की अग्नि लगी हुई है। हमारी स्त्रियाँ तक नङ्गी हो गई हैं। यह मौत सामने आ गई है।

मर्दाओं रे ! चेतो झटपट नहीं तो पापण खाजासी
तैयार रसोई पाजासी, नहीं मिलती टुकड़ो भी बासी
सब डोल डाकणी छाजासी। मर्दाओं रे० ॥ १३ ॥

अर्थात् —हे वीरो ! अब झटपट चेतो, अन्यथा तुम्हारी अकर्मण्यता ही तुम्हें खा जावेगी। तुम्हें खाने को बासी टुकड़े भी न मिलेंगे। यह डायन तुम्हारे सारे शरीर पर अधिकार कर लेगी।

मर्दाओं रे ! थाँकी हिम्मत अन्यायी के खटकै छै
मन अगल-बगल में भटके छै, थाँसूँ घबराया सटकै छै
सतदेख्याँ पाछा अटकै छै, मर्दाओं रे० ॥ १४ ॥

अर्थात् —हे वीरो ! अब तुम्हारी वीरता और साहस अन्यायियों को खटकते हैं। अब वे बगलें झाँकते हैं, तुमसे घबराते हैं और तुम्हारी दृढ़ता देख कर पीछे हट जाते हैं।

मर्दाओं रे ! थाँको सतको काम कालसे साले छै
अब पसली-पसली हाले छै, वे झूठ अड़ङ्गा डाले छै
पण अपणी चालाँ चाले छै। मर्दाओं रे० ॥ १५ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! तुम्हारी दृढ़ता उनके कलेजे में दुखती है; उनकी पसली-पसली हिलने लग गई है, पर अब भी वे झूठे अड़ङ्गे डालने और शरारत करने से बाज़ नहीं आते।

मर्दाओं रे ! वे भी मिल कर एकट करवा लाग्याछै
अब अठीं उठी ने लाग्या छै, राजाँ का रुपया खाग्या छै
भाँडा खाली अब भाग्या छै। मर्दाओं रे० ॥१६॥

अर्थात्—वीरो ! अब वे भी मिल कर ऐक्य करने लगे हैं, परन्तु उनमें से बहुत से राज्य का रुपया खा-खाकर भाग गए हैं और अब अन्यायियों का दिवाला निकल गया है।

मर्दाओं रे ! देखो थाँकी चोटी हाकम पकड़ेगा
कोई हाथ बाँधवे जकड़ेगा, थाने धमकायाँ अकड़ेगा
मजबूती तो पाछा सकड़ेगा। मर्दाओं रे० ॥१७॥

अर्थात्—मर्दो ! तुम्हारे ये कारनामे देख कर राज्य के अधिकारी तुम्हें पकड़ेंगे, तुम्हारे हाथों में हथकड़ियाँ डाल देंगे, तुम्हें धमका-धमका कर अकड़ेंगे और मज़बूती से तुम्हारा पीछा पकड़ेंगे।

मर्दाओं रे ! थाँके ऊपर घटा विपति की आवेगी
काली बादलिया छावैगी, फिर बिजली भी चमकावेगी
आँधी थाने डरवावेगी। मर्दाओं रे० ॥ १८ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! तुम्हारे ऊपर विपत्ति की घटा घहराएगी; अन्याय के काले बादल छावेंगे और अत्याचार की बिजलियाँ चमकेंगी। ज़ुल्म की आँधी भी तुम्हें भयभीत करेगी।

मर्दाओं रे ! रीछ, बादराँ, नार, स्यालसन झूमेगा
काली नागण भी फूँकेगा, फिर चोर डकेती लूटेगा
कपड़ा ले बाने घूमेगा। मर्दाओं रे० ॥ १९ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! अन्यायी शासक तुम्हें रीछ, बन्दर, सिंह, सियार की तरह झूम जाएँगे, काली नागिन की तरह तुम पर फुङ्कार मारेंगे, चोर और डकैतों की तरह तुम्हें लूटेंगे और तुम्हारे कपड़े तक छीन लेने को फिरेंगे।

मर्दाओं रे ! काल कोठड़ी भीतर थाने खड़केगा
बँदूक्या नाली भड़केगा, तोपाँ को जोड़्या धड़केगा।
वे सपना में भी भड़केगा। मर्दाओं रे० ॥ २० ॥

अर्थात्—बहादुरो ! तुम्हें काल-कोठरी में डाल देंगे। तुम्हारे ऊपर तोपों और बन्दूक़ों की ताक़त आज़माएँगे और स्वप्न में भी भड़क पड़ेंगे।

मर्दाओं रे ! हाथ जोड़बो छोड़ आँख राती करदो
ख़ुशामद ने दूरी धर दो, झूठो मत अब पीजो ज़र दो
यो मरद नशो डोला भर दो। मर्दाओं रे० ॥ २१ ॥

अर्थात्—हे वीरो ! अब हाथ जोड़ना छोड़ दो। अत्याचारियों को लाल-लाल आँख दिखा दो; ख़ुशामद को दूर धर दो। मादक वस्तुओं का सेवन छोड़ दो। मर्दानगी का नशा शरीर में भर लो।

मर्दाओं रे! मारे तो मर जाज्यो लागत मत दीज्यो
घणी बणै तो हाँसब मत दीज्यो, बेड़ी को दुख थें पालीज्यो
अन्नदाता, छोड़ दो, मत कीज्यो। मर्दाओं रे० ॥ २२ ॥

अर्थात्—बाँके वीरो ! चाहे तुम्हें मार डालें, पर अन्यायपूर्ण कर मत देना, अधिक अत्याचार करें तो लगान भी देना बन्द कर देना, चाहे पैरों में बेड़ी क्यों न पड़ जायँ । इन अन्यायियों को 'अन्नदाता' नाम से मत पुकारना ।

मर्दाओं रे! करज्यो ललकारी बड़ी अन्त में धूजेगा
खरला भी जीतूँ गूँजेगा। हो रोग अन्यायी सूजेगा
पग थाँका पाछा पूजेगा। मर्दाओं रे० ॥ २३॥

अर्थात्—बहादुरो ! इन्हें ज़ोरों से ललकार देना, ये तो तुम्हारे डर से काँपने लगेंगे। तुम्हारी उस दहाड़ से नदी-नाले भी गूँज जायँगे, अन्यायियों के कीड़े पड़ेंगे।

मर्दाओं रे ! बन्देमातरम् गीत गावज्यो सब टोली
बन्दूकों की टलसी गोली, तलवार मूठ से
हो खोली
पाप्याँ की हो जासी होली। मर्दाओं रे॥ २४ ॥

अर्थात्—वीरो ! सब मिल कर 'वन्देमातरम्' का गीत गाना। इससे बन्दूकों की गोलियाँ भी टल जायँगी और तलवारें बेकाम हो जायँगी। पापियों का नाश हो जायगा ।

मर्दाओं रे ! टूक-टूक कर देय हाक थे मत खाज्यो
दूजाँ के छुरी मत कर वाज्यो, बण पड़े जेल भर
जाज्यो
पण नाक कटा घर मत आज्यो। मर्दाओं रे०॥२५॥

अर्थात्—हे मर्दो ! चाहे कोई तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर दे, पर अन्याय के आगे सिर न झुकाना। विश्वास-घात करके दूसरों पर छुरी मत चलवाना। जेल चले जाना, पर नाक कटा कर घर मत आना।

(२) मान मान मेवाड़ा राणा

मान-मान मेवाड़ा राणा प्रजा पुकारे, रे, राणा
मान रे !
बिजोलिया का दुख की अरज्याँ लिख-लिख रैयत
थाकी रे !
ऊजड़बा में कसर नहीं अब घड़ियाँ बाकी रे।
राणा मान रे !

अर्थात्—हे मेवाड़ के राणा मान जा। तेरी बिजौलिया की प्रजा अपने दुख की अर्ज़ियाँ लिख-लिख कर थक गई है। अब इसके उजड़ने में घड़ियाँ ही बाकी रह गई हैं।

उदयपूर चित्तौड़ बिजौली, नवा पड़ गया गेला रे
सतवादी शीशोद वंश मत पाड़े बेला रे। राणा०

अर्थात्—उदयपुर, चित्तौड़, बिजौली इन सब में अब जाग्रति हो चली है। हे सत्यवादी शीशोदिया कुल-तिलक, अब देर मत करे।

दिल्लीपति आगे ना नमियों, जाको जग यशगावे रे
एक ठिकाना आगे अब क्यूँ शीश झुकावे रे
राणा० ।

अर्थात्—हे वीर राणा ! तुम्हारे वंशजों ने कभी दिल्लीपति के सम्मुख भी सिर नहीं नवाया। अब तुम एक छोटे से ठिकाने से दब कर उस यश में बट्टा क्यों लगाते हो !

रूस जार को पतो न लाग्यो सुण राणा फत-
माल रे !
अब तू सोच विचार आपनो धर्म सँभाल रे
राणा० ।

अर्थात्—हे राणा ! अन्याय के कारण, रूस का ज़ार जैसा बड़ा सम्राट नष्ट हो गया, तू क्या वस्तु है। उन बातों को सोच कर अपना कर्तव्य कर।

दुख सागर में गोता खावे थारी ऊपर माल रे
अन्त समय में साथ न जावे धन और माल रे
राणा० ।

अर्थात्—हे राणा ! तेरी प्रजा दुख-सागर में ग़ोते खाती है और तू अपनी सम्पत्ति के मद में चूर है। याद रख, यह धन और माल साथ नहीं जावेगा।

तू जाणे मूँ बस में करलूँ, ले कर में तलवार रे,
सत्याग्रह के आगे होजासी तू लाचार रे। राणा०।

अर्थात्—हे राणा ! यह न समझना कि हाथ में तलवार लेकर इस प्रजा को बस में कर लोगे। याद रखना, सत्याग्रह-शस्त्र के आगे तुम्हारी तलवार व्यर्थ सिद्ध होगी।

अन्यायी खल दुष्ट मसखरा, ठग-ठग माल
उड़ावे रे।
प्राणाँ सूँ प्यारी परजा को, काढ़-काल ज्यों
खावै रे।

अर्थात्—अन्यायी, दुष्ट और ख़ुशामदी मनुष्य ठग-ठग कर माल उड़ाते हैं और तेरी निरीह प्रजा का रक्त पिए जा रहे हैं। इसलिए हे राणा! इनकी पुकार जल्दी सुन।

मिले न टुकड़ो खाना ने।

(खाने को टुकड़ा भी न मिलेगा)

करसा थाँका अन्नदाता है क्यूँ लाग्या धमकावाने
जो थाँ पासूँ बैर करेगा, मिले न टुकड़ो खावा ने।
पहली म्हाँ समझाया फिर भी माथाँ उठे कुवाबाने
लाग्या छा गोला के चाले अब लाग्या पछतावा ने

अर्थात्—हे अन्यायी राज-कर्मचारियो! कृषक तुम्हें अन्न देने वाले हैं, उन्हें क्यों धमकाते हो? याद रक्खो, यदि इनसे बैर करोगे तो खाने को टुकड़ा भी नहीं मिलेगा। पहले जब समझाया तब नहीं माने और कमीने मनुष्यों की बातों में लग गए। अब क्यों पछताते हो?

रैयत पर बन्दूकाँ छोड़ो, लग्या क़ैद पहुँचावाने
फिर भी वे डरप्यान थाँसू लग्या जेल में जावाने
अकड़्या छा, मूछ्याँ खैंच छी, म्हाने मार मिटावाने
अब तो सत्याग्रह के सामे, लाँबी नाड़ झुकावाने

अर्थात्—हे नृशंसो, तुमने प्रजा पर बन्दूकें चलाई और उन्हें जेल भेजा, मूँछों पर ताव दे-देकर, अकड़-अकड़ कर हमें मारने पर कमर कसी, पर अब सत्याग्रह के सामने तुम्हें सिर झुकाना पड़ा है।

धरती तो परमेसुर की मालिक करसो कहवावाने
अब भी समझ सोच लो मन में छोड़ो अकड़ दिखावाने
थाँ को असली काम सँभालो मिलयाँ जाय ज्यो खावाने
प्रभुदयाल प्रीतो सूँ जोतो, छोड़ो ज़ोर जनावा ने

अर्थात्—धरती तो परमेश्वर की है और कृषक उसके स्वामी हैं। यह बात मन में सोच कर अकड़ दिखाना छोड़ दो। अपनी असलियत पर आ जाओ, जिससे खाने को मिला जाय। प्रजा को प्रेम से जीतने का प्रयत्न करो और ज़ोर जताना छोड़ दो।

(३) पुराने ठाकुर साहिब की टर्र

यह गीत के रूप में एक प्रहसन है। जाग्रत राजस्थान के कृषक इसको गा-गाकर अब अपने उन अन्नदाताओं को चिढ़ाते हैं, जो कुछ समय पहले उन्हें मनुष्य भी नहीं समझते थे और उनके साथ पशुतापूर्ण व्यवहार करते थे।

अब तो कैवे गाल्याँ मत दो, पैल्याँ जरबा खातो
देख भापड़ो वै दिन भूल्यो, भूखाँ मरमर जातो
दारू-मांस छोड़ दो खाबो म्हाँने सीख सिखावे
काल-परयूँ का छोरा-छोरी म्हाँने बात बतावे

पुराने ठाकुर साहब कहते हैं—अब तो कहता है, गालियाँ मत दो और पहले हमारे जूते खाया करता था। शायद वे दिन भूल गया है, जबकि हमारे बिना भूखों मर जाता। कल-परसों का लौंडा हमें शिक्षा देने चला है और शराब, कबाब छोड़ने को कहता है।

अब तो बख़्श्या लत्ता नलै दाँ कीमत अनमोल्या
छाँटी पहर अकड़वा लाग्या देखो फूला गोल्या
खमा हुकुम अनदाता छोड़्या तिरछा हो बतलावे
देखो गोलो गाँधी जी का म्हाँने हुकुम सुनावे।

अर्थात्—अब तो हमारे बख़्शे हुए कपड़े नहीं लेता। जानता नहीं, इन कपड़ों में सैकड़ों रुपए ख़र्च हुए हैं, खादी पहन के अकड़ गया है। "खमा हुकुम अनदाता" का सम्बोधन छोड़ दिया है और हमें गाँधी जी का हुकुम सुनाता है

बेगाराँ का लेबो छोड़ो मत छेड़ो करसाँ ने
खाय टुकड़ा म्हाँ का ऐंठ्या फिर समझावे म्हाँने
क्यों रे बाँदा बैठ रावले, गाँधी गीत सुनावे
म्हाँ के सामे वाँ की जै-जै बोले लाज न आवे।

अर्थात्—कहता है, बेगार में काम कराना छोड़ो और कृषकों को मत छेड़ो। हमारे ही टुकड़े खाकर ऐंठता है और हमें समझाने चला है। क्यों बे कमीने! हमारे गढ़ के दरवाज़े बैठ कर गाँधी जी के गीत गाता है और उनकी जय बोलता है, तुझे लज्जा नहीं आती।

(शेष मैटर ११९वें पृष्ठ के पहले कॉलम के नीचे देखिए)

राजपूत

[श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

शाम के पाँच बच चुके थे। राजपूताने की भूमि दिन भर तपने के पश्चात् क्रमशः ठण्ढी हो रही थी। इसी समय एक धूल-धूसरित अश्वारोही एक गाँव में प्रविष्ट हुआ। अश्वारोही अभी नवयुवक था। वयस लगभग २३-२४ वर्ष की होगी। गौरवर्ण, नेत्र बड़े-बड़े तथा रक्तवर्ण। मुख पर छोटी परन्तु घनी दाढ़ी, जो इस समय धूल भर जाने से कुछ भूरी दिखाई पड़ रही थी, छोटी मूँछें, शरीर पुष्ट तथा बलवान, सिर पर बहुरङ्ग चुस्त साफ़ा बँधा था। शरीर पर राजस्थानी ढङ्ग का अँगरखा और उसके नीचे पाजामा। पैरों में देशी जूता। बाईं ओर तलवार लटक रही थी। सामने कमर में एक कटार लगी हुई थी और पीठ पर एक छोटा-सा भाला कसा हुआ था।

अश्वारोही गाँव की गलियों में से होता हुआ एक मकान के द्वार पर पहुँचा। इस मकान के द्वार पर चौपाल और एक चबूतरा था। चबूतरे पर दो चार-पाइयाँ पड़ी हुई थीं और उन पर चार आदमी बैठे थे। सामने एक बड़ा हुक्क़ा रक्खा हुआ था। अश्वारोही को देखते ही वे चारों इस प्रकार खड़े हो गए मानो उसके आने की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। एक प्रौढ़ व्यक्ति ने मुस्करा कर अश्वारोही से कहा—"आ गए?"

अश्वारोही ने पहले उस व्यक्ति को प्रणाम किया, तत्पश्चात् घोड़े से उतरा। एक व्यक्ति ने लपक कर घोड़े की लगाम थाम ली। वह व्यक्ति ज्योंही घोड़े से उतरा, त्योंही उस व्यक्ति ने, जिसे अश्वारोही ने प्रणाम किया था, उसे छाती से लगाया और पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा—"रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ, बेटा?"

नवयुवक ने शिष्टतापूर्वक उत्तर दिया—"जी नहीं, कष्ट काहे का!"

"अकेले ही चले आए, किसी को साथ न ले लिया!"

नवयुवक ने मुस्कराकर कहा—"साथ की क्या आवश्यकता थी?"

"रास्ते में कोई खटका-वटका हो, इसलिए किसी को साथ ले लेना चाहिए था।"

नवयुवक उसी प्रकार मुस्कराते हुए बोला—खटका किस बात का! और हो भी तो मैं क्या कुछ कमज़ोर हूँ?

प्रौढ़ वयस्क व्यक्ति ने स्नेह-भरी दृष्टि से नवयुवक को देखते हुए कहा—"सो तो ठीक है, परन्तु फिर भी एक से दो अच्छे होते हैं। ख़ैर, चलो, कपड़े उतारो, दिन भर के थके हो। घर से कब चले थे?"

"सवेरे मुँह अँधेरे चल दिया था!"

"दोपहर को कहीं ठहरे होगे?"

"हाँ, एक गाँव में ठहर कर पानी-वानी पिया था।"

चारपाई के पास पहुँच कर नवयुवक ने पीठ पर का भाला खोल कर एक किनारे रख दिया, तत्पश्चात् तलवार खोल कर चौपाल की खूँटी पर टाँग दी, और साफ़ा उतार कर चारपाई पर रख दिया। इसके पश्चात् अँगरखा भी उतार दिया और चारपाई पर बैठ गया। प्रौढ़ वयस्क पङ्खा झलने लगा। नवयुवक बोला—"आप रहने दीजिए, मुझे दीजिए !"

प्रौढ़ वयस्क ने कहा—"तो क्या हर्ज है !"

नवयुवक ने उसके हाथ से पङ्खा छीन लिया और स्वयम् अपने हाथ से झलने लगा।

प्रौढ़ वयस्क ने पुकारा—"अचल ! ओ अचल !" घर के भीतर से एक सत्रह-अठारह वर्ष का लड़का निकल कर बोला—"क्या है काका जी ?"

प्रौढ़ वयस्क बोला—"देख, तेरे जीजा जी आए हैं। इनके लिए हाथ-मुँह धोने को पानी-वानी तो ला।"

लड़के ने युवक को प्रणाम किया और मुस्करा कर बोला—"कब आए, जीजा जी ?"

युवक बोला—"अभी चला आ रहा हूँ।"

"हमने तो कल बड़ी बाट देखी।"—लड़के ने कहा।

"हाँ, कल नहीं आ सका।"

"कुछ काम लग गया था क्या ?"

"हाँ, काम ही लग गया था।"

लड़के का काका बोला—"अरे इन व्यर्थ की बातों में क्या धरा है। जा, पानी ला जाकर।"

"अभी लाया।" कह कर लड़का मकान के भीतर चला गया।

× × ×

उपरोक्त घटना के तीसरे दिन प्रातःकाल उसी मकान के द्वार पर कुछ आदमी तथा दो घोड़े खड़े हुए थे। घोड़े सफ़र के लिए तैयार थे। हमारा परिचित युवक भी यात्रा के लिए तैयार खड़ा था। इसी समय घर के भीतर से एक नवयुवती, जो घूँघट निकाले हुए थी, सिसकती हुई निकली। उनके पीछे तीन-चार स्त्रियाँ थीं। स्त्रियाँ युवक के घोड़े के समीप पहुँचीं। एक व्यक्ति ने घोड़े की लगाम पकड़ ली। स्त्रियों ने सहारा देकर नवयुवती को घोड़े पर बिठा दिया। युवक ने काका जी को प्रणाम किया और तत्पश्चात् स्त्रियों को प्रणाम किया। एक स्त्री बोली—"देखो बेटा, ख़बरदारी से जाना !"

युवक हँस पड़ा और बोला—"आप बेफ़िकर रहिए !"

काका जी ने भी सावधान रहने के लिए कहा। युवक उछल कर उसी घोड़े पर नवयुवती के आगे बैठ गया। दूसरे घोड़े पर एक अन्य व्यक्ति बैठा। इस व्यक्ति से काका जी बोले—"इन्हें घर पहुँचा के तू कल लौट आना !"

वह व्यक्ति बोला—"हाँ, कल आ जाऊँगा, ज्यादा ठहरने का काम क्या है।"

इधर स्त्रियों ने मङ्गल-गान गाना आरम्भ किया। काका जी ने आशीर्वाद दिया। युवक ने घोड़े को एड़ लगाई। घोड़ा तेज़ी के साथ चल दिया, पीछे-पीछे दूसरा घोड़ा भी चला।

२

दोपहर तक ये दोनों बराबर चलते ही रहे। दोपहर होने के पश्चात् साथ का आदमी बोला—"भाई चन्द्रभानसिंह, मेरी समझ में तो अब कहीं ठहर कर कुछ खाने-पीने का डौल होना चाहिए। भूख बड़े ज़ोर से लगी है।"

(११७वें पृष्ठ का शेषांश)

म्हाँ तो कहाँ छाँ जावा दोरे कुणयाँ के मुँह लागे
आजा वाँगा रजपूती पर छोड़ रावलो भागे

अर्थात्—हम तो कहते हैं कि जाने दो, इनके मुँह कौन लगे। अगर अपनी जैसी पर आ जावेंगे तो अभी रावला छोड़ कर भगेगा।

वर्तमान राजस्थान के इन गानों के कुछ नमूने हैं, जिनसे राजपूताना में होने वाली वर्तमान जाग्रति का तथा स्वातन्त्र्य-भावना का पूरा-पूरा परिचय मिलता है। अब राजपूताने के कृषक वैसे अन्धे कबूतर नहीं हैं, जैसे वे आज से २९ वर्ष पहिले थे। वे भी वर्तमान युग की बढ़ती हुई क्रान्ति से अछूते नहीं हैं और अन्याय के आगे सिर झुकाना पाप समझते हैं।

❀ ❀ ❀

चन्द्रभानसिंह ने कहा—यह सामने गाँव है। इसी में ठहरें।

"गाँव के बाहर कोई कुआँ-उवाँ तो हो हीगा।"

"हाँ है, कुँआ है, छाया है। घण्टे आध घण्टे आराम भी कर सकते हो।"

इसी प्रकार की बातें करते हुए दोनों व्यक्ति उक्त स्थान पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर दोनों व्यक्ति घोड़ों से उतरे—युवती को भी उतार कर एक ओर बिठाया। इसके पश्चात हाथ-मुँह धोकर तीनों व्यक्तियों ने साथ में जो भोजन-सामग्री थी, उसका भोग लगाया। भोजन करने के पश्चात् चन्द्रभानसिंह ने साथी से पूछा—"क्यों भाई, क्या इरादे हैं, चलोगे या थोड़ी देर आराम करोगे?"

"जैसी तुम्हारी इच्छा हो!"

"जैसा कहो!"

"थोड़ी देर आराम कर लो। घोड़े पर बैठे-बैठे कमर रह गई। ख़ैर, हमारा तो कुछ नहीं, लड़की को कष्ट हुआ होगा।"

"इसीलिए तो कहता हूँ, थोड़ी देर यहीं विश्राम करलें, फिर चलें।"

"बहुत ठीक!"

वहीं पर एक दरी बिछा दी गई और युवती को लिटा दिया गया। चन्द्रभानसिंह और उसका साथी बैठ कर बातें करने लगे।

इसी समय कुँए पर एक व्यक्ति पानी भरने आया। उसने इन लोगों को देख कर पूछा—"कहाँ के रहने वाले हो?"

चन्द्रभानसिंह ने एक गाँव का नाम बताया। वह व्यक्ति बोला—"आज ठिकाने के सरदार शिकार खेलने आए हुए हैं, अभी-अभी यहाँ से गए हैं।"

चन्द्रभानसिंह लापरवाही से बोला—"आए होंगे।"

वह व्यक्ति कहने लगा—"जिस दिन आ जाते हैं हम लोगों को तो त्रास हो जाता है।"

"क्यों? क्या अच्छे आदमी नहीं हैं?"

"कौन सा सरदार अच्छा है? जब राजा तक अच्छे नहीं हैं, तब सरदार कहाँ से अच्छे होंगे। जिस गाँव में जायँगे, नज़र-बेगार लेंगे, बहू-बेटियों को ताकेंगे, नुक़सान कर जायँगे। बस यही इन लोगों के काम हैं। भगवान बचावे इनसे।"

"तुम लोग कुछ नहीं बोलते?"

"बोलें तो मारे-पीटे जायँ! राजा के पास फ़रियाद ले जायँ तो वह भी नहीं सुनते। क्या करें, सब सहना पड़ता है।"

"इस गाँव में राजपूत रहते हैं?"—चन्द्रभानसिंह ने पूछा।

"सभी रहते हैं, राजपूत भी रहते हैं, और लोग भी रहते हैं, पर करें क्या?"

"राजपूतों के ख़ून में अब गर्मी नहीं रही।"—चन्द्रभानसिंह बोला।

"गर्मी हो भी तो कर क्या सकते हैं, अपने प्राण भले गवाँ दें।"

"अपने प्राण गवाँने पर जो कमर बाँध सकता है, वह दूसरों के प्राण भी ले सकता है। सारी बात तो यही है कि अब राजपूत मौत से डरने लगे। इसीसे यह सब देखना पड़ता है।"

अन्तिम वाक्य कहते हुए चन्द्रभान ने अपने साथी की ओर देखा। साथी सिर हिलाते हुए बोला—"ठीक बात है!"

उस व्यक्ति ने कुँए में बर्तन डालते हुए कहा—"ऐसा कौन है, जो मरने से नहीं डरता?"

"मरने से वैसे तो सभी डरते हैं, परन्तु असली बात यह है कि जब मौक़े पर न डरे, जब जान-माल या आबरू पर आ बने तब मरने से न डरे—यही सारी बात है, क्यों भाई उजागरसिंह?"

चन्द्रभान का साथी उजागरसिंह बोला—"यही बात है, भैया! मौक़े पर आदमी को जान का मोह नहीं करना चाहिए।"

वह व्यक्ति रस्सी खींचता हुआ बोला—"हमने तो कोई ऐसा देखा नहीं।"

"देखो कहाँ से, मैं तो पहले ही कह चुका कि राजपूतों का ख़ून ठण्डा हो चुका है। यही कारण है कि सड़े से सड़े सरदार आकर सब कार्य कर जाते हैं। पहले किसी राजा-महाराजा की तो हिम्मत पड़ती ही न थी, सरदार बेचारे तो किसी गिनती में थे ही नहीं।"

वह व्यक्ति जल का पात्र कुएँ से निकालते हुए बोला—"पहले की बातें जाने दो, पहले सरदार भी इतने अन्यायी नहीं होते थे।"

"इसीलिए नहीं होते थे कि उन्हें भय रहता था कि अत्याचार करेंगे तो ख़तम कर दिए जावेंगे। "बिन भय होत न प्रीति!"

यह कह कर चन्द्रभानसिंह हँस पड़ा। उजागरसिंह भी हँसते हुए बोला—"यही बात है!"

वह व्यक्ति जल का पात्र लेकर चलते हुए बोला—"ज़रा होशियारी से जाना, वे लोग इधर ही कहीं होंगे।"

"होंगे तो हुआ करें, हमारा क्या बना लेंगे!"

इस बात का उत्तर उस व्यक्ति ने कुछ नहीं दिया और जल लेकर चला गया।

इधर ये लोग थोड़ी देर तक इसी सम्बन्ध की बातचीत करते रहे, तत्पश्चात् पूर्ववत् घोड़ों पर सवार होकर चले।

३

तीन बजे तक ये लोग बराबर चलते रहे। तीन बजे के पश्चात युवती ने लघु-शङ्का से निवृत्त होने की इच्छा प्रकट की। अतएव एक वृक्ष के नीचे घोड़े रोके गए। चन्द्रभानसिंह ने युवती को घोड़े से उतारा और एक तरफ़ बतला कर कहा—"इधर झाड़ियों की आड़ में चली जाओ।"

युवती उधर चली गई। ये दोनों उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

युवती लौट ही रही थी कि सड़क की दक्षिण दिशा से दस-बारह अश्वारोही आते हुए दिखाई पड़े। उजागरसिंह ने चन्द्रभानसिंह से कहा—"यह देखो कौन आ रहे हैं। जान पड़ता है, वही सरदार है।"

चन्द्रभानसिंह ने उस ओर देख कर कहा—"हाँ, मालूम तो वही होते हैं।" यह कह कर वह युवती से बोला—"आओ ज़ल्दी, देर होती है।"

युवती लपक कर चली। उसी समय उसके घाघरे में काँटे उलझ गए। वह खड़ी होकर काँटे छुड़ाने लगी। काँटे छुड़ा कर घोड़े के समीप आई। चन्द्रभान ने उसे घोड़े पर सवार कराया और स्वयं भी उछल कर बैठ गया। इसके पश्चात् वह दो क़दम चला ही था कि अश्वारोहियों ने आकर घेर लिया। दोनों घोड़े रुक गए। एक व्यक्ति ने, जो अङ्गरेज़ी ढङ्ग की शिकारी पोशाक पहने था, चन्द्रभान से पूछा—"तुम लोग कौन हो?"

चन्द्रभानसिंह ने अपना और अपने साथी का परिचय दिया। उसने पुनः प्रश्न किया—"कहाँ से आते हो?"

चन्द्रभानसिंह ने बताया।

"यह औरत कौन है?"

"यह मेरी जोरू है, ससुराल से बिदा कराए ला रहा हूँ।"

"हमें कैसे विश्वास हो?"

चन्द्रभानसिंह का मुख तमतमा गया। उसने कहा—"विश्वास हो या न हो, इससे हमें क्या मतलब?"

वह व्यक्ति बोला—"अच्छा यह बात है?"

यह कह कर उसने अपना घोड़ा चन्द्रभान के घोड़े से मिला कर युवती से पूछा—"क्या यह तेरा पति है?"

युवती ने कोई उत्तर न दिया। उस व्यक्ति ने पुनः प्रश्न किया। युवती पुनः मौन रही। इस बार उस व्यक्ति ने हाथ बढ़ा कर युवती का घूँघट उलट दिया। घूँघट का उलटना था कि ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेघ में से चन्द्रमा निकल आया। वह व्यक्ति अवाक् होकर रह गया। युवती ने झटपट घूँघट सुधार कर कहा—"हाँ, यह मेरे पति हैं।"

इधर उस व्यक्ति की यह बेहूदा हरकत देख कर चन्द्रभानसिंह ने तुरन्त तलवार पर हाथ डाला। परन्तु उसी समय एक दूसरे व्यक्ति ने भाले की नोक चन्द्रभान-

ग्राहकों, लेखकों तथा पाठकों से—प्रार्थना है कि

वे हमारे नए स्तम्भ 'बातचीत' तथा 'पुरस्कार-प्रतियोगिता' नियमों को कृपया ध्यानपूर्वक पढ़ लें।

—सम्पादक 'चाँद'

सिंह के सीने पर रख दी और कड़क कर कहा—"बस ! ख़बरदार।"

चन्द्रभानसिंह ने तलवार हाथ से छोड़ कर कहा—"आख़िर आप लोग हैं कौन, जो मुसाफ़िरों को इस प्रकार तङ्ग करते हैं ?"

एक व्यक्ति बोला—"यह ठिकाने के सर्दार श्रीमान् त्रिभुवनसिंह हैं।"

चन्द्रभानसिंह बोला—"सर्दारों को अपनी प्रजा पर ऐसा अत्याचार नहीं करना चाहिए।"

त्रिभुवनसिंह ने कहा—"अच्छा ! पूछ-ताछ करना भी अत्याचार हो गया !"

चन्द्रभानसिंह बोला—"आपने एक भले घर की स्त्री का घूँघट इस प्रकार उलट दिया, यह अत्याचार नहीं, तो क्या है ? यह काम सर्दारों का नहीं, बटमारों का है।"

सर्दार ने कहा—"अपनी प्रजा की बटमारों से रक्षा करने के लिए ही हम इतनी जाँच करते हैं।"

"परन्तु जाँच करने के पहले आपको भले आदमियों और बटमारों की पहचान कर लेना चाहिए।"

एक दूसरा व्यक्ति बोला—"क्या किसी के माथे पर लिखा रहता है ? चला वहाँ से बड़ा भला आदमी बन कर। तुम्हारे जैसे आदमी ही बटमारी करते हैं।"

चन्द्रभानसिंह ने निर्भीकता से उत्तर दिया—"परन्तु इस समय तो मैं नहीं, आप बटमारी कर रहे हैं।"

"अच्छा, बस चुप रहो, नहीं तो ठीक कर दिए जाओगे।"

"बड़े वीर हो, क्या कहना है। अकेले होकर ऐसी बातें करते तो वीरता समझी जाती। फ़ौज-फाटे के साथ तो सभी वीर हो जाते हैं।"

सर्दार, जो बारम्बार युवती की ओर देख कर कुछ सोच रहा था, यह कथोपकथन सुन कर बोला—"ख़ैर इस तू-तू मैं-मैं से कोई फ़ायदा नहीं। इन दोनों आदमियों को हिरासत में ले चलो। वहाँ पहुँच कर इनकी जाँच की जायगी। यदि यह भले आदमी प्रमाणित हुए तो छोड़ दिए जायँगे—अन्यथा सज़ा दी जायगी।"

चन्द्रभानसिंह बोला—"परन्तु हिरासत में लेने का कारण क्या है, अन्नदाता ? मैंने कौन सा अपराध किया है ?"

"कारण यही कि हमें तुम पर सन्देह होता है।"—सर्दार ने कहा।

"किस बात का सन्देह होता है ?"

"इस बात का सन्देह होता है कि तुम कोई डाकू या लुटेरे हो।"

"तो यह सन्देह तो बहुत सरलता से दूर हो सकता है। मेरा गाँव यहाँ से सात-आठ कोस की दूरी पर है। वहाँ चल कर जाँच कर लीजिए।"

"हमें इतनी फ़ुर्सत नहीं। अपनी गढ़ी में पहुँच कर जाँच करेंगे। इन्हें हिरासत में लो—जल्दी करो !"

सर्दार का यह वाक्य सुनते ही दो आदमियों ने चन्द्रभानसिंह तथा उजागर के हथियार खुलवा कर अपने अधिकार में किए। तत्पश्चात् एक ने चन्द्रभानसिंह के घोड़े की लगाम थामी तथा दूसरे ने उजागरसिंह के घोड़े की, तत्पश्चात् दोनों को बीच में लेकर सब लोग एक ओर चल दिए।

४

चन्द्रभानसिंह तथा उजागरसिंह को गढ़ी के कारागार में पड़े हुए एक सप्ताह बीत गया। चन्द्रभान तथा उजागरसिंह एक ही कोठरी में बन्द थे। प्रातःकाल का समय था। चन्द्रभानसिंह रात भर जागने के पश्चात् तीन बजे के लगभग एक घण्टे भर को सोया था और पुनः चार बजे के पश्चात् जाग पड़ा। उसकी दशा एक पागल के समान हो रही थी। सिर के बाल बिखरे हुए—आँखें उबली हुई तथा रक्त के समान लाल हो रही थीं। उसने उजागरसिंह से कहा—"आज सात दिन होने आए, अभी तक हम लोगों की पेशी नहीं हुई।"

उजागरसिंह दुःखपूर्ण स्वर में बोला—"भइया, भगवान ही इस मुसीबत से छुड़ावें तो छुड़ावें, अन्यथा और कोई उपाय नहीं। यह अङ्गरेज़ी इलाक़ा नहीं है, जो जल्दी सुनवाई हो—यहाँ तो लोग बरसों जेल में पड़े सड़ा करते हैं।"

"पता नहीं, हमारे घर वालों की क्या दशा होगी ?"

"और तुम्हारी ससुराल में भी तो हाहाकार मचा

होगा। दूसरे दिन मेरे लौट जाने की बात थी—आज सात दिन हो गए।"

"वे लोग तो कुछ न कुछ जतन कर ही रहे होंगे।"

"पता लगेगा तब तो करेंगे। जब पता ही न लगेगा कि कहाँ गए, कौन ले गया, तो जतन क्या करेंगे? और पता भी लग जाय तब भी बड़ा कठिन है। बड़ा अन्धेर है, भाई! भगवान ही मालिक हैं। उन्हीं का ध्यान करो। लड़की का कुछ भी पता नहीं, कहाँ रक्खा, क्या किया। भगवान उसकी आबरू बचावे।"

चन्द्रभानसिंह उत्तेजित होकर बोला—"यदि उसकी जान या आबरू पर सर्दार ने हाथ डाला तब तो मैं उसे क्षमा नहीं करूँगा। यदि मैं जीवित रहा तो एक न एक दिन इसका बदला उसे अवश्य चखाऊँगा। यदि ऐसा न करूँ, तो राजपूत के पेशाब से पैदा नहीं।"

"पहले यहाँ से तो छुटकारा मिले। बिना यहाँ से छूटे क्या कर सकोगे?"

"कभी न कभी तो मिलेगा ही।"

इसी समय कोठरी का द्वार खुलने का शब्द सुनाई पड़ा। चन्द्रभानसिंह धीरे से उजागर से बोला—"आज इस पहरेदार से कुछ पूछना चाहिए।"

इसी समय द्वार खुला और पहरेदार भीतर आया। उसके कुछ बोलने के पहले ही चन्द्रभान ने उससे पूछा—क्यों भइया, हमारा कुछ न्याय-वाय भी होगा, या योंही पड़े सड़ा करेंगे?"

"अब यह हम क्या जानें। यह तो राजदरबार के आदमी बता सकते हैं, हम तो पहरेदार हैं।"

"बड़ा अन्धेर है! भले आदमियों को बन्द कर रक्खा है। कोई क़सूर नहीं—कोई अपराध नहीं। हमारी औरत का भी पता नहीं।"

"क्या तुम्हारे साथ कोई औरत भी थी?"—पहरेदार ने पूछा।

"हाँ, मेरी औरत थी।"

"उमर क्या है?"

"यही कोई सत्रह-अठारह बरस की है।"

पहरेदार ने मुस्करा कर कहा—"तब ठीक है।"

"क्या ठीक है?"—चन्द्रभान ने पूछा।

"ठीक यही है कि, तुम्हारा क़सूर-वसूर कुछ नहीं। सर्दार ने इस बहाने से तुम्हारी औरत हथिया ली। अब उसके मिलने की आशा छोड़ दो—अपनी जान की ख़ैर मनाओ। वह तो इस समय महलों का सुख भोग रही होगी। तुम्हारी तो उसे याद भी न आती होगी।"

चन्द्रभानसिंह एकदम उठ कर खड़ा हो गया और दाँत पीस कर बोला—"नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। वह राजपूत की लड़की है, ऐसा कभी न करेगी।"

पहरेदार अट्टहास करके बोला—"अरे भाई, बस रहने दो। हमारी यही देखते-देखते उमर बीत गई। बड़े-बड़े राजपूतों और क्षत्रियों की लड़कियाँ हज़म हो गईं। इन बातों में क्या धरा है? जो औरत महल के अन्दर पहुँच गई, वह फिर बाहर नहीं आई।"

"परन्तु इस बार........."—इतना कह कर चन्द्रभानसिंह रुक गया। जो बात वह कहना चाहता था, उसे कहना उचित न समझा।

पहरेदार बोला—"अच्छा, तो चलो पाख़ाना-पेशाब कर लो।"

दोनों अपने-अपने पैरों की बेड़ियाँ सँभाल कर उठे और पहरेदार के साथ शौचादि के लिए चले गए।

शौचादि से निवृत होने के पश्चात् जब पहरेदार उन्हें पुनः कोठरी में बन्द करने आया तो चन्द्रभानसिंह उससे बोला—"तुम्हारी बात हमें कुछ ठीक मालूम होती है। अब हमारी औरत मिलना बड़ा कठिन है। वह स्वयम् ही हमारे पास आना पसन्द नहीं करेगी। महलों का सुख छोड़ कर झोपड़े में जाना कौन पसन्द करेगा? परन्तु हमें व्यर्थ में बन्द कर रक्खा है। यदि सर्दार साहब चाहें तो हमें फ़ारख़ती (फ़ारिग़ख़ती) लिख दें। वह भी बेखटके हो जावें, हमारे प्राण भी बचें।"

पहरेदार बोला—"हाँ इस तरह तो तुम छूट सकते हो। इस प्रकार तो कई आदमी मेरे सामने छोड़ दिए गए हैं।"

"तो भइया, इतनी दया करो कि हमारा यह सन्देसा सर्दार साहब तक पहुँचा दो।"

"अच्छी बात है। हम कोशिश करेंगे।"

"अगर इतना कर दो तो जन्मभर एहसान मानेंगे।"

"नहीं, एहसान की कोई बात नहीं। ऐसी बातों की इत्तला पहुँचाने का तो हमें सरदार की ओर से हुक्म भी है।"

"तो बस ठीक है। अरे और क्या, छूट कर घर

जायँ ! औरत सुसरी एक नहीं, पचास मिल जायँगी। जान है तो जहान है।"

"ठीक कहते हो—समझदारी की यही बात है।"—इतना कह कर पहरेदार कोठरी बन्द करके चला गया।

५

उपरोक्त घटना के चौथे दिन एक कर्मचारी एक काग़ज़ और क़लम-दावात लेकर कोठरी में प्रविष्ट हुआ। चन्द्रभानसिंह उसे देखते ही उठ खड़ा हुआ और उसने बड़ी शिष्टतापूर्वक उन्हें सलाम किया। कर्मचारी काग़ज़ सामने करके बोला—"इस पर दस्तख़त कर दो।"

चन्द्रभानसिंह ने पूछा—"यह क्या है?"

"वही फ़ारख़ती है। तुमने कहलाया था कि तुम फ़ारख़ती लिखने को तैयार हो?"

"हाँ, कहलाया तो था।"—चन्द्रभानसिंह ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

"तो बस वही है।"

"फ़ारख़ती तो मैं लिखने को तैयार हूँ। परन्तु सरदार साहब के सामने लिखूँगा। मुझे क्या पता कि सरदार साहब लिखवा रहे हैं या कौन लिखवा रहा है। उनके बहाने से कोई दूसरा लिखवा ले तब?"

"ऐसा साहस कौन कर सकता है?"—कर्मचारी ने दाँतों तले जीभ दाब कर कहा।

"परन्तु मुझे कैसे सन्तोष हो?"

"मैं जो कह रहा हूँ।"

"मैं क्या जानूँ आप कौन हैं।"

"ख़ैर, जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं यह बात कह दूँगा, आगे सरकार की मर्ज़ी।"

"हाँ, आप कह दीजिएगा। उनके सामने मैं तुरन्त दस्तख़त कर दूँगा।"

"अच्छी बात है"—कह कर कर्मचारी चला गया। दो घण्टे पश्चात् वह पुनः लौटा और बोला—चलो, सरकार ने बुलाया है।

"ये बेड़ियाँ तो कटवाइए।"

"बेड़ियाँ तो दस्तख़त हो जाने के बाद कटेंगी।"

"चलने में कष्ट होता है और कुछ नहीं—अच्छा चलिए।"

दोनों व्यक्ति कर्मचारी सहित चार पहरेदारों के बीच में चले।

एक सजे हुए कमरे में सरदार साहब विराजमान थे। दोनों व्यक्ति उनके सामने पेश किए गए।

सरदार साहब मुस्करा कर बोले—"अरे भई, दस्तख़त मैं ही करवा रहा हूँ—तुम्हें सन्देह क्यों हुआ। बिना मेरी आज्ञा के किसकी मजाल है जो ऐसा कर सके।"

"यह तो ठीक है अन्नदाता, परन्तु मुझे सन्तोष न होता।"—चन्द्रभान ने बड़ी दीनतापूर्वक कहा।

"ख़ैर, अब तो सन्तोष है?"

"हाँ, अब क्यों न होगा। लाइए मैं दस्तख़त कर दूँ।"—कर्मचारी ने काग़ज़ और क़लम चन्द्रभान की ओर बढ़ाया।

चन्द्रभान हाथ में क़लम लेकर बोला—"परन्तु दस्तख़त करने के पहले एक बात मैं आपसे कहना चाहता हूँ।"

"वह क्या?"—सरदार ने पूछा।

"वह मेरी स्त्री के सम्बन्ध में है। जब मैं उसे आप को सौंप रहा हूँ तो मेरा यह धर्म है कि उसके गुण-अवगुण भी आपको बता दूँ।"

सरदार साहब घबड़ा कर बोले—"हाँ-हाँ, यह तो अवश्य होना चाहिए, बोलो!"

"तो कृपा करके एकान्त करा दीजिए, सबके सामने कहना ठीक नहीं।"

सरदार साहब ने इशारा किया। सब लोग वहाँ से हट गए। उजागरसिंह भी बाहर कर दिया गया। चलते समय चन्द्रभानसिंह ने उजागर को और उजागर ने चन्द्रभान को विषादपूर्ण दृष्टि से देखा। नेत्रों से ही दोनों ने परस्पर अपने मन के भाव प्रकट कर दिए। सबके बाहर चले जाने पर सर्दार ने कहा—"अब बताओ!"

चन्द्रभान बोला—"आपने जिस मतलब के लिए मुझ निरपराध को बन्दी बनाया, वह मतलब तो आपका पूरा हो गया होगा।"

सर्दार साहब सिर झुका कर बोले—"नहीं, तुम्हारी औरत बड़ी ज़िद्दी निकली। उसने अब तक मेरी बात नहीं मानी। हाँ, अब जो उसे यह पता लगेगा कि तुमने

उसे मुझे सौंप दिया, तब उसे मेरी बात माननी ही पड़ेगी।"

चन्द्रभानसिंह के मुख पर एक क्षण के लिए प्रसन्नता दौड़ गई, परन्तु वह गम्भीर होकर बोला—"यदि आपको यह सन्देह हो कि वह आपकी बात नहीं मानेगी तो मैं उसे समझा दूँ।"

"आशा तो है कि मान लेगी, परन्तु यदि समझा भी दो तो अच्छा है।"

"तो उसे बुलाइए।"

सर्दार साहब ने दीवार में लगा हुआ एक बटन दबाया। थोड़ी देर में एक ओर का द्वार खुला और एक बाँदी आकर बोली—"क्या आज्ञा है?"

"देखो, वह औरत जो आई है उसे यहाँ ले आओ। कहना तुम्हारा पति तुमसे मिलना चाहता है।"

बाँदी के चले जाने के पश्चात् सर्दार साहब बोले—"तब तक दस्तख़त तो कर दो।"

"उसी के सामने दस्तख़त करूँगा, जिसमें उसे विश्वास हो जाय!"

"अच्छी बात है।"—कह कर सर्दार साहब चुप हो गए। कुछ ही क्षण में चन्द्रभान की पत्नी आ पहुँची। उसके साथ की बाँदी को सर्दार साहब ने हटा दिया। चन्द्रभान की पत्नी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित थी, परन्तु उसका चेहरा उदास तथा पीतवर्ण हो रहा था। चन्द्रभानसिंह उसे कुछ क्षणों तक सतृष्ण नेत्रों से देखता रहा। तत्पश्चात सँभल कर बोला—"देखो, आज से तुम मेरी पत्नी नहीं, सर्दार साहब की पत्नी हो। मैंने तुम्हें त्याग दिया।"

पत्नी के मुख पर मुर्दनी छा गई। वह लड़खड़ाती हुई जिह्वा से बोली—"नहीं-नहीं, ऐसा न कहो।"

"अवश्य कहूँगा। तुम अब मेरे काम की नहीं रहीं।"

"आह, आज मेरी सारी आशाएँ टूट गईं।"—यह कह कर उसने उँगली से अँगूठी उतार कर शीघ्रता-पूर्वक मुँह में रख ली। सर्दार साहब यह देख कर—"हैं! यह क्या किया?" कहते हुए उसकी ओर लपके। इसी समय चन्द्रभानसिंह सिंह के समान उन पर टूटा। उसके पैरों में बेड़ियाँ थीं, परन्तु हाथ खुले हुए थे। उसने लपक कर सर्दार साहब का गला दोनों हाथों से दाब लिया और बोला—"हरामज़ादे, तूने मेरे साथ जैसी दग़ा की, वैसा ही फल तुझको देता हूँ। मैंने इस बहाने से तुझ तक पहुँचने की राह निकाली।"—यह कहते हुए चन्द्रभान ने ज़ोर से सर्दार साहब का गला दबाया। सर्दार साहब ने गला छुड़ाने का बड़ा प्रयत्न किया, बहुत कुछ हाथ-पैर मारे, परन्तु चन्द्रभान का पञ्जा मौत का पञ्जा था। अन्त में सर्दार साहब की आँखें निकल आईं और वह निर्जीव हो गए। चन्द्रभान-सिंह ने उनका गला छोड़ा। गला छोड़ते ही लाश धम् से भूमि पर गिरी।

इसके उपरान्त चन्द्रभान ने अपनी पत्नी पर दृष्टि डाली। वह भयभीत होकर विस्फारित नेत्रों से यह काण्ड देख रही थी। चन्द्रभान ने लपक कर उसे अपने बाहु-पाश में ले लिया और उसका मुख चूमते हुए बोला—"शाबाश, राजपूतनी! तूने अपनी और मेरी लाज रख ली।" उसकी पत्नी कुछ कहना ही चाहती थी कि उसे एक ज़ोर का वमन हुआ। वमन में रक्त ही रक्त था।

इसी समय एक ओर से चीख़ सुनाई दी और किसी स्त्री के कण्ठ ने चिल्ला कर कहा—"अरे दौड़ो, सरकार को मार डाला।" इसके उपरान्त तुरन्त ही आठ-दस आदमी भीतर घुस आए। उन्होंने पहले सर्दार साहब की जाँच की, चन्द्रभान हँस कर बोला—देखते क्या हो—सरकार साहब तो यमराज के घर पहुँच गए।

उसके मुख से यह शब्द निकले ही थे कि उस पर चारों ओर से तलवारें पड़ने लगीं और एक क्षण में वीर चन्द्रभान टुकड़े-टुकड़े होकर सर्दार की लाश पर गिर पड़ा।

लौ बस है लगी आज़ादी से

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

(१)

जो मुल्क पर अपने मरते हैं,
वह नाम जहाँ में करते हैं।
दम भर भी उन्हें आराम नहीं,
आराम से कोई काम नहीं।
दुनिया से नाता तोड़े हैं,
सब ऐशो-इशरत[1] छोड़े हैं।
आलम[2] को वतन से मतलब है,
बुलबुल को चमन से मतलब है।

(२)

एक-एक को दिल से प्यारे हैं,
सब की आँखों के तारे हैं।
हर वक्त यही है दिल की लगन,
कुर्बान करें हम तन, मन, धन।
डरते ही नहीं बरबादी से,
लौ बस है लगी आज़ादी से।
आलम को वतन से मतलब है,
बुलबुल को चमन मतलब है।

(३)

मिल-जुल कर दिल से काम करें,
हरगिज़ न दबें, हरगिज़ न डरें।
बे-खटके पाँव उठाएँ भी,
मञ्ज़िल पर सब को लाएँ भी।
रग-रग में पैदा जोश रहे,
यानी बस इसी का होश रहे।
आलम को वतन से मतलब है,
बुलबुल को चमन से मतलब है।

(४)

रोना कैसा, धोना कैसा,
पाना कैसा, खोना कैसा?
कुछ सब्र भी करना लाज़िम है,
कुछ जब्र भी करना लाज़िम है।
आज़ारों[3] को सहना है यही,
सुनना है यही, करना है यही।
आलम को वतन से मतलब है,
बुलबुल को चमन से मतलब है।

(५)

आबाद रहें दिलशाद[4] रहें,
यह चाहते हैं आज़ाद रहें।
एख़लासो[5] वफ़ा से काम नहीं,
जब यह नहीं तो आराम नहीं।
दामन में निराले फूल चुनें,
"बिस्मिल" की नसीहत लोग सुनें।
आलम को वतन से मतलब है,
बुलबुल को चमन से मतलब है।

१—आनन्द, २—संसार, ३—दुखों, ४—ख़ुश, ५—प्रेम।

हाडोती के गिरमिटिया मज़दूर

[श्री० कल्याणमल जी बाँठिया, बी० एस-सी०]

हाडोती (कोटा और बूँदी) में जिन कृषकों के पास ८० बीघा या इससे अधिक भूमि होती है वे स्वयम् अपना कुल कृषि-कार्य नहीं कर सकते, अतः बाँटे पर या सालाना नक़दी या नाज पर अपना काम करवाने को मज़दूर रखते हैं, जिन्हें हाली या बाथोलिया के नाम से पुकारा जाता है। इस समय कृषकों की जो दयनीय दशा है उससे जन-साधारण ख़ूब परिचित हो गया है, पर हाली बाथोलिया वर्ग से अभी अधिकांश संसार अपरिचित है। राजपूताने में और ख़ासकर हाडोती प्रान्त में इस वर्ग की बहुत अधिकता है और इसका व्यक्तिगत जीवन कृषकों के जीवन से भी अधिक दयनीय है।

हाडोती प्रान्त में जब किसी भूमि-हीन या थोड़ी भूमि वाले मज़दूर या कृषक को अपनी या अपने पुत्र की शादी करने के लिए १००), १५०) या इससे अधिक रुपयों की आवश्यकता होती है तो वह किसी विशेष भूमि वाले कृषक के पास रुपया उधार लेने जाता है। कृषक ख़ुद अपने पास से या अपने ऋण-दाता बौहरे से रुपया उधार लाकर ब्याज से या बिना ब्याज उस व्यक्ति को इस शर्त पर उधार देता है कि जब तक यह ऋण ब्याज सहित न चुक जाय, तब तक उसके यहाँ कृषि कार्य करता रहेगा और बदले में या तो ग्राम की प्रथा के अनुसार अपने हिस्से की भूमि की उपज का १/१० या १/६ भाग पावेगा या उसे ५०) से ६०) रुपए साल नक़द या २० से ३० मन अन्न मिलेगा।

यह व्यक्ति जेठ के महीने से अपने ऋणदाता काश्तकार के यहाँ गिरमिटिया मज़दूर की भाँति कार्य प्रारम्भ करता है और अपने तथा अपने परिवार के खाने व पहनने का आवश्यक नाज व वस्त्र अपने मालिक से समय-समय पर लेता रहता है, जिसका हिसाब कृषि-वर्ष की समाप्ति पर कर लिया जाता है। इस प्रकार वह हाली पूरे वर्ष भर कृषक के यहाँ काम करता है।

हाडोती प्रान्त के कृषि-कार्य में लगभग नित्य ही कुछ न कुछ काम होता ही रहता है, इस वास्ते इन हालियों को अपने घरू कामों के वास्ते कोई छुट्टी मिलने की व्यवस्था नहीं है। जब कभी हाली बीमारी या अपने किसी आवश्यक घरू काम के कारण अपने मालिक के काम पर नहीं जा पाता, तो उस दिन वह ग़ैर-हाज़िर माना जाता है और वार्षिक हिसाब करते समय ऐसी तमाम ग़ैर-हाज़िरियों की हाली से ।) रोज़ के हिसाब से रक़म वसूल की जाती है।

यदि किसी कृषक के पास चार-पाँच सौ बीघा भूमि होती है तो वह अस्सी बीघा भूमि पर एक हाली के हिसाब से जितने आवश्यक हों, हाली लगाता है और तमाम खेती की सम्मिलित पैदावार का १/६ अंश सब हालियों में बाँट देता है।

गिरमिटिया मज़दूरों की तरह ये हाली भी एक मालिक के यहाँ से दूसरे के यहाँ बदल सकते हैं, पर तबादले के पूर्व उन्हें अपने पूर्व स्वामी को अपना सारा ऋण नए स्वामी से लाकर चुकाना होता है। उनका स्वामी भी रुपया लेकर उन्हें दूसरे के काम पर लगा देता है। इसके विपरीत अमल होने पर हाली को राज-न्यायालय से दण्ड मिलता है।

इन हालियों को कृषि-वर्ष की समाप्ति से पूर्व अपने मालिक का काम छोड़ने का अधिकार नहीं है। यदि कोई ऐसा करे तो शिकायत होने पर राज-न्यायालय से उसको छः मास के सपरिश्रम कारावास तक का दण्ड दिया जा सकता है।

इन हालियों को अपने मालिक का केवल कृषि-कार्य ही नहीं करना होता, बल्कि उसके कुल घरेलू काम भी उन्हें करने पड़ते हैं, जैसे घर सारना या उनके कबाड़े के लिए जङ्गल में से डाडे-बलीड़े इत्यादि लाना, कवेलू बनाना, जङ्गल में जाकर उसके जलाने को ईंधन लाना

इत्यादि। कृषक के मवेशियों का दाना इन हालियों की स्त्रियों को दलना होता है, जिसकी उन्हें =) मन मज़दूरी दी जाती है।

साधारणतया इन हालियों की वार्षिक आय इतनी कम होती है कि उनका छोटे से छोटा काम भी ऋण लिए बिना नहीं चलता और यह ऋण-भार उनके सिर से आजन्म नहीं उतरता। अपने बाँटे से ज़्यादा तो हाली साल भर में अपने मालिक से नाज लेकर ही खा लेता है और कपड़े पहन लेता है, अतः उसका ऋण उसके माथे बना ही रहता है। इस पर ब्याज साल भर बढ़ता रहता है। सारांश यह है कि एक बार हाली लगा कि आदमी जन्म भर का ग़ुलाम बन जाता है। इस दासता का अन्त केवल उसकी मृत्यु के साथ ही हो सकता है।

इन हालियों का दैनिक जीवन बहुत ही कष्टमय होता है। सवेरे से शाम तक बैलों के समान यह भी व्यस्त रहते हैं, और रात में उन्हीं की तरह उनके पास ही पड़ कर सवेरा कर देते हैं। सवेरे ५ बजे के लगभग इन्हें उठ कर अपने स्वामी के बैलों को सँभाल कर ठाणों में से खोल, बाहर निकालना पड़ता है और इसके बाद ही उन्हें हल या कुली में जोत कर वे खेत पर चले जाते हैं। वहाँ दोपहर के ११ बजे तक हल चलाने के बाद वहीं खेत की मेंड़ पर बैलों को चरने के वास्ते छोड़, ख़ुद अपनी स्त्री की लाई हुई मोटी-मोटी रूखी रोटियाँ बिना किसी साग के केवल प्याज की मदद से चबा कर एक लोटा पानी पी लेते हैं और कुछ देर विश्राम करके फिर अपने बैलों के साथ खेत जोतने लग जाते हैं। शाम को अँधेरा होने तक वे फिर खेत जोतते रहते हैं, जिससे उन्हें दिन भर में लगभग १० मील का चक्कर खेत ही खेत में हो जाता है। अँधेरा होने पर वे अपने दिन भर के साथी बैलों के साथ घर आते हैं। वहाँ बैलों को अपने स्थान पर बाँध, उन्हें बाँट खिला, चारा डाल अपने घर के दर्शन कर पाते हैं। घर पहुँचते ही कभी उनकी स्त्री कहती है, आज नाज नहीं रहा, कभी कहती है लूगड़ा फट गया, कभी बच्चे कहते हैं दादा एक पैसे का गुड़ ही दिला दो, इत्यादि। ग़रीब हाली सब की सुन, मुँह नीचा कर बैठ रहता है, क्योंकि इन साधारण माँगों को भी पूरा करने की उसमें सामर्थ्य नहीं होती। जैसे-तैसे मन मार, अण्ट-शण्ट जवाब दे, अपने परिवार को शान्त कर, वही सवेरे की सी रूखी-सूखी रोटी चबा कर या राबड़ी पी कर फिर अपने मालिक के यहाँ लौट आता है और बैलों को सँभाल, वहीं मालिक की पोल में बैलों के पास पड़ कर रात बिता देता है। उसके घर पर उसके बाल-बच्चे अलग पड़े रहते हैं और वह ख़ुद अपने मालिक की पोल में अलग अकेला पड़ा-पड़ा अपनी रातें ख़त्म करता रहता है। कैसा दुखी है यह मानवी जीवन !!

संसार का प्रत्येक प्राणी जब रात-दिन मेहनत करते रहने पर भी पेट भर खाने को नहीं पाता, सुख की नींद सो नहीं सकता और अपने कुटुम्ब की साधारण माँगों को भी पूरा नहीं कर सकता, तो वह उस जीवन से घबरा जाता है और परिश्रम से भी जी चुराने लगता है। इसी नियम के अनुसार ये हाली भी अपने मालिकों का काम परिश्रम से और मन लगा कर नहीं कर पाते। दिन-रात काम में लगे रहने पर भी बहुत सा समय तमाखू पीने में बरबाद कर समय पर काम पूरा नहीं कर सकते। हाँकने, ओटने, काटने इत्यादि आवश्यक कार्यों में देरी कर इन कामों को पीछा डाल देते हैं। फलतः काश्तकार की फ़सल अच्छी नहीं होती। इससे वे और काश्तकार दोनों बरबाद होते हैं। ठीक काम के समय बीमारी का बहाना कर बैठे रहते हैं। कृषक को महँगे दामों पर मज़दूर लगा कर अपना काम करना पड़ता है। जब एक-दो साल काम करने के बाद ये देखते हैं कि क़र्ज़ क़ाबू से बाहर हो गया तो अपने मालिक का काम छोड़, चुपके से कभी अकेले और कभी अपने कुटुम्ब सहित राज की सीमा के बाहर किसी और स्थान पर मज़दूरी करने व कमाने-खाने चले जाते हैं। इनके इस प्रकार भाग जाने से कृषक की खड़ी खेती को बहुत नुक़सान पहुँचता है और कभी-कभी जब दूसरा आदमी नहीं मिलता तो कृषक की खड़ी खेती बिलकुल बरबाद ही हो जाती है।

कृषि-कार्य में यह गिरमिटिया मज़दूरों का मौजूदा तरीक़ा मज़दूरों के लिए दुखद और कृषकों के लिए हानिकर है। अनुभव ने यह सिद्ध करा दिया है कि जब तक इन हालियों का जीवन नहीं सुधारा जावेगा, खेती नहीं

सुधर सकती। यदि खेतों को उपजाऊ बनाना है, कृषकों को दीनता से बचाना है, राष्ट्र की शान्ति और समृद्धि बढ़ाना है, इस राष्ट्रीय व्यवसाय को क़ायम रखना है, तो हालीवर्ग की दशा सुधारी जाय। इनके सुधारे बिना खेती में यथोचित मेहनत नहीं होगी और बिना मेहनत खेती नहीं पनपेगी।

हालीवर्ग की दशा सुधारने के सब से मुख्य दो मार्ग हैं—(१) उन पर क़र्ज़ क़ाबू से बाहर न होने देना, (२) उन्हें पेट भर खाने व तन भर कपड़े पहनने को मिलते रहने की सुविधा करना। हालियों पर प्रारम्भिक क़र्ज़ ब्याह के वास्ते होता है। यह तब ही घटेगा, जबकि इस सामाजिक प्रथा की काया-पलट हो। जैसे-जैसे लोग दीन-हीन होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे उनके सामाजिक ख़र्च भी घटना आवश्यक है और कुछ अंश में ये घटे भी हैं, पर व्यक्तिगत ख़र्च इस दीनता से घटने के बजाय बढ़ा है। जो वस्तु अब से १५ वर्ष पूर्व चालीस-पचास रुपए में ख़रीदी जा सकती थी, उसका मूल्य अब सौ-डेढ़ सौ से कम नहीं रहा और यह प्रथा इतनी प्रचलित हो गई है कि बिना दिए कोई बधू पाने की आशा ही नहीं रख सकता। कन्या का पिता या संरक्षक जब तक वर या उसके पिता या संरक्षक से इतनी रक़म वसूल न कर ले, जितने में वह अपने पुत्र के लिए वधू ला सके, तब तक वह अपनी पुत्री का सम्बन्ध किसी से नहीं करता। यही दशा एक कुटुम्ब से दूसरे कुटुम्ब और दूसरे से तीसरे तक सिलसिलेवार चली जाती है और वे सब, जो इसके चक्र में आते-जाते हैं, ऋणी होते रहते हैं। समाज जब इस कुप्रथा को रोकने में असमर्थ हुआ, तब राज ने इसे रोकने को क़दम बढ़ाया और नियम बना, कन्या पर रुपया लेना-देना दण्डनीय ठहराया। जनता ने इन नियमों को बहुत ही उदासीनता से झेला और मुँह बिगाड़ कर खिसका दिया। जनता की इस उदासीनता से नियम-निर्माता भी प्रभावित हो गए और अपने कर्तव्य में शिथिल हो, नियमोल्लङ्घन को दर-गुज़र करने लगे। जनता के हौसले बढ़े और लेना-देना केवल पूर्ववत् जारी ही नहीं रहा, प्रत्युत बढ़ने लगा। फलतः इस दीनावस्था में भी कोई सौ-डेढ़ सौ रुपया दिए बिना वधू नहीं पा सकता। यदि राज अपने उद्देश्य पर पूरा लक्ष्य रख निर्मित नियमों की सख़्ती से पाबन्दी कराने लगे, उल्लङ्घन करने वालों के साथ नरमी का बर्ताव बन्द कर दे, समाज के उद्धार की इच्छा रखने वाले उत्साही पुरुषों को अपने आन्दोलन में प्रोत्साहित करे, नियमोल्लङ्घन करने वाले व्यक्तियों को दण्डित कराने में मुख़बिरों को अनुकूल सुविधा दे, अपने उपदेशकों द्वारा समाज का ध्यान इस कुरीति द्वारा उत्पन्न हुई हानियों की तरफ़ खींचे, तो आशा की जा सकती है कि यह प्रथा एक युग में बहुत कुछ घट जावे। इस ख़र्च के घट जाने पर हालियों पर ऋण इतना नहीं बढ़ेगा और ये ऋण-भार से दब कर भाग जाने का प्रयास छोड़ देंगे, जिससे कृषकों का काम बिगड़ने से बच जावेगा।

दूसरा मार्ग इन मज़दूरों की आय-वृद्धि है। एक हाली का औसत परिवार एक स्त्री और दो सन्तान माना जाय और स्त्री के परिश्रम की आय इस हाली की आय से आधी मान ली जावे, तो हाली परिवार की मौजूदा आय का हिसाब इस प्रकार रहता है। मान लो एक हाली ८० बीघा के एक ऐसे औसत दर्जे के कृषक के यहाँ है, जो अपनी भूमि में से $\frac{१}{३}$ में ख़रीफ़, $\frac{१}{३}$ में गेहूँ, $\frac{१}{६}$ में चने और $\frac{१}{६}$ में अलसीधना इत्यादि फ़सल करता है। साधारण सालों में इस प्रान्त की औसत उपज ज्वार, गेहूँ, चना दो मन प्रति बीघा व अलसीधना एक मन प्रति बीघा मानी जाती है। इस पैदावार में से यदि हाली को $\frac{१}{९}$ का हिस्सेदार मान लिया जावे (हालाँकि कई जगह उसे केवल $\frac{१}{१०}$ ही मिलता है) तो उसके हिस्से में $\frac{८०}{३} \times \frac{२}{९}$ मन ज्वार $\frac{८०}{३} \times \frac{२}{९}$ गेहूँ, $\frac{८०}{६} \times \frac{२}{९}$ चना, $\frac{८०}{६} \times \frac{१}{९}$ अलसीधना आवेगा, जो बराबर है लगभग ६ मन ज्वार, ६ मन गेहूँ, ३ मन चना और १॥ मन अलसीधना के। हाली के इस आय में उसकी स्त्री की आय मिलाने पर इस परिवार की कुल सालाना आय २२॥ मन नाज व २। मन अलसीधना होगी।

अब इस परिवार के खाने-पहनने का सब से कम ख़र्च का हिसाब लगाया जाता है। एक व्यक्ति नित्य एक सेर नाज खाता है, परिवार के दोनों बालक यदि एक युवा के बराबर माने जाएँ, तो इस परिवार को ३ सेर नाज रोज़ाना यानी सवा दो मन नाज मासिक खाने को चाहिए। ये हाली ग्वाल, जब फ़सल खेतों में खड़ी

होती है, कच्चा नाज खाकर अपने घर पर कुछ कम खाते हैं, इसके लिए १७ सेर नाज महीना कम कर दिया जाय तो मासिक २ मन यानी सालाना २४ मन नाज के बिना इस परिवार का गुज़ारा नहीं हो सकता। हाली-परिवार के पहनने के वास्ते एक साल में कम से कम निम्न-लिखित वस्त्र अवश्य चाहिए—

ख़ुद के लिए—एक जोड़ा धोती ३), एक साफ़ा १), एक कुरता १) और एक जोड़ा जूता १॥); अपनी स्त्री के लिए—एक घाघरा २) दो लूगड़े ३) ४ काँचली १॥) और एक जोड़ा जूती १॥); दोनों बच्चों के लिए—चार कुरते २) दो धोती २) और एक साफ़ा ॥॥)—कुल मिला कर १६।) हुआ।

इस प्रकार हाली का खाने-पहनने का सालाना ख़र्च २४ मन नाज और १६।) रु० का कपड़ा हुआ। खाने-पहनने के अलावा मनुष्य की और भी कई आवश्यकताएँ हैं, जैसे बर्तन, दवा, इत्यादि। इसकेलिए २०) रु० और जोड़ने पर एक हाली-परिवार का वार्षिक व्यय २४ मन नाज व ३६।) नक़द होता है।

हाली-परिवार को साल भर की आय २२॥ मन नाज और २। मन अलसीधना, जिसका मूल्य लगभग १६) रु० होता है। यानी ख़र्च से १॥ मन नाज व २३।) नक़द कम हैं। जहाँ के हालियों को केवल $\frac{1}{10}$ हिस्सा मिलता है, उनके आय-व्यय का अन्तर तो इससे भी विशेष होगा।

आय-व्यय के उपरोक्त हिसाब से हर व्यक्ति जान सकता है कि जब रात-दिन के परिश्रम का यह फल होता है, तो जीवन किस प्रकार शान्त और सन्तुष्ट हो सकता है और कैसे ऐसा व्यक्ति मन लगा कर परिश्रम कर सकता है। आवश्यकता है कि इस हाली-परिवार की आय इतनी तो कम से कम हो कि जिससे वह साल भर में अपने ख़र्च के लायक़ कमा कर कुछ अपना क़र्ज़ चुकाने में दे सके।

यदि नाज का औसत भाव ३) मन माना जाय तो $\frac{1}{6}$ के बाँटे से होने वाली आय की क़ीमत लगभग ८३॥) होगी और हाली के सालाना व्यय की क़ीमत १११)। यह १११) की आय उसे तब हो सकती है, जब कि उसका बाँटा इतनी आय के अनुकूल हो।

अतएव इन हालियों को बाँटा बजाय $\frac{1}{10}$ या $\frac{1}{6}$ के $\frac{1}{5}$ मिलने की व्यवस्था हो तो इनका पेट भर सकता है। इसी अनुपात से इनकी सालाना वेतन-वृद्धि होना आवश्यक है।

काश्तकारों की दयनीय दशा से द्रवित लोग कह सकते हैं कि $\frac{1}{10}$ या $\frac{1}{6}$ देकर भी जब काश्तकार भूखे रहते हैं, तो $\frac{1}{5}$ देकर वे कैसे जीवित रहेंगे। यह भ्रम है। अव्वल तो कृषक कभी उपज से भूखा है ही नहीं। उसकी भूख का कारण है उसके ऊपर के लगान और सामाजिक अपव्यय। दोयम यदि उपज की कमी ही कारण मान लिया जाए, तो हाली के बाँटे की यह वृद्धि हालियों को सन्तुष्ट और परिश्रमी बना, उनकी पैदावार में इस बाँटे से विशेष वृद्धि कर देगी। अपने कमाने वाले को पैदावार का $\frac{1}{5}$ हिस्सा देकर भी कृषक उससे दूना अपने परिवार के लिए पावेगा। क्योंकि लगान में अपनी पैदावार का $\frac{1}{5}$, पैदावार के ख़र्च में पैदावार का $\frac{1}{3}$ तथा हाली के बाँटे में $\frac{1}{5}$ दे देने पर भी उसके पास पैदावार का लगभग $\frac{1}{3}$ भाग बच रहेगा, जो हाली के भाग के दूने से भी ज़्यादा है।

मैंने यह हिसाब लगाने में यथासम्भव अनुमान से काम लिया है। इस प्रान्त का बीघा एक एकड़ का $\frac{2}{5}$ होता है और पैदावार का भाव गत तीन वर्षों के औसत से लगाया है।

जिन-जिन प्रान्तों में यह हाली-ग्वाली की प्रथा प्रचलित है, उनके समाज-सेवियों और अधिकारी-वर्ग को अब जल्द इस हाली-वर्ग की दशा के ऊपर ध्यान देना चाहिए। नहीं तो निकट भविष्य में उनके राज्य की समृद्धि और कृषक-समाज का जीवन डाँवाडोल होने की सम्भावना है।

राजपूतों का स्वतन्त्रता-संग्राम

[श्री० मुन्शी नवज़ादिकलाल जी श्रीवास्तव]

राजपूताने का इतिहास भारत के गौरव का इतिहास है। पराधीनता के इस दुर्दिन में भी जब हम राजपूत वीरों के आत्मोत्सर्ग की कथाएँ पढ़ते हैं, तो हृदय आशा और गर्व से परिपूर्ण हो उठता है और क्षण भर के लिए हम अपने तमाम पराधीनता-जनित क्लेशों को भूल जाते हैं।

राजपूताने का गौरव-मण्डित इतिहास लिख कर जिन विद्वानों ने अपनी लेखनी पवित्र की है, उनका मत है कि राजपूताना की वर्तमान रियासतों में मेवाड़ और जैसलमेर सबसे पुरानी रियासतें हैं। मेवाड़ का नवीन नाम उदयपुर, जोधपुर का मारवाड़, कृष्णसर का बीकानेर और जयपुर का अम्बर है। कोटा और बूँदी, दोनों प्राचीन नाम हैं और इनके संयोग से वर्तमान हीरावती राज्य का सङ्गठन हुआ है। सबसे पहले जिस वीर पुरुष ने मेवाड़-राज्य की प्रतिष्ठा की थी, उनका चिरस्मरणीय नाम महाराजा कनकसेन था। इनकी आठवीं पीढ़ी में राजा शिलादित्य नाम के एक प्रतापी नरेश पैदा हुए थे, जो अपने अमात्यों की विश्वास-घातकता के कारण समर-क्षेत्र में यवनों द्वारा मारे गए थे। इस समय राजा शिलादित्य की महिषी रानी पुष्पवती गर्भवती थीं, इसलिए वह तत्काल ही पति की सहगामिनी नहीं हो सकीं। परन्तु प्रसव के बाद सद्यजात शिशु के पालन-पोषण का भार एक ब्राह्मणी को सौंप कर उन्होंने चितारोहण-पूर्वक पतिलोक की यात्रा कर दी ?

इस बालक का नाम गुह था, जिससे 'गोहिलोट' या 'गिहलोट' वंश की उत्पत्ति हुई। इसी वंश में, कुछ काल के बाद वीरवर बप्पा रावल ने जन्म लिया था !

महाराज बप्पा का जीवन-चरित्र बड़ा ही विचित्र और अद्भुत है। कहते हैं, उन्होंने घोर बन में रह कर बहुत दिनों तक भगवती पार्वती देवी की आराधना की थी और देवी ने वर-स्वरूप उन्हें एक तलवार, एक शूल, शङ्ख, धनुष-बाण और तूणीर आदि प्रदान किया था। बप्पा की वह तलवार आज भी उदयपुर के क़िले में मौजूद है। इस तलवार का वज़न ३२ सेर है। उदयपुर के महाराणा प्रति वर्ष विजयदशमी को बड़े समारोह से इस अपूर्व तलवार की पूजा किया करते हैं।

महाराज बप्पा रावल को वह तलवार तथा अन्यान्य युद्ध-सामग्री पार्वती देवी ने दिया था या वे चीजें उन्हें और किसी तरह प्राप्त हो गई थीं, इस बात का ठीक-ठीक पता लगाना तो अब बड़े-बड़े इतिहासकारों के लिए भी कठिन है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि महाराज बप्पा अद्वितीय वीर थे और उनके बाहुबल की धाक अफ़ग़ानिस्तान और ईरान तक थी। उस समय के बड़े-बड़े योद्धाओं को उन्होंने लोहे के चने चबवाए थे। कई अफ़ग़ानिस्तानी और ईरानी स्त्रियों से उन्होंने शादियाँ भी की थीं ! उनके पुत्रों की संख्या सौ थी। उनकी इस विजय के कारण उनकी भीलों की सेना थी। भीलों ने अपने रक्त का तिलक लगा कर उन्हें राजा बनाया था। इसीलिए बप्पा के वंशधर आज भी राज्याभिषेक के समय भील-सरदार की कनगुरिया के रक्त का तिलक लगाया करते हैं।

कई पीढ़ियों के बाद बप्पा के विमल वंश में राहुप नाम के एक नरेश हुए, जिन्होंने सम्वत् १२५७ में चित्तौड़ के राज-सिंहासन पर आरोहण किया था और नागौर की समर-भूमि में मुसलमान सेनापति शमशुद्दीन को मार कर कुछ दिनों के लिए मुस्लिम शक्ति को विनष्ट कर दिया था। इस युद्ध के बाद से ही गुहिलोट वंशीयों ने गुहिलोट के बदले अपने को 'शिशोदिया' कहना आरम्भ कर दिया। इस युद्ध में महाराणा राहुप के विरुद्ध बहुत से राजाओं ने अस्त्र धारण किया था; जिनमें मन्दराधिपति पुरीहर और राणा मुकुल प्रधान थे। राहुप ने राणा मुकुल को बन्दी कर लिया था और अन्त में उनकी 'राणा' की उपाधि और हर्जाना-

स्वरूप गडवार प्रदेश लेकर छोड़ा था, उसी समय से मेवाड़ के नरेश 'राणा' कहलाने लगे।

राहुप के बाद से राणा लक्ष्मणसिंह तक, प्रायः आधी शताब्दी के अन्दर नौ नरेशों ने चित्तौड़ के राज-सिंहासन पर आरोहण किया था और इनमें से छः ने हिन्दुओं के विख्यात तीर्थस्थान गया धाम को यवनों के आक्रमण से बचाने में आत्म-विसर्जन कर दिया। इनमें महावीर पृथिवीमल्ल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका अद्भुत धर्मानुराग, शौर्य और रण-कौशल आदि देख कर यवन-दल दुम दबा कर भाग खड़ा हुआ और फिर पठान सम्राट अलाउद्दीन के पहले तक किसी मुसलमान बादशाह की भारत की ओर आँख उठाने तक की भी हिम्मत नहीं हुई।

सम्वत् १३७१ में राणा लक्ष्मणसिंह ने चित्तौड़ के राज-सिंहासन पर आरोहण किया। परन्तु उस समय उनकी उमर कम थी, इसलिए उनके चाचा भीमसिंह राजकार्य का परिचालन किया करते थे। भीमसिंह का विवाह सिंहलद्वीपवासी चौहान-वंशीय नरेश हमीर शङ्कर की पुत्री पद्मिनी से हुआ था। यह सिंहल-राजकुमारी अद्वितीय सुन्दरी थी।

इस समय यद्यपि विजातियों के अनवरत आक्रमण से भारत के कई प्रदेश श्रीहीन हो गए थे, परन्तु चित्तौड़ की गौरव-गरिमा को अब तक कोई धक्का नहीं लगा था। परन्तु काल की कुटिल गति ने उसे भी अछूता नहीं रहने दिया। रानी पद्मिनी के सौन्दर्य की ख्याति सुन कर पठान सम्राट अलाउद्दीन ने दो बार चित्तौड़ पर आक्रमण किया और उसके सारे वैभव को नष्ट-भ्रष्ट कर गया! वह चित्तौड़ को जीतने अथवा राज्य-विस्तार की इच्छा से नहीं, वरन् पद्मिनी को पाकर अपनी कलुषित मनोवासना की पूर्त्ति के लिए चित्तौड़ पर चढ़ आया था। परन्तु चित्तौड़ एक सुरक्षित पहाड़ी पर अवस्थित है और राजपूत भी लड़ाई के मैदान में शत्रु को पीठ दिखाना नहीं जानते थे, इसलिए महीनों तक अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर सेना का घेरा डाल रक्खा और अन्त में यह घोषणा की कि अगर चित्तौड़-नरेश पद्मिनी को दे दें तो हम अपनी सेना लेकर वापस चले जाएँगे। पठान-राज का यह अतीव नीचतापूर्ण प्रस्ताव सुन कर राजपूत उत्तेजित हो उठे। हज़ारों वीरों ने अपनी तलवारें खींच लीं और पामर पठान को उसकी गुस्ताख़ी का मज़ा चखाने को तैयार हो गए। परन्तु अलाउद्दीन चालाक आदमी था, उसने राजपूतों को लड़ने का अवसर न देकर कहला भेजा कि मैं विश्वविमोहिनी पद्मिनी के रूप की छायामात्र दर्पण में देख कर चला जाऊँगा। परन्तु राजपूत इस बात पर भी राज़ी नहीं हुए। अन्त में भीमसिंह ने उन्हें समझा-बुझा कर शान्त किया और अलाउद्दीन को पद्मिनी का प्रतिविम्ब दिखाने को राज़ी हो गए।

नियत समय पर थोड़े से पार्श्व-रक्षकों को लेकर धूर्त पठान निःशङ्क चित्त से राजमहल की ओर चला। राजपूतों ने उसकी यथेष्ट सम्बर्द्धना की और एक बड़े दर्पण के सामने रानी पद्मिनी को लाकर खड़ा कर दिया। इसके बाद कपट शिष्टाचार के साथ अलाउद्दीन ने भीमसिंह से क्षमा-प्रार्थना की और अपने शिविर की ओर लौट चला। निष्कपट हृदय भीमसिंह अतिथि के सम्मानार्थ दुर्ग-द्वार तक उसे पहुँचाने आए। इसी समय अलाउद्दीन के पूर्व निर्देशानुसार पठानों की एक सेना ने भीमसिंह को बन्दी कर लिया। इसके बाद अलाउद्दीन ने प्रचारित कर दिया कि पद्मिनी को पाने पर भीमसिंह छोड़ दिए जाएँगे।

रानी पद्मिनी ने भी यह ख़बर सुनी और कुछ देर तक गम्भीरता-पूर्वक विचार करके प्रचारित करा दिया कि पतिव्रता राजपूत रमणी पति के उद्धार के लिए अपना सतीत्व भी दे देने को तैयार है। इसके बाद उसने अपने आत्मीय गोरा और बादल को अपने पास बुलाया। वीरवर गोरा अस्सी वर्ष के वृद्ध थे और बादल केवल बारह वर्ष का बालक था। रानी ने दोनों के साथ बड़ी देर तक परामर्श किया। अन्त में सम्राट के पास ख़बर भेज दी गई कि रानी यथोचित सम्मान के साथ पठान-शिविर में आने को तैयार हैं। उनके साथ उनकी दासियाँ और सहचरियाँ भी आएँगी। इसके सिवा कुछ राजपूत स्त्रियाँ, जिनसे रानी का सखीत्व है, उनसे अन्तिम बिदा लेने के लिए उनके साथ शिविर तक आएँगी। परन्तु सम्राट को यह प्रतिज्ञा करनी होगी, कि उनकी सेना का कोई सिपाही किसी राजपूत रमणी का अपमान न करेगा, और न कोई उनकी पालकी के निकट आएगा।

पापी पठानराज़ यह ख़बर सुन कर ख़ुशी से उछल पड़ा। उसने फ़ौरन इस सूचना के अनुसार प्रबन्ध किया। निर्दिष्ट समय पर प्रायः सात सौ पालकियाँ चित्तौड़ के क़िले से निकल कर अलाउद्दीन के पड़ाव की ओर चलीं। हर एक पालकी में एक राजपूत वीर शस्त्रास्त्र लेकर बैठा था। प्रत्येक पालकी के लिए छः सशस्त्र सिपाही कहारों के रूप में थे। इस तरह प्रायः पाँच हज़ार राजपूत शिविर में पहुँच गए। रानी की डोली अलग रक्खी गई। उन्होंने अन्तिम बार पति-दर्शन की इच्छा प्रगट की। उत्सुक अलाउद्दीन ने इसे स्वीकार किया, परन्तु केवल आधे घण्टे के लिए। परन्तु आधा घण्टा बीत जाने पर भी जब भीमसिंह पद्मिनी के पास से न लौटे, तो मानो उसकी धीरता का बाँध खुल गया। उसने फ़ौरन डोली का उहार उठने का आदेश प्रदान किया। उहार उठा दिया गया और कामलोलुप सम्राट ने विस्मय-चकित नेत्रों से देखा कि पालकी में न तो भीमसिंह हैं और न पद्मिनी है। बल्कि उनकी जगह एक लाल-लाल आँखों वाला राजपूत योद्धा नङ्गी तलवार लिए बैठा है। यही नहीं, सारी पालकियों के सवार और कहार देखते-देखते वीर सैनिक के रूप में बदल गए। पद्मिनी और भीमसिंह तो इससे पहले ही क़िले की ओर रवाना हो चुके थे, उनके साथ कई और पालकियाँ भी थीं। अलाउद्दीन ने समझा कि ये वे स्त्रियाँ जा रही हैं, जो रानी को बिदा करने के लिए यहाँ तक आई थीं।

फिर तो राजपूतों और यवनों का घोर युद्ध आरम्भ हुआ। अपनी स्वाधीनता और सम्मान की रक्षा के लिए राजपूत वीरों ने प्राणों की बाज़ी लगा कर लड़ना आरम्भ कर दिया। वे अपनी तीक्ष्ण तलवारों द्वारा बाजरे की खेती की तरह मुसलमान सैनिकों को धराशायी करने लगे। भीमसिंह को पकड़ने के लिए भी सैनिकों की एक टोली भेजी गई। परन्तु राजपूतों ने उसे मार भगाया और भीमसिंह पालकी छोड़ कर अश्वारोहण करके क़िले में दाख़िल हो गए। पठानों ने क़िले के सिंह-द्वार तक उनका पीछा किया, परन्तु वीरवर गोरा ने उन्हें मार भगाया। साथ ही रणक्षेत्र में अपना जीवन भी विसर्जन कर दिया। इस युद्ध में इस वृद्ध वीर ने जो वीरता दिखाई थी, वह इतिहास के अमर पृष्ठों पर सदैव अङ्कित रहेगी। इस महापुरुष ने अपना प्राण देकर चित्तौड़ की राजलक्ष्मी का उद्धार किया था। युद्ध समाप्त होने पर समर-क्षेत्र से, जो थोड़े से वीर वापस आए थे, उनमें वीर बालक बादल भी था। बादल की तलवार वास्तव में बादल की तरह ही शत्रुओं पर बरस पड़ती थी। इस बारह वर्ष के बालक ने एक-दो नहीं, सैकड़ों शत्रुओं का संहार किया था। वीरवर गोरा की पतिपरायणा पत्नी ने अपने पति की वीर-गाथा सुनते-सुनते चितारोहण-पूर्वक जीवन विसर्जन किया।

अलाउद्दीन प्राण लेकर भाग खड़ा हुआ। परन्तु इस घोर अपमान को न भूल सका और सन् १२९३ ईस्वी में उसने फिर चित्तौड़ पर चढ़ाई की। यद्यपि विगत समर में चित्तौड़ के बहुत से वीर काम आ चुके थे, परन्तु अबकी बार भी उन्होंने युद्ध से मुँह नहीं मोड़ा। यह दूसरा युद्ध दीर्घकाल-व्यापी हुआ था। दोनों ओर के असंख्य सैनिक मारे गए थे।

एक दिन की बात है। आधी रात हो चुकी थी। चारों ओर घोर निस्तब्धता का साम्राज्य फैला हुआ था। चित्तौड़ के राणा अपने राजप्रासाद के एक कमरे में चिन्ताकुल भाव से बैठे हुए थे। वह सोचते थे, इस समर की समाप्ति कैसे होगी? क्या चित्तौड़ को अपना चिर-गौरव विसर्जित कर देना पड़ेगा? इसी समय गुरु-गम्भीर स्वर से किसी ने कहा—"मैं भूखी हूँ!" राणा ने चकित दृष्टि से देखा, चित्तौड़ की अधिष्ठात्री देवी दीवाल से लगी खड़ी हैं। राणा ने देवी को देख कर पूछा—"माता, क्या अभी भी तुम्हारी क्षुधा की शान्ति नहीं हुई? हमारे वंश के आठ हज़ार वीर कट गए, क्या उनके शोणित से भी तुम्हारी तृप्ति नहीं हुई?" देवी ने उत्तर दिया—"जब तक चित्तौड़ की रक्षा के लिए राज-मुकुटधारी बारह राजकुमार प्राण विसर्जन नहीं करेंगे, तब तक मेरी भूख की ज्वाला शान्त न होगी।"

देवी की जठर-ज्वाला बारह राजकुमारों का शोणित पीकर शान्त हो या चौबीस का, परन्तु इसमें किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए कि जन्मभूमि की रक्षा के लिए प्राण विसर्जन करने में राजपूत कभी आगा-पीछा नहीं करते थे। इस पर देवी के इस आदेश ने मानो जलती हुई आग में घी की आहुति का काम कर दिया। राणा के बारह राजकुमार असीम उत्साह के साथ मातृ-

भूमि की बलिवेदी पर प्राण विसर्जन करने को तैयार हो गए। राणा ने बड़ी मुश्किल से वंश-रक्षा के ख़्याल से छोटे कुमार अजयसिंह को युद्ध में नहीं जाने दिया। बाक़ी सभी राजकुमार तीन-तीन दिनों तक राज्यारोहण करके क्रमशः समराग्नि में कूद पड़े थे। इस युद्ध में चित्तौड़ ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था। सारे नगर में थोड़े से पुरुषों को छोड़ कर बाक़ी सब स्त्रियाँ ही रह गई थीं, इसलिए यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि अवशिष्ट वीरों के निहत हो जाने पर स्त्रियों की धर्म-रक्षा कैसे होगी?

इस प्रश्न का उत्तर राजपूत रमणियों ने धधकती हुई आग में प्रवेश करके दिया। राणा के अन्तःपुर में एक गहरा कुँआ था और उसमें प्रवेश करने के लिए एक सुरङ्ग बनी हुई थी। उस गहरे कूप में प्रचुर ईंधन डाल कर आग लगा दी गई। रानी पद्मिनी के साथ चित्तौड़ की अगणित राजपूतानियाँ हँसते-हँसते उस महा अग्नि-कुण्ड में प्रवेश कर गईं। सुरङ्ग का महा विशाल लौह द्वार बन्द कर दिया गया।

इस भीषण आत्माहुति का नाम 'जौहर-व्रत' है। व्रत का उद्यापन हो जाने पर राणा ने अपने छोटे कुमार को कुछ सैनिकों के साथ केलवाड़ा भेज दिया और स्वयं रणसज्जा से सुसज्जित होकर, थोड़े से बचे हुए वीरों के साथ शत्रु-सेना पर टूट पड़े। परिणाम-स्वरूप चित्तौड़ नगरी वीर-शून्य हो गई। एक भी मनुष्य चित्तौड़ में नहीं रहा। केवल जन-शून्य श्मशान-भूमि अलाउद्दीन के विचरण करने को रह गई। केवल चित्तौड़ ही नहीं, अवन्तिका, मन्दर, देवगढ़, अनूहल-बाड़ा और प्राचीन धारा आदि अनेक समृद्धिशाली नगरों और जनपदों को इस यवन ने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था।

चित्तौड़ के राजकुमार अजयसिंह केलवाड़ा में एक साधारण मनुष्य की तरह जीवन के दिन व्यतीत करने लगे। परन्तु अपनी प्यारी जन्मभूमि को नहीं भूल सके। उन्होंने उसके उद्धार की बड़ी चेष्टा की, परन्तु असफल रहे। अन्त में, कुछ दिनों के बाद अजयसिंह के बड़े भाई अरिसिंह के पुत्र हमीर ने यवनों के हाथ से चित्तौड़ का उद्धार किया था।

सम्वत् १५६५ में, राणा रायमल्ल की मृत्यु के बाद उनके बड़े राजकुमार साँगा ने पैतृक राजसिंहासन पर अधिकार किया और अपनी शासन-पटुता से मेवाड़ को पुनः गौरव-मण्डित कर दिया। साँगा का दूसरा नाम संग्रामसिंह था। ये बड़े प्रतिभाशाली योद्धा थे। इन्होंने अपने बाहुबल द्वारा ग्वालियर, अजमेर, रायसेना, काल्पी, बूँदी, रामपुर और आबू आदि कई प्रदेशों के राजाओं को अपने वश में कर लिया था। दिल्ली और मालवा के नरेशों को भी इन्होंने अट्ठारह बार संग्राम में परास्त किया था। मुसलमान नरेशों पर राणा संग्राम-सिंह का इतना दबदबा था कि इनके विरुद्ध खड़े होने का किसी ने साहस तक नहीं किया। बाकरोल और घाटोली की लड़ाइयों में दिल्लीपति इब्राहीम लोदी को भी संग्रामसिंह ने बुरी तरह परास्त किया था।

जिस समय राणा संग्रामसिंह का प्रखर प्रताप मध्याह्न के सूर्य की तरह उद्भासित हो रहा था, उसी समय पश्चिम भारत के सिंहद्वार पर महाबीर बाबर की रणभेरी बज उठी। इससे राणा के दबदबे से दबके हुए मुसलमानों ने एक बार फिर सिर उठाया और बाबर की पताका के नीचे खड़े होने लगे।

सम्वत् १५८४ के कार्तिक महीने में कनवा नामक स्थान पर राणा और बाबर की सेनाओं की मुठभेड़ हुई और राणा के दुर्धर्ष वीरों ने बात की बात में बाबर की सेना को मार भगाया। परन्तु बाबर इस पराजय से निरुत्साह नहीं हुआ। उसने शीघ्र ही तैयारी करके फिर राजपूतों के विरुद्ध चढ़ाई की। पुनः घोर समरानल धधक उठा। बाबर की तोपों ने भीषण गोलाबारी आरम्भ कर दी। इससे अगणित राजपूत वीर भुन गए। परन्तु इतने पर भी अवशिष्ट राजपूतों का उत्साह नहीं भङ्ग हुआ। उन्होंने द्विगुण उत्साह के साथ बाबर की सेना पर भयङ्कर आक्रमण किया और निश्चित था कि ये फिर बाबर को दुम दबा कर भागने को विवश कर देते। परन्तु होनहार कुछ और ही थी। राणा के एक सेना-नायक ने उनके साथ घोर विश्वासघात किया और अपने अधीनस्थ सैनिकों के साथ बाबर से मिल गया। सेना की सबसे आगे वाली श्रेणी का भार इसी पामर पर था। इसने ऐन मौक़े पर अपने अन्नदाता के साथ विश्वासघात किया। इसकी देखादेखी कुछ और सेना-नायक भी उधर ही चले गए। राणा का बल कम हो गया और उन्हें संग्राम-स्थल छोड़ देने के लिए विवश होना पड़ा! राणा ने प्रतिज्ञा की थी कि अगर विजय न

प्राप्त कर सकेंगे तो चित्तौड़ में क़दम न रक्खेंगे। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और चित्तौड़ के पुनरुद्धार की चेष्टा करते हुए बुरवा नामक स्थान में प्राण-विसर्जन किया।

सम्बत् १५९१ में राणा संग्रामसिंह के तीसरे पुत्र रत्नसिंह की अकाल मृत्यु के बाद, चौथे पुत्र राणा विक्रमादित्य सिंहासन पर बैठे। परन्तु विक्रमादित्य में राज्य-शासन की योग्यता बिल्कुल न थी। ये उद्धत, उग्र और क्रोधी थे। बात-बात में अपने सामन्तों तथा सरदारों का अपमान कर देना तो इनके लिए एक साधारण बात थी। राज्य में नाना प्रकार की विश्रृङ्खलताएँ आरम्भ होने लगीं। सामन्तगण भी अत्यन्त असन्तुष्ट हो गए। इस बात की ख़बर गुजरात के राजा बहादुर को लगी। उसने एक महती सेना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी।

परन्तु राणा विक्रमादित्य इस चढ़ाई से ज़रा भी विचलित नहीं हुए। वे अपनी सेना लेकर फ़ौरन बहादुर के मुक़ाबिले पर डट गए। परन्तु अधिक देर तक शत्रु के सामने ठहर नहीं सके। सेना के पैर भी उखड़ गए। सरदारगण राणा को छोड़ कर चित्तौड़ और राणा संग्रामसिंह के शिशु पुत्र की रक्षा के लिए वापस चले आए।

बहादुर के साथ लोब्री ख़ाँ नाम का एक गोलन्दाज़ था। उसने ज़मीन में एक सुरङ्ग खोद कर उसमें बारूद भर दी और अन्त में आग लगा दी। इससे चित्तौड़ के क़िले में प्रवेश करने को एक रास्ता सा बन गया। राजपूत वीर बहुत सी सेना लेकर इस सुरङ्ग की रक्षा करने लगे। क़िले में घुसने के लिए शत्रुओं का जो दल इस सुरङ्ग के पास आता था, वह तुरन्त ही राजपूतों द्वारा परलोक-पथ का यात्री बना दिया जाता था, परन्तु शत्रुओं की संख्या कम न थी, इसलिए राजपूत अन्त तक उस सुरङ्ग की रक्षा नहीं कर सके और अन्त में बहुत सी शत्रु-सेना क़िले में घुस आई। अब चित्तौड़ की रक्षा का कोई उपाय न रह गया। यह देख राज-महिषी जौहरबाई रणसज्जा से सज्जित होकर कतिपय वीरों तथा वीराङ्गनाओं के साथ शत्रु का सामना करने को आ डटीं। इस समय राजपूत वीराङ्गनाओं ने जो रण-कौशल प्रदर्शन किया था, उसका सम्यक् वर्णन एक स्वतन्त्र प्रबन्ध का विषय है।

परन्तु इतने पर भी चित्तौड़ की रक्षा न हो सकी और चिर-प्रथा के अनुसार अपने सतीत्व और सम्मान के लिए राजपूत रमणियों को 'जौहर व्रत' का आश्रय लेना पड़ा। सौ दो सौ नहीं, एक साथ ही तेरह हज़ार बालाएँ धधकती हुई चिताओं में जीते जी जल कर भस्म हो गईं।

राणाओं के पवित्र वंश में बनवीर नाम का एक कुलाङ्गार किसी दासी के गर्भ से पैदा हुआ था। कुछ सामन्तों ने उसी को राणा की पदवी देकर राजसिंहासन पर बिठा दिया। उस समय राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी राणा संग्राम के औरस-जात पुत्र उदयसिंह बहुत छोटे थे। बनवीर अपने पथ के इस भावी कण्टक को दूर कर देना चाहता था। उसने उदयसिंह की हत्या कर डालने का इरादा किया। परन्तु उदयसिंह की पन्ना नाम्नी धात्री को उसकी यह दुरभिसन्धि मालूम हो गई। देवी पन्ना ने उदयसिंह के स्थान पर अपने बच्चे को सुला दिया और उन्हें जूठी पत्तलों में छिपा कर अन्यत्र भेजवा दिया! अस्तु।

बनवीर के बाद राणा उदयसिंह सिंहासनारूढ़ हुए। परन्तु ये किसी मर्ज़ की दवा न थे। इनका अगर कुछ महत्त्व था, तो इतना ही कि हिन्दू-सूर्य महाराणा प्रतापसिंह के पिता थे, अन्यथा इनके जैसा कापुरुष इस गौरवान्वित वंश में कोई नहीं पैदा हुआ था।

जिस समय उदयसिंह चित्तौड़ के राजसिंहासन पर विराजमान थे, उस समय प्रसिद्ध मुग़ल सम्राट अकबर लड़का था। उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी, परन्तु हार गया। इस घटना के कुछ दिन बाद उसने फिर चित्तौड़ पर चढ़ाई की। अबकी राजपूत हारे और चित्तौड़ की स्वाधीनता मुग़लों की बन्दिनी बनी।

राणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद उनका छोटा लड़का जगमल्ल गद्दीनशीन हुआ। परन्तु कुछ दिनों के बाद सामन्तों ने उसे राजच्युत करके राणा उदयसिंह के बड़े पुत्र प्रतापसिंह को सिंहासन पर बिठाया।

मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए महाराणा ने जितनी मुसीबतें झेलीं, जितनी लाञ्छनाएँ भोग कीं और जितना कष्ट उठाया, वह अद्वितीय और अनुपम है। प्रताप की कथा हम फिर कभी 'चाँद' के पाठकों को सुनाएँगे।

आमदनी

प्रजा-वात्सल्य द्वारा—

खर्च

होटल में—

आमदनी

नीलामी द्वारा—

ख़र्च

तफ़रीह में—

आमदनी

पीठ-पूजा द्वारा—

ख़र्च

घुड़दौड़ में

आमदनी

अन्तिम साधन द्वारा

ख़र्च

अफ़सरों की डाली में—

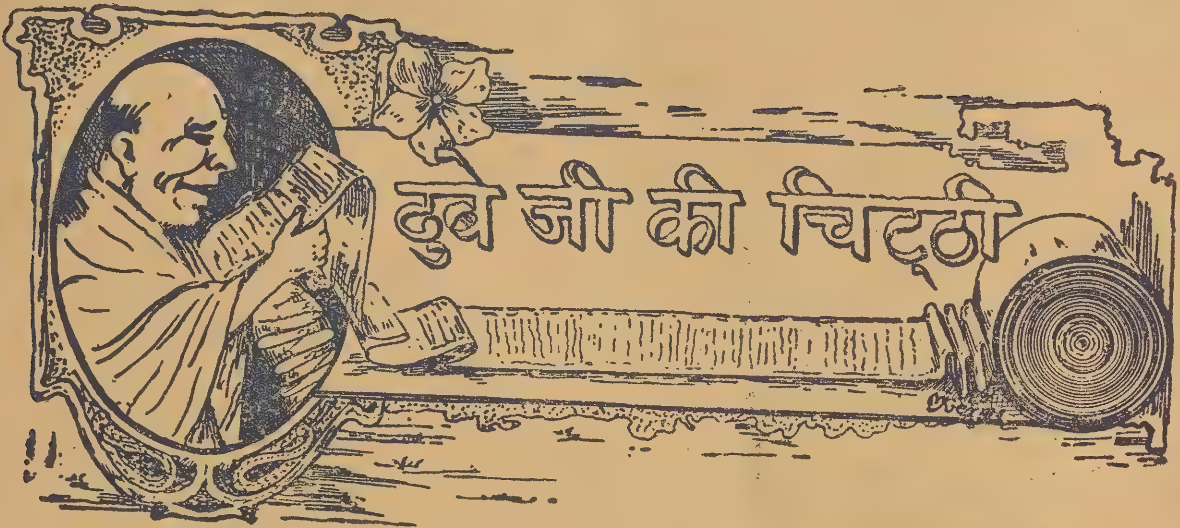

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आप "राजपूताना-अङ्क" निकालने जा रहे हैं। परन्तु ज़रा हाथ-पैर बचाए रहिएगा । "मारवाड़ी-अङ्क" प्रकाशित करके आपने मारवाड़ियों से तो शत्रुता मोल ले ही ली, अब कहीं राजपूताने के राज्यों से भी शत्रुता न कर बैठिएगा। अरे भई, तमाम ज़माने को दुश्मन बना लेना बुद्धिमानी नहीं है। इधर सरकार आप पर दाँत पीस ही रही है। मारवाड़ी भाई राबड़ी खाने के पश्चात् जब पानी पीते हैं तो आपको अवश्य कोसते हैं। वह तो बड़ी ख़ैरियत समझिए कि "कनौजिया-अङ्क" नहीं निकला, अन्यथा कनौजिया भाई दिन में जितनी बार तमाखू फाँकते, आपको गालियाँ अवश्य देते। कोई पानी पी-पीकर कोसता है, कनौजिया भाई तमाखू फाँक-फाँक कर कोसते। तमाखू फाँक कर कोसने में कितनी कटुता बढ़ती, इसका अनुमान आप स्वयम् लगा सकते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि आप देशी राज्यों को अपना मित्र बनाए रहें। उनको मित्र बनाए रखने के लिए इस बात की ज़रूरत है कि आप उनकी ख़ूब प्रशंसा करें। टॉड्स राजस्थान में जितनी ऐसी घटनाएँ हों कि जिनसे राजपूताने का गौरव बढ़ता हो, उन सबका संक्षिप्त उल्लेख रखिएगा और लिखिएगा कि वर्तमान राजपूताने के नरेश उन्हीं की सन्तानें हैं। और हई हैं, कोई झूठ थोड़ा ही है। नरेशों की सन्तानें ही राज्य करना जानती हैं, अहीर-गड़रियों की सन्तानें राज्य करना क्या जानें ? सो जनाब, ऐसी ही बातें रखिएगा। यदि आपको राजपूताने के राज्यों की ख़ूबियों का पता न हो तो मैं बताए देता हूँ। राजपूताने के नरेश पूरे राजा हैं। राजाओं का काम संसार-सुख भोगना और प्रजा की रक्षा करना है। सो जनाब, संसार-सुख भोगने में हमारे नरेश ऐसे हैं कि जिनका जवाब नहीं। संसार में सुख की केवल दो वस्तुएँ श्रीमान् ईश्वरचन्द करुणासागर ने उत्पन्न की हैं। एक तो दारू, दूसरी दारा। सो जनाब, दारू-दारा की कमी इन्हें बिलकुल नहीं है। इनसे बेचारे आज़िज रहते हैं। परन्तु करें क्या, इनके अतिरिक्त संसार में और है ही क्या ? अतएव मजबूरी से उन्हें इन सुखों को भोगना पड़ता है। यदि थोड़ी देर को मान लीजिए कि वे इन्हें छोड़ दें तो फिर क्या करें। अरे भई, अच्छा भोजन और अच्छे वस्त्र तो जिसके पास धन हो वही खा-पहन सकता है, परन्तु अच्छी दारू तथा अच्छी दारा वे केवल राजाओं के ही भाग्य में हैं। सर्वसाधारण को ये पदार्थ दुर्लभ हैं। अब यदि नरेश लोग इन्हें त्याग दें तो उनमें और सर्व-साधारण में भेद ही क्या रह गया। इसलिए यह भेद क़ायम रखने के लिए इनका उपभोग ज़रूरी हो जाता है। इसके अतिरिक्त इन बेचारों को चिन्ताएँ इतनी रहती हैं कि उनको भुलाने के लिए दारू पीना आवश्यक है। यदि ऐसा न करें तो चिन्ता में घुल-घुल के न जाने क्या से क्या हो जाएँ। और जब

दारू पी तो उसकी चिर-सङ्गिनी दाराएँ अपने आप आ कूदेंगी। उमर ख़य्याम जैसे महाकवि तक ने दारू तथा दारा की प्रशंसा में अपनी प्रतिभा का ख़ातमा कर दिया। वह तो जङ्गल में बैठ कर भी दारू-दारा माँगता था। फिर भला राजे-महाराजे राजमहलों में बैठ कर भी इन दोनों को भूल जायँ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। उमर ख़य्याम की उक्ति के अनुसार जब दारू-दारा से जङ्गल भी स्वर्ग बन सकता है तो राजमहल तो महा-स्वर्ग बन जाते हैं।

कुछ लोग सोचते हैं कि राजा-महाराजा लोग जब देखो तब विलायत की ओर भागते हैं। भगवान जाने विलायत में क्या धरा है? ऐसा सोचने वाले लोगों को कदाचित यह पता नहीं कि विलायत में अच्छी से अच्छी दारू-दारा मिल सकती हैं। वैसी हिन्दुस्तान में देखने को भी नसीब नहीं। अतः केवल दारू-दारा के कारण ये विलायत जाते हैं, किसी बुरे काम के लिए नहीं।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि राजा लोग प्रजा-पालन के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं करते। सो जनाब, यह दोषारोपण रुपए में सवा सोलह आना भी ठीक नहीं है। प्रजापालन कोई भेड़-बकरी-पालन अथवा गोपालन नहीं है, जो उनके पीछे-पीछे फिरा जाय। प्रजा अपने आनन्द से खाती-पीती मौज करती है। राजा का कर्त्तव्य प्रजा के प्रति केवल इतना है कि प्रजा में से कोई अपराध करे तो उसे अपराध के अनुसार देश-निकाला, कारावास अथवा फाँसी का दण्ड दिलवा दे। सो जनाब, होता ही रहता है और इस तत्परता से होता है कि बहुधा निरपराध भी दण्ड पा जाते हैं। अपने राम तो ऐसी तत्परता की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। तत्परता के अर्थ ही यही हैं कि जिस पर ज़रा भी हत्या करने का सन्देह हो, उसे तुरन्त फाँसी पर लटका दिया जाय। देर करने से सम्भव है, वह निकल भागे। अब रही यह बात कि वह निरपराध था, सो इसके लिए कोई क्या कर सकता है। यदि निरपराध के भाग्य में जेल जाना या मृत्यु-दण्ड पाना बदा ही है तो वह उसे अवश्य मिलेगा। उसके लिए न राजा कुछ कर सकता है, न अन्य कोई। बहुधा यह भी सुनने में आता है कि राजा लोग अपने ऐशो-आराम में प्रजा की कमाई ख़र्च करते हैं, प्रजा के हित के लिए कुछ नहीं करते। अपने राम को यह कथन भी ठीक नहीं जँचता। प्रथम तो प्रजा की कमाई कहाँ से आई। भूमि तो राजा की सम्पत्ति है। यदि ऐसा न होता तो राजा को भूपति क्यों कहा जाता। "भूमि बालिश्त भर भी नहीं और नाम पृथ्वीनाथ" ऐसा व्यक्ति भूपति कैसे कहा जा सकता है। और यदि राजा सचमुच भूपति है तो सारी भूमि उसकी है। प्रजा उस भूमि में अपने परिश्रम से जो कुछ उत्पन्न करती है, उसका उसे केवल पारिश्रमिक मिलना चाहिए, शेष सब राजा का। यह राजाओं की कृपा, सहृदयता, उदारता और त्याग है कि वे केवल कर के रूप में उसका कुछ अंश ले लेते हैं, शेष सब प्रजा को ही दे देते हैं। परन्तु इतना सब कुछ करने पर भी बेचारे राजाओं के भाग्य में यश नहीं। लोग यह शिकायत करते ही रहते हैं कि राजा लोग प्रजा का रक्त चूसते हैं, खाल खींचते हैं, मांस नोचते हैं। मानो राजा न हुए, गिद्ध हुए। जिन-जिन राजाओं के सम्बन्ध में ऐसी शिकायत हो, उनके लिए अपने राम का यह सद्परामर्श है कि वे प्रजा से सब भूमि छिनवा कर मज़दूरों से उसमें खेती कराएँ और मज़दूरों को केवल मज़दूरी के रूप में कुछ दे दिया करें। जब ऐसा होगा तब प्रजा को पता लगेगा कि राजा वास्तव में कितना प्रजावत्सल होता है। वैसे क्या ख़ाक पता चल सकता है। रही उनके ऐशो-आराम की बात, सो ऐशो-आराम राजा न करेंगे तो क्या चरकटे करेंगे। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि कहलाता है। जितने वेद, पुराण और शास्त्र के ज्ञाता हैं, वे सब राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते हैं; क्योंकि ईश्वर बुद्धि, समझ तथा तत्वदर्शन का पूरा ठेका सृष्टि के आरम्भ में इन ज्ञाताओं को दे बैठा। अतएव अब हो ही क्या सकता है। जो कुछ वे कहें उसे मानना ही चाहिए। अतएव जब यह मान लिया कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है तो यह भी मानना पड़ेगा कि उसमें कुछ ऐश्वर्य भी होना चाहिए। अब ऐश्वर्य प्रकट कैसे हो? उसके प्रकट होने का केवल यही एक ज़रिया है कि वह ऐशो-आराम में उसी प्रकार डूबा रहे, जिस प्रकार कि कछुआ पानी में डूबा रहता है। जो राजा इस प्रकार डूबा नहीं रहता, उसे अपने राम राजा मानने के लिए तैयार नहीं।

उस दिन राजपूताने के एक राज्य (कदाचित बीकानेर) के सम्बन्ध में किसी पत्र में पढ़ा था कि उसमें एक भी कॉलेज नहीं है, उस राज्य की रेलगाड़ियाँ बड़ी रही हैं, इत्यादि ! अपने राम की समझ में यह नहीं आता कि लोग ऐसे लाञ्छन लगाने के पहले दो बार भली-भाँति सोच क्यों नहीं लेते कि जो बात हम कहने जा रहे हैं, उसमें कुछ तथ्य है भी या नहीं। अपने राम का उन लेखक महोदय से प्रश्न है कि जहाँ कॉलेज हैं, वहीं कौन बड़ी भारी उन्नति हो रही है। असंख्य ग्रेजुएट्स जूतियाँ चटकाते घूमते हैं और कोई टके को नहीं पूछता। कॉलेज खोल कर जूतियाँ चटकाते हुए भ्रमण करने वाले ग्रेज्युएटों को उत्पन्न करने से क्या लाभ ? इससे यही अच्छा है कि एकाध हाई-स्कूल खोल दिया जाय, बस काफ़ी है। जिनके भाग्य में बदा होगा वे उतना ही पढ़ कर उन्नति की चोटी पर जा विराजेंगे। इस प्रकार कम से कम कॉलेज का नाम तो न बदनाम होगा। यदि स्कूल का पढ़ा व्यक्ति बेकार घूमे तो कोई चिन्ता की बात नहीं। स्कूल में बहुधा बेकारों ही की संख्या अधिक रहती है। परन्तु यदि कॉलेज से निकलने पर भी बेकार रहा तो कॉलेज की नाक ही साफ़ हो गई और उसके लिए जो कुछ व्यय किया गया वह भी व्यर्थ ही गया। इसके अतिरिक्त आजकल अधिक शिक्षा है भी ख़राब। जहाँ आदमी आवश्यकता से अधिक शिक्षित हुआ, बस फिर न तो ईश्वर को मानता है, न राजा को। ईश्वर को चाहे मान भी ले परन्तु राजा को न मानेगा—चाहे बुड्ढा ही क्यों न हो जाय ! अतएव ऐसी शिक्षा, जिससे राजा के अस्तित्व पर ही कुठाराघात हो, दो कौड़ी की। इससे तो अशिक्षित रहना ही भला है। 'सब से भले हैं मूढ़, जिन्हें न व्यापै जगत गति !" अतएव इन सब बातों पर बहुत-कुछ ग़ौर करते हुए अपने राम की राय है कि कॉलेज की शिक्षा कदापि न होनी चाहिए— बस स्कूल तक ही काफ़ी है। कॉलेज के पढ़े हुए लोगों के दिमाग़ ख़राब हो जाते हैं—स्कूल के पढ़े हुओं के बहुत ठीक रहते हैं। अब रही रेलों की बात - सो जनाब, अभी कल से रेलें हुई हैं। जब रेलें नहीं थीं तो क्या लोग यात्रा नहीं करते थे। आनन्द से बहिली, रथ, छकड़े, घोड़े, गधे, ये सब चलते थे। लोग खाते-पीते, मौज करते हुए चलते थे, महीनों यात्रा का आनन्द मिलता था। रेल की सवारी में कोई आनन्द ही नहीं। बड़ी से बड़ी यात्रा हुई, तो तीन-चार दिन में समाप्त—क्या आनन्द मिला। सच पूछिए तो रेलगाड़ी होना ही नहीं चाहिए। भारतवर्ष की पुरानी सवारियाँ ही श्रेष्ठ सवारियाँ हैं। यदि रेल चला दी गई तो यह केवल इसलिए कि ज़रा जल्दी यात्रा समाप्त हो जाय ! सो जनाब, या तो जल्दबाज़ी ही कर लीजिए या आराम ही ढूँढ़ लीजिए। रेल की सवारी में आराम मिलता भी कहाँ है? चाहे जितना आराम हो, फिर भी कष्ट रहता ही है। अपने राम को तो रेल में कभी आराम नहीं मिलता। यदि और कोई कष्ट न हुआ तो रेल के तेज़ चलने ही से कष्ट मिलता है। भगवान जाने रेल इतनी तेज़ क्यों चलती है ? धीरे चले तो क्या निश्चित स्थान तक न पहुँचे ? देर-सबेर पहुँच ही जाय ! अपने राम को तो राजपूताने के राज्यों की रेलें पसन्द हैं कि यदि रास्ते में कहीं ख़रबूज़ा, आम या तरबूज़ देखा, तो झट चलती ट्रेन से उतर पड़े और उसे लेकर फिर चढ़ गए। कितनी सहूलियत है। यदि किसी स्टेशन पर गाड़ी रुकवाने की आवश्यकता हुई तो गार्ड साहब से कह दिया कि "ज़रा ठहरिए साहब, हजामत बनवा लेने दीजिए।" गार्ड साहब झण्डियाँ थामे खड़े हैं और अपने राम हजामत बनवा रहे हैं—यह शान ! यात्री लोग खिड़कियों में से झाँक कर देख रहे हैं कि एक आदमी के लिए पूरी रेल-गाड़ी रुकी खड़ी है। निश्चय यह कोई बड़ा आदमी है। हजामत बनवा कर उठे तो एक चवन्नी गार्ड साहब के हवाले की और अपने दर्जे में जा बैठे। अब बताइए, इसमें आनन्द है या उसमें, कि मोटर-गाड़ी में स्टेशन पर आए और ज्योंही प्लेटफ़ॉर्म पर पहुँचे, गाड़ी छूट गई। सामने देख रहे हैं कि चली जा रही है, परन्तु एक मिनट के लिए रुकवा नहीं सकते। यह तो घोर कष्ट है। इससे राजपूताने की रेलें लाख दर्जे अच्छी हैं।

अब रही सफ़ाई की बात, सो सफ़ाई तो होती ही है और यदि न भी हो तो मुसाफ़िरों को स्वयम् सफ़ाई का ख़्याल रखना चाहिए। कुत्ता भी जहाँ बैठता है, वह जगह दुम से साफ़ कर लेता है, तो क्या मनुष्य दो हाथों के होते हुए इतना भी नहीं कर सकता। यह

(शेष मैटर १४२ पृष्ठ में देखिए)

वर्ष-प्रवेश

इस अङ्क के साथ 'चाँद' अपने जीवन के दसवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है, यह हमारे लिए बड़े हर्ष और अभिमान की बात है। जिन आपत्तियों में होकर हमें पिछले वर्ष गुज़रना पड़ा है, वे हमारे पाठकों तथा ग्राहकों से छिपी हुई नहीं हैं। चारों ओर से इस संस्था पर जो प्रहार हुए हैं, वे किसी को भी विचलित कर सकते हैं; परन्तु हमने उस आदर्श को सदा सामने रखने का प्रयत्न किया है, जिसके लिए 'चाँद' का जन्म हुआ था। इतनी विपत्तियों और कठिनाइयों के होते हुए भी हम 'चाँद' को देश तथा समाज के लिए उपयोगी बनाने में यथाशक्ति प्रयत्नशील रहे हैं और अन्त तक हम इसी प्रकार ध्येय की प्राप्ति के लिए उद्योग करते रहेंगे। हम इस स्थल पर यह नहीं भूल सकते कि हमारी इस सफलता में हमारे लेखकों, कवियों, चित्रकारों तथा ग्राहकों का बड़ा हाथ रहा है और एतदर्थ हम उन्हें धन्यवाद देते हैं।

इस वर्ष से हम 'चाँद' में अनेक उपयोगी परिवर्तन कर रहे हैं। हम 'चाँद' द्वारा अपने ग्राहकों तथा पाठकों के साथ निकटतर और अधिक घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। हम 'चाँद' को ऐसा बनाना चाहते हैं कि पाठक तथा ग्राहक प्रत्येक विषय में उस पर विश्वास कर सकें, जिससे कि 'चाँद' प्रत्येक रूप में सम्पूर्ण बन सके। हमने उसमें कई नए स्तम्भों का समावेश किया है। 'पुरस्कार-प्रतियोगिता', 'सिनेमा तथा रङ्गमञ्च', 'संसार-समाचार' आदि कई ऐसे स्तम्भ हैं, जो हिन्दी के मासिक पत्रों के लिए बिल्कुल नए हैं और जिनका, हमें लिखते हर्ष होता है, हमारे ग्राहकों तथा पाठकों ने समुचित आदर किया है। यही नहीं, हमारा विचार भविष्य में अन्य उपयोगी परिवर्तन करने का भी है। परन्तु हमारी ये योजनाएँ तभी पूर्ण हो सकती हैं, जब कि हमारे ग्राहक तथा पाठक पूर्व की भाँति ही हमारी सहायता करते रहें। हमें आशा है कि हमारे इस पुण्य-कार्य में सभी यथाशक्ति हमारा हाथ बटाएँगे।

—सम्पादक 'चाँद'

❀ ❀ ❀

बूँदी, प्राचीन और वर्तमान

इस समय चौहान वंश का राज्य केवल बूँदी और कोटा में ही है। एक ज़माना था, जब अजमेर से देहली तक इनका राज्य फैला हुआ था और वीसलदेव जैसे विद्वान, आना जैसे परोपकारी और पृथ्वीराज या रायपिथौरा जैसे शूरवीर इस कुल को अलङ्कृत करते थे। हिजरी सन् ६३ अर्थात सन् ६८४ में सर्वप्रथम मुसलमानों का राजपूताने पर आक्रमण हुआ था, जिसको चौहान वंश के सूरमा माणिकराय ने रोका था। इसके पश्चात् भी कई बार मुसलमानों की बढ़ती हुई विजय-बाढ़ को चौहानों ने ही हटाया था। पानीपत के मैदान में पृथ्वीराज जब स्वर्गवासी हो गए

तब ही मुसलमानों का भारतवर्ष पर अधिकार स्थापित हो सका था। वास्तव में मुसलमानों के विरुद्ध देश-रक्षा के लिए जब भी राजपूतों ने युद्ध किया, तभी या चौहानों के या मेवाड़ के शिशोदियों के नेतृत्व में किया।

इस समय इस वंश का हाड़ोती अर्थात् बूँदी और कोटा पर राज्य है। सिरोही की छोटी सी रियासत भी इसी वंश की एक शाखा के राज्य में है। बूँदी रियासत एक छोटी सी रियासत है। इसका क्षेत्रफल २,२२० वर्ग-मील है और जनसंख्या दो लाख से कुछ ऊपर है। रियासत की सालाना आमदनी भी १५ लाख से ऊपर कभी न हुई। इस समय बूँदी राज्य के लाखेरी नामक गाँव के पास सीमेण्ट बनाया जाता है, जिससे लाखों रुपए साल की आमदनी होती है, परन्तु यह सब आय एक विदेशी कम्पनी की जेब में जाती है। रियासत से उस कम्पनी ने सीमेण्ट की पहाड़ी और उसके निकटवर्ती काम में आने वाली ज़मीन एक लम्बी लीज़ पर ले रक्खी है।

इतनी छोटी सी रियासत होते हुए भी मध्यकाल में बूँदी की बड़ी प्रतिष्ठा थी। किसी मुसलमान बादशाह ने बूँदी वालों को किसी रणाङ्गण में नहीं हराया था। अकबर ने बूँदी के राव सुरजन के साथ जो सन्धि की थी, ऐसी सन्धि किसी रियासत के साथ नहीं की। बूँदी का राजवंश मुग़लों को डोला नहीं देता था। बूँदी राज्य पर औरङ्गज़ेब ने भी जज़िया-कर नहीं लगाया था। किसी भी बूँदी-नरेश को अटक पार करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता था। नौरोज़ा में बूँदी राज-वंश की स्त्रियाँ दूकानें नहीं लगाती थीं। दीवानेआम में बूँदी-नरेश और उनके पुत्र सशस्त्र जा सकते थे। उनके घोड़ों पर शाही दाग़ नहीं लगाया जाता था। दिल्ली के लाल दरवाजे तक उनका नक्क़ारा बजता हुआ जाता था और बादशाह के सामने उनको सिजदा नहीं करना पड़ता था।

बूँदी राजवंश अपनी शूरवीरता, दानशीलता, विद्यानुराग और धार्मिकता के लिए प्रसिद्ध था। मुग़लों के ज़माने में कई स्थानों पर इस वंश ने अपनी अप्रतिभ वीरता का परिचय दिया था। बूँदी के चार नरेशों ने वृद्धावस्था में अपने ज्येष्ठ पुत्रों को राज्य-सिंहासन सौंप कर संन्यास ग्रहण किया था। नारायणदास, देवा, राजा छत्रसाल और उम्मेदसिंह ये—चारों नरेश इस त्याग और धर्म-प्रेम के लिए बूँदी राज्य में अब भी बड़े श्रद्धा-भाव से स्मरण किए जाते हैं। राव सुरजन और उनके वंशजों ने बहुत अर्से तक बनारस पर मुग़लों की ओर से राज्य किया था। यही कारण था कि उस ज़माने में भी काशी, काशी बनी रही। इस समय भी काशी में राज-मन्दिर नामक बूँदी वालों का मोहल्ला बसा हुआ है, जहाँ १,००० से ऊपर बूँदी के लोग निवास करते हैं। प्रायः सब बूँदी-नरेश विद्या के बड़े भक्त थे। बूँदी में अच्छे-अच्छे पण्डितों को आश्रय दिया जाता था और बूँदी के कितने ही विद्यार्थियों को काशी जाकर विद्या पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। इसलिए आज से कुछ अर्से पहले तक बूँदी छोटी काशी कहलाती थी।

बूँदी-नरेशों की न्यायप्रियता का एक ही उदाहरण पर्याप्त है। राव रतन के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ का चरित्र अच्छा नहीं था। वे एक ब्राह्मणी से गुप्त प्रेम करते थे और रात में उसके मकान पर चले जाया करते थे। एक दिन उसके पति को पता लग गया और उसने गोपीनाथ को अपने मकान में ही मार डाला। हत्या करके वह सीधा राव रतन के पास पहुँचा और कहा—"यदि किसी के मकान में चोर घुस जावे और कुकर्म करे तो क्या करना चाहिए?" राव रतन ने कहा—"जान से मार डालना चाहिए।" थोड़ी देर बाद ही राव रतन के सामने उसके प्रिय पुत्र गोपीनाथ की लाश आ गई, परन्तु उस सत्यवादी और यशोधन नरेश ने न पुत्र की मृत्यु पर एक आँसू गिराया और न हत्यारे ब्राह्मण के प्रति रोष प्रकट किया। बूँदी के ही इतिहास में नहीं, किन्तु संसार के इतिहास में यह कैसा अपूर्व दिन था कि एक न्यायी राजा प्रजा के एक व्यक्ति द्वारा अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु को इस प्रकार जी मसोस कर सह जाय।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में बूँदी ने अङ्गरेज़ों की शरण ग्रहण की और तभी से इसकी सम्पदा तथा कीर्ति क्षीण होने लगी। कर्नल टॉड ने अङ्गरेज़ों की तरफ़ से रावराजा रामसिंह के साथ सन्धि की थी, जो उस समय सात-आठ वर्ष के बच्चे थे। रामसिंह जी ने अपने वंश की मर्यादा की अच्छी रक्षा की। उनके राज्य-

काल में परम्परागत न्याय, विद्यानुराग, प्रजापालन और विद्वदाश्रय चलता रहा, परन्तु दुर्दैव नहीं चाहता था कि यह समय बना रहता। गोरी सरकार की छत्र-छाया में नरेशों को न वाह्य आक्रमणों की चिन्ता रही, न आन्तरिक उपद्रवों का भय। युद्धों का अन्त हो ही गया था और राज-काज दीवान ही कर सकता था। इस अवस्था में शक्तिशाली, सम्पत्तिशाली और युवा नरेश चाटुकार स्वार्थी लोगों की सङ्गति में पड़ कर क्या करने लगे, इसका हम क्या वर्णन करें। पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। गत दो पीढ़ी से बूँदी-नरेशों ने राज-काज देखना छोड़ दिया और सब कुछ दीवान तथा उच्च कर्मचारियों के ही सिपुर्द कर दिया। सम्भव है, सर रघुनाथ या सर कान्तिचन्द्र जैसे दीवान मिलते रहते तो शासन की नैया भँवर में न पड़ती। राजा और प्रजा दोनों के दुर्भाग्य से दीवान भी ऐसे मिलते रहे, जिन्होंने नरेशों के विश्वास का दुरुपयोग किया और प्रजा की सरलता तथा मूर्खता से अनुचित लाभ उठाया। मेघ-भाण, धन्नालाल, माणकलाल, भट्टाचार्य और प्रनासकर, सब ने समय-समय पर अपनी तूती बजाई, लेकिन बजी किसी से भी अच्छी नहीं। पिछले पचास वर्ष से बूँदी का राज्य-प्रबन्ध इतना शिथिल पड़ गया है कि शायद ही किसी राजपूताने की बड़ी रियासत का ऐसा बुरा हाल हो।

बूँदी में बन्दोबस्त तो अभी हुआ ही नहीं। अभी थोड़े अर्से पहले एक महाशय जरीब लेकर दस-बीस गाँवों में घूमे थे और कहा जाता था कि वे बन्दोबस्त कर रहे हैं। बूँदी के चीफ़ जज को २५०) महीना मिलता है और वे बड़े सज्जन हैं, परन्तु बूँदी का दण्ड-विधान व्यवस्थित नहीं है। न वहाँ ताज़ीरात हिन्द का पूरा गुज़र है, न स्मृति और निबन्धों का पूरा आधिपत्य है। राज्य का कोई भी महकमा सुव्यवस्थित और सुसङ्गठित नहीं है। रेवेन्यु, पुलिस, सेना, जुडीशल, ज़कात, जङ्गल सबकी दशा शोचनीय है। रियासत भर में केवल एक स्कूल है, जिसमें दो-तीन मास्टर हैं और सौ के लगभग विद्यार्थी। जब लड़कों की शिक्षा का यह हाल है,तब स्त्री-शिक्षा का उल्लेख करना व्यर्थ ही है। राज्य भर में केवल बूँदी में एक शफ़ाख़ाना है, जिसमें दवाइयों की सदा कमी रहती है। शेष राज्य में चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं। भूतपूर्व रावराजा साहब जब-जब बीमार हुए थे तो उनके वास्ते भी डॉक्टर कोटा से जाया करता था। रियासत भर में केवल एक पक्की सड़क है, जो कुछ अर्से पहले ही, जब कोटे के चीफ़ इन्जिनियर बूँदी के इन्जिनियरिङ्ग विभाग के निगराँ बनाए गए, तब उन्होंने आने-जाने के लिए बनवाई है। पिछले सात वर्ष से प्रबन्ध और भी बिगड़ गया है। वर्तमान महाराव राजा साहब जब गद्दी पर विराजे तो लोगों को आशा हुई थी कि प्रबन्ध शायद सुधरेगा और राज-काज की अधिक देख-रेख की जावेगी, परन्तु यह आशा विफल हुई। यहाँ तक अन्धाधुन्धी मची कि गत जून मास में दिन-दहाड़े हज़ारों आदमियों के सामने रियासत की पुलिस ने पुरोहित रामनाथ जी कुदाल की अत्यन्त निर्दयता और नृशंसता के साथ हत्या कर डाली, जिसके फल-स्वरूप ९ दिन तक राजधानी में हड़ताल रही और ऐसी हड़ताल रही कि कहीं क्या हुई होगी! देशी राज्यों में हड़ताल से बढ़ कर राजा और प्रजा के लिए अशुभ बात और नहीं हो सकती, पर बूँदी में यह भी दृश्य देखे गए।

सुनते हैं कि अब बूँदी में एक अङ्गरेज़ अफ़सर आने वाला है। यदि ऐसा हुआ तो वह राजा और प्रजा दोनों को एक तरफ़ रख देगा और जिस प्रकार प्रजा ने अभी रावराजा साहब के प्रति रोष प्रकट किया, वैसा उसके ख़िलाफ़ नहीं हो सकेगा। अच्छा होता कि प्रजा महाराव राजा साहब को ही अपने शासन का ढङ्ग बदलने पर विवश करती और घर की लड़ाई में एक तीसरी पार्टी को जज न बनाती।

❀ ❀ ❀

विलायती सम्बन्ध

यह बात मानी जा चुकी है कि भारत का भावी शासन-विधान फ़ेडरल-शासन अर्थात् संयुक्त राज्य होगा। राजपूताने की सब रियासतें इसमें सम्मि-लित होने को तैयार हैं। फ़ेडरल व्यवस्थापिका सभा में रियासतों के कितने मेम्बर होंगे और वे किस प्रकार चुने जावेंगे तथा किन विषयों में वे मत दे सकेंगे, यह

अभी पूर्ण-रूपेण निश्चित नहीं हो पाया है, परन्तु आशा है कि इसके निर्णय में कोई भारी अड़चन उपस्थित नहीं होगी। रियासतों का सब से अधिक आश्चर्यकारी विचार यह है कि वे फ़ेडरेशन में सम्मिलित होकर भी अपना सम्बन्ध इङ्गलैण्ड के बादशाह के साथ बनाए रहना चाहते हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि भारतीय सरकार से सम्बन्ध रखने में या तो नरेशगण अपनी हीनता समझते हैं या उनको यह भय है कि शायद किसी दिन उनका अस्तित्व ही न रहे। हमारे ख़्याल से केवल भारतीय सरकार से ही सब प्रकार का सम्बन्ध रखने में देशी नरेशों का अधिक गौरव है और इसमें उनकी अधिक प्रतिष्ठा है। भय का तो कोई कारण ही नहीं, भारतीय नरेश और उनकी प्रजा दोनों एक ही भूमि में पले हैं, यदि शासन सन्तोषजनक बना रहा और राजा लोग प्रजा की भलाई में निरन्तर दत्त-चित्त रह कर अपने कर्त्तव्य का भली प्रकार पालन करते रहे, तो प्रजा उनको अपने हृदय का हार समझेगी। इस अवस्था में न उनको अपनी प्रजा से कोई भय है और न भारतीय सरकार से कोई डर। परन्तु यदि उनका शासन ठीक नहीं है और प्रजा को कष्ट है, तो इङ्गलैण्ड का बादशाह भी उनकी रक्षा नहीं कर सकता। बादशाह से सम्बन्ध रखना वास्तव में इङ्गलैण्ड के प्रत्येक बालिग़ लड़के-लड़की की मातहती करना है, क्योंकि बादशाह हर काम में केबिनेट की सलाह मानता है। केबिनेट पार्लियामेण्ट की एक समिति है और पार्लियामेण्ट को इङ्गलैण्ड के सब बालिग़ स्त्री-पुरुष चुनते हैं।

अब तक नरेशों ने इङ्गलैण्ड से सीधा सम्बन्ध रक्खा या भारतीय सरकार से उनका सम्बन्ध रहा, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। अधिकांश रियासतों की सन्धियाँ, जो मुग़लों या मराठों के साथ थीं, वे ही भारतीय सरकार के साथ हैं और जो ख़िराज मुग़लों या मराठों को दिया जाता था, वह भारतीय सरकार को दिया जाता है। घरेलू या सार्वदेशिक प्रश्न सब फ़ेडरल सरकार के सामने पेश होंगे, फिर हमारी समझ में नहीं आता कि नरेशगण विलायती सम्बन्ध को कौन से रोग की महौषधि समझते हैं।

राजपूताना बोर्ड

पिछले दो वर्ष से अजमेर में राजपूताना इण्टरमीडियट और हाईस्कूल एग्ज़ामिनेशन बोर्ड स्थापित हो गया है। राजपूताने में छोटी कक्षाओं का परीक्षक बोर्ड ही नहीं, बल्कि एक अच्छा विश्वविद्यालय स्थापित होना चाहिए, परन्तु हमारे ख़्याल से इस बोर्ड की स्थापना में बड़ी जल्दी की गई है। राजपूताने में अभी शिक्षा की बड़ी कमी है। साक्षरता ही मुश्किल से ५ प्रतिशत के लगभग है और ग्रेजुएट तो प्रत्येक रियासत में केवल इने-गिने मिलते हैं। बोर्ड ने जो परीक्षा में सम्मिलित होने के नियम बनाए हैं, वे इतने कड़े और उलझनदार हैं कि परीक्षार्थी अर्से तक उनमें फँसे रहते हैं। एक लम्बी-चौड़ी लिखा-पढ़ी होने के बाद परीक्षा में सम्मिलित होने की इजाज़त मिलती है। राजपूताना भर में केवल दो-तीन कॉलेज ऐसे हैं, जहाँ इण्टरमीडियट से ऊपर पढ़ाई होती है और वे भी भारत के अच्छे कॉलेजों में गिने जाने लायक़ नहीं हैं। यही कारण है कि बोर्ड की परीक्षा, विधि-निरीक्षण-शैली और शिक्षा-नीति उन्नत एवं वैज्ञानिक नहीं है।

बोर्ड एक प्रकार से उपयोगी बन सकता था। राजपूताने की सब रियासतों में राज-भाषा हिन्दी है। इसलिए यदि बोर्ड इण्टरमीडियट तक हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बना देता और हिन्दी-विद्वानों की एक समिति नियत करके पाठ्य पुस्तकों की रचना करवाता तो यह बड़ा स्तुत्य कार्य होता। परन्तु इस बोर्ड के जन्मदाता अङ्गरेज़ या अङ्गरेज़-भक्त लोग थे और वे भी ऐसे लोग, जिन्होंने शिक्षा-माध्यम की महत्ता पर शायद कभी विचार भी नहीं किया होगा। इसलिए उनको हिन्दी का ख़्याल ही कब आ सकता था! इस समय बोर्ड का कार्य है परीक्षा लेना और नतीजा प्रकट करना। इससे राजपूताने के कुछ मास्टर लोगों को भी परीक्षक बनने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, परन्तु इसके अतिरिक्त राजपूताना बोर्ड की स्थापना से और क्या लाभ हुआ, सो प्रकट नहीं होता।

आर्थिक सङ्कट

विश्वव्यापी वर्तमान आर्थिक सङ्कट से राजपूताना कैसे मुक्त रह सकता था? किसी-किसी राज्य की स्थिति तो ब्रिटिश भारत से कहीं अधिक शोचनीय है। राज्यकोष, कोऑपरेटिव सोसाइटियाँ, ज़कात, जङ्गल, माल (रेवेन्यू) आदि विभागों पर इस समय सङ्कट है। अनेक प्रकार की कठोरताओं से किसानों के पशु, ज़ेवर, मकान और यहाँ तक कि बच्चे-बच्ची बिका कर कई रियासतों ने अपनी मालगुज़ारी तो अधिकांश वसूल कर ली है, परन्तु सन् ३२ में इन कठोरताओं से भी सफलता प्राप्ति की आशा नहीं है। कोऑपरेटिव सोसाइटियों की सब पूँजी क़र्ज़ में दी हुई है और किसानों से वसूली की कोई सूरत नज़र नहीं आती। सब विभागों की आय घट जाने से और भविष्य में और भी अधिक घटने की सम्भावना से कर्मचारियों का वेतन चुकाना भी रियासतों के लिए कठिन हो रहा है। कई रियासतों ने कमी-कमिटियाँ बैठाई हैं और कई ने हाकिमों के भत्ते आदि कम कर दिए हैं। जिन चीज़ों पर रियासतें टैक्स लगा कर अपनी आय बढ़ा सकती थीं, उन पर टैक्स लगाने का सरकार-हिन्द पहले ही प्रस्ताव कर चुकी है और जब यह पंक्तियाँ प्रकाशित होंगी तब शायद नए टैक्स लग भी जावेंगे। उधर रियासतों में जो कुछ थोड़ा-बहुत व्यापार था सो भी मटियामेट होता जाता है। अन्न का व्यापार अत्यन्त शिथिल है, अफ़ीम का वाणिज्य बन्द ही है, सरकार की विनिमय-नीति के कारण मोहरों का व्यापार सदा सन्दिग्ध रहता है, राजपूताने में राजनैतिक जागृति के अभाव के कारण विदेशी कपड़ा ख़ूब चलता है, अतः खादी का भी व्यापार सन्तोषजनक उन्नति नहीं कर पाता। इस वाणिज्य-शिथिलता की सबसे कड़ी मार अभागे किसानों पर है। इस समय राजपूताने में ज्वार का भाव प्रायः ॥।) मन और गेहूँ का भाव १॥) मन के लगभग है, कहीं दो आने ऊँचे हैं और कहीं दो आने नीचे। इस भाव पर भी अधिक ख़रीद-फ़रोख़्त नहीं हो रही है। राजपूताने की भूमि की औसत उपज २५ फ़ी बीघे से भी कम है और लगान १॥) फ़ी बीघा है। इस अवस्था में किसान अपनी सारी कमाई केवल लगान में दे दें तब कहीं उनका केवल राज से पीछा छूट सकता है। परन्तु राज के लगान के अतिरिक्त उनको बीज देना होता है, अपने वर्ष भर के खाने के लिए अन्न बचाना होता है, अपने दो-चार कपड़ों के वास्ते रुपए की आवश्यकता होती है और छोटे-मोटे कई घरू कामों के वास्ते भी धन की ज़रूरत पड़ती है।

यदि यह स्थिति दो-तीन वर्ष और बनी रही तो रियासतों को लगान आधे से भी कम कर देना पड़ेगा और नरेशों का निजी ख़र्च तथा राजकर्मचारियों का वेतन भी उसी के अनुसार कम देना होगा।

* * *

अङ्गरेज़ अफ़सर

ब्रिटिश भारत में अङ्गरेज़ अफ़सरों की संख्या घटती जाती है और भारतीय भारत में उनकी संख्या बढ़ती जाती है, विशेषकर राजपूताने में आजकल अङ्गरेज़ अफ़सरों का बहुत दौरदौरा है। जोधपुर बहुत समय से अङ्गरेज़ों की विनोद-भूमि है। वहाँ के रेलवे-विभाग में तो बड़े-बड़े अफ़सर अङ्गरेज़ होते ही हैं, परन्तु रेवेन्यू, फ़ौज, होम आदि महकमे भी अङ्गरेज़ों के अधीन हैं। स्वर्गीय कर्नल सर प्रताप अङ्गरेज़ों के बड़े भक्त थे और सर सुखदेव तो अङ्गरेज़ जाति के अनन्य उपासक हैं ही। इन्हीं के ज़माने से जोधपुर में अङ्गरेज़ों का प्रभुत्व जमा है। अभी कुछ अर्से पहले तक जोधपुर के दीवान भी एक अङ्गरेज़ सज्जन थे। कर्नल विण्डम निस्सन्देह बड़े योग्य और भले आदमी थे, परन्तु प्रश्न तो यह है कि विस्तृत मारवाड़ राज्य और विशाल भारत-भूमि पर क्या योग्य हिन्दुस्तानी मिलते ही नहीं, जो अङ्गरेज़ों के समान उच्च महकमों का प्रबन्ध कर सकें। जोधपुर में शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर, जसवन्त कॉलेज के प्रिन्सिपल, नोबल्स स्कूल के हेडमास्टर तक भी अङ्गरेज़ हैं। जयपुर में स्वर्गीय महाराज साहब के ज़माने में तो केवल एक-दो ही अङ्गरेज़ नज़र आते थे और वे विशेष आवश्यकता की पूर्ति के लिए, परन्तु "नव-शिक्षित, नव-दीक्षित, नवाभिषिक्त और नवयुवक" वर्तमान महाराजा साहब ने अङ्गरेज़ों

की संख्या बहुत बढ़ा दी है। इस समय स्टेट सेक्रेटरी अङ्गरेज़ है; मिलिटरी सेक्रेटरी अङ्गरेज़ है, आई० जी० पुलिस अङ्गरेज़ है, होम-मेम्बर अङ्गरेज़ बुलाया जा रहा है और रेवेन्यू-मेम्बर अङ्गरेज़ है ही। इञ्जिनियरिङ्ग विभाग में चीफ़ इञ्जिनियर, इलेक्ट्रीकल इञ्जिनियर और असिस्टेण्ट इञ्जिनियरगण सब अङ्गरेज़ हैं। कुछ अर्से पूर्व महाराज साहब के पर्सनल सेक्रेटरी का पद भी एक अङ्गरेज़ महिला द्वारा अलंकृत किया गया था। बीकानेर में अङ्गरेज़ों की कम गुज़र होती है। उदयपुर में डॉक्टर और इञ्जिनियर दोनों अङ्गरेज़ हैं। अचम्भे की बात तो यह है कि प्रतापगढ़ जैसी छोटी सी रियासत में भी एक अङ्गरेज़ दीवान है। यह अङ्गरेज़ महाशय पहिले अर्से तक जयपुर रियासत में पुलिस के अफ़सर रह चुके हैं। टोंक में इस समय अङ्गरेज़ ही सब कुछ हैं और असन्तुष्ट प्रजा की माँग को यदि सरकार-हिन्द ने पूर्ण कर दी और बूँदी में कोई अङ्गरेज़ अफ़सर आ गया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कोटे में कुछ वर्ष पहले कई अङ्गरेज़ मूर्तियाँ नज़र आती थीं, लेकिन अब सिर्फ़ चीफ़ इञ्जिनियर ही विराजते हैं। आपकी डेढ़ टाँगें कोटे में रहती हैं और आधी टाँग बूँदी में। इसीलिए हिसाब से १५००) कोटा से मिलते हैं और ५००) बूँदी से। इतनी संख्या में अङ्गरेज़ अफ़सरों का रियासतों में होना दो बातें सिद्ध करता है। या तो पिछले एक हज़ार वर्ष के शासन से राजपूताने के नरेश अपनी प्रजा को योग्य नहीं बना सके कि उसमें अपनी रियासतों के हाकिम बनने के योग्य व्यक्ति मिल सकें या उनको अपनी प्रजा पर विश्वास नहीं और अङ्गरेज़ों को वे अत्यन्त विश्वस्त और सहज शासक समझते हैं।

दुबे जी की चिट्ठी

(१४६वें पृष्ठ का शेषांश)

पक्की बात है कि सफ़ाई के लिए आदमी अवश्य नियुक्त होंगे, परन्तु यदि कभी-कभी वे सफ़ाई करना भूल जायँ तो मुसाफ़िरों को स्वयम् सफ़ाई कर लेना चाहिए। रेल का किराया निश्चित स्थान तक पहुँचाने के लिए होता है, इसलिए नहीं होता कि आप ज़माने भर के नख़रे बघारिए। राजा एक-एक भङ्गी और भिश्ती के पीछे कहाँ तक दौड़ा-दौड़ा फिरे। वह राज्य का काम देखे या रेलगाड़ियों की टट्टियाँ झाँकता फिरे। जो इस काम के लिए नियुक्त हैं, वे अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करते तो भगवान उनसे समझेगा। भगवान चाहेगा तो सारी नमकहरामी फूट-फूट कर निकलेगी, परन्तु बेचारा राजा क्या करे। राजा ने तो आदमी नियुक्त कर दिया और उसे कभी-कभी तनख़्वाह भी दे देते हैं, परन्तु फिर भी यदि आदमी अपना काम न करे तो उसका न्याय केवल भगवान ही कर सकता है, मनुष्य तो कर ही नहीं सकता। हाँ, जो वस्तुएँ रात-दिन अपनी आँखों के सामने अथवा अपने व्यवहार में रहती हैं, उनको राजा भली-भाँति ठीक रख सकता है—उदाहरणार्थ मोटरें, स्पेशल ट्रेनें! उनमें कोई किसी प्रकार का दोष निकाल दे तो जानें। कारण क्या है? कारण यही कि वे अपनी आँखों के सामने रहती हैं। जो वस्तु राजा की आँखों के सामने या उसके व्यवहार में नहीं रहती, उसे ठीक-ठीक रखने का उत्तरदायित्व राजा पर हो ही नहीं सकता।

इसी प्रकार की अन्य बातें हैं। लोग मुफ़्त में राजाओं को बदनाम करते हैं, तत्व की बात समझते नहीं।

सम्पादक जी, मैंने ये बातें इसलिए लिखी हैं कि दूसरों की तरह आप भी ग़लती न कर जाएँ और व्यर्थ में बेचारे प्रजावत्सल, दयानिधान, इत्यादि-इत्यादि राजाओं को दोष न दें।

भवदीय,
—विजयानन्द (दुबे जी)

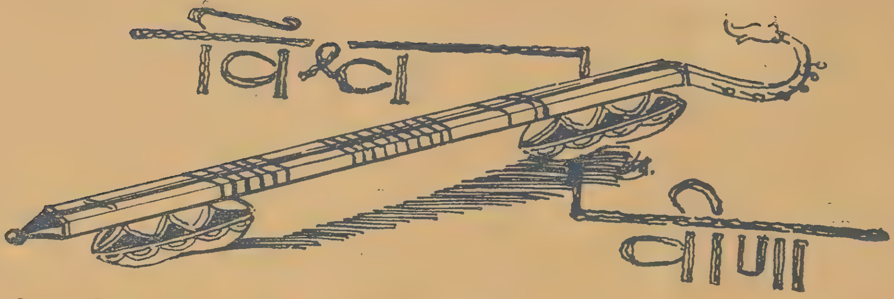

बीकानेर-नरेश को खुली चिट्ठी

आपके यहाँ बजट की कहानी ही निराली है। सन् १९२८-२९ की साधारण आय के १,१९,१९,००० रु० में से ८,००,८८० रु० अर्थात् ७ प्रतिशत शिक्षा के लिए निर्धारित किए गए। इस रुपए में रईसों की शिक्षा भी आ गई। सारे भारत में यह दुन्दुभी बजाई गई कि प्रारम्भिक शिक्षा सबके लिए आवश्यक हो जाय। तत्पश्चात उसी वर्ष सभा के अधिवेशन में यह निश्चय किया गया कि अगले ६ वर्ष तक सालाना ५ प्रारम्भिक पाठशालाएँ खोली जायँ। मन्त्री महोदय ने आँसुओं की धारा बहाई कि शिक्षित उस्तादों की कमी है। शिक्षा के लिए सारी रियासत में एक भी स्कूल या कॉलेज नहीं खोला गया। आपके २३,५०० वर्गमील के राज्य में एक भी डिग्री कॉलेज नहीं है। एक इण्टर कॉलेज जन-साधारण के लिए और एक हाई-स्कूल रईसों के लिए है। इसके अतिरिक्त कुछ मिडिल स्कूल सैकड़ों मील के फ़ासले पर स्थित हैं। रियासत के २३,५०० वर्गमील के विस्तार में २,७०० शहर और ग्रामों में केवल ७१ शिक्षालय ही हैं अर्थात् ३८ गाँव या ३३ वर्गमील में एक स्कूल। सम्भवतः बालक वायुयानों में जाते-आते होंगे।

१,८७,०९३ अर्थात् कुल आमदनी का १·६ प्रतिशत औषधालयों के लिए है। इसमें रेलवे के अस्पताल भी आ गए। कुल ३१ अस्पताल हैं, जिनकी औसत ७८० वर्गमील में १ अस्पताल की है। यह श्रीमान की पैतृक रक्षा का दूसरा उदाहरण है।

१४,९७,२८४ रु० प्रत्यक्ष रूप से और ३,३३,७२० रु० अप्रत्यक्ष रूप से महल, बग़ीचे, मोटर, सवारी, भेंट, दान, मन्दिर, उत्सव इत्यादि में महाराजाधिराज के स्वयम् ख़र्च के लिए हैं और ६,०१,९४२ रु० महाराज के रनिवास और बच्चों की शादी आदि के लिए असाधारण आय में से ख़र्च के लिए हैं। यह बड़ा ख़र्च साधारण आय का लगभग २३ प्रतिशत है। यह आपके नरेन्द्र-मण्डल की शिक्षानुसार है कि स्वयम् के ख़र्च ५ प्रतिशत तक हों।

श्रीमान अपने को दृढ़ अनुभवी शासक कहने का घमण्ड करते हैं। परन्तु क्या हरेक विभाग के भीषण दुराचारों से परिचित हैं। उनको मिटाने के लिए हर साल सरकार नियम बनाती है, परन्तु जहाँ तक सम्भव होता है, वैसी ही हालत बनाए रखने की सरकार की आदत सी पड़ गई है और यदि कभी दुखी प्रजा द्वारा मामला ज़ोर पकड़ गया तो अपराधी लूट के माल समेत रियासत से निकल जाता है। क्या यही बड़े शासन-कर्ता व दृढ़ शासक का नियम है?

क्या कभी श्रीमान ने अपनी प्रजा को स्वयम् शक्तिशाली रियासत के अन्यायों को पेश करने का अवसर दिया है? क्या कभी आपने इसकी पूछ-ताछ की है कि किस प्रकार न्याय बेचा जाता है और बड़ी रिश्वत देकर ज़ुल्म ढक दिया जाता है? क्या आप जानते हैं कि अयोग्य आदमी किस प्रकार प्रतिष्ठित पद पर काम करते हैं? क्या आप यह सब जानने का प्रयत्न करेंगे?

यद्यपि रियासत का प्रत्येक व्यक्ति यह जानता और अनुभव करता है कि—

१—खुल्लमखुल्ला गाँधी जी से सहानुभूति करना ही नहीं, प्रत्युत उनका नाम लेना ही महाराज की अप्रसन्नता का कारण बन झगड़े मोल लेना है।

२—आपके अफ़सरों की समालोचना करने का प्रयत्न करना दोष है। आपके शासन की समालोचना का स्वप्न देखना घोर पाप है।

३—रियासत में उत्तरदायी सरकार की उन्नति के विचार सुझाना अपने को पागलख़ाने में भरती करने को पागल सिद्ध करना है।

तथापि इच्छुक यह पूछना चाहता है कि कब तक घृणित और डरपोक मारवाड़ी इसको सहन कर सकेंगे? कब श्रीमान जो उपदेश करते हैं, उसका कुछ भाग अपनी रियासत पर प्रयोग करेंगे और इस प्रकार के उदाहरण से दूसरी सरकारों को शिक्षा देंगे?

—'हिन्द राजस्थान'

❀ ❀ ❀

करौली के हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप

प्रति वर्ष भादों शुक्ला ८ से १० तक स्थानीय सनातनधर्म सभा की ओर से श्रीमदनमोहन जी के मन्दिर में हवन, भजन तथा यज्ञोपवीत संस्कारादि हिन्दू-धर्म की महिमा के विषयों पर व्याख्यान होते हैं और दसवें दिन वेद भगवान की सवारी जुलूस के साथ निकलती है।

हर साल की भाँति इस वर्ष भी सनातनधर्म सभा के सभापति जी ने दीवान साहब की सेवा में वेद भगवान की सवारी निकलने के प्रबन्ध के लिए प्रार्थना की। इस पर दीवान महोदय ने तुरन्त ही राज्य के सदर दफ़्तर को हुक्म भेज दिया कि "सभा के हर काम का प्रबन्ध फ़ौरन कर दिया जावे।" किन्तु दफ़्तर सदर के नायब चौधरी ने मालूम नहीं किस रूप में दरबार से वेद भगवान की सवारी निकलने के बारे में सुझा दिया कि महाराज ने वेद भगवान की सवारी निकलने की मनाही करवा दी और तुरन्त ही कोतवाल ने सभा-भवन पर धावा मार कर सब काम बन्द करवा दिया! बाद में शहर के प्रतिष्ठित महानुभावों का एक डेपुटेशन श्री० महाराज की सेवा में गया और प्रार्थना की कि वेद भगवान की सवारी की आज्ञा प्रदान करने की कृपा करें। सब शहर में नहीं, तो थोड़ी दूर की ही आज्ञा मिल जावे। किन्तु महाराज तुरन्त ही आपे से बाहर हो गए और डेपुटेशन को बुरी तरह से फटकार दिया। लगभग डेढ़ साल हुआ, अग्रवाल पक्ष अपनी नई धर्मशाला में शिव-मूर्ति स्थापन करना चाहते थे, पर महाराज ने इसकी भी इजाज़त नहीं दी।

पाठक आश्चर्य करेंगे कि करौली के नरेश हिन्दू होते हुए भी हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों में क्योंकर हस्तक्षेप करते हैं। किन्तु इसके भीतर भी एक रहस्य छिपा हुआ है। वह यह कि करौली-नरेश की एक मुस्लिम वेश्या पर विशेष कृपा है। इस कारण इस वेश्या के कृपा-पात्र नरेश को जिधर चाहें घुमा देते हैं। किन्तु भय है कि इन लोगों के प्रपञ्चों के फल-स्वरूप राज्य में कहीं हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा न पैदा हो जाय। जो भी हो, इस प्रकार धार्मिक कार्यों में बाधा पहुँचाना सर्वथा अनुचित है। नरेश को अपनी नीति बदल देना चाहिए, अन्यथा राज्य में शान्ति के बजाय अशान्ति फैल जायगी, जिसका नतीजा हर्गिज़ अच्छा न होगा।

—'त्यागभूमि'

❀ ❀ ❀

इन्दौर का स्टेट सर्जन

सुप्रसिद्ध रायबहादुर डॉ० सरजूप्रसाद तिवारी (स्टेट सर्जन, होल्कर स्टेट) के पेन्शन ले लेने पर उनके स्थान पर गत १२ अक्टूबर को कर्नल टीरल नामक एक अङ्गरेज़ महोदय २,२०० रु० माहवार पर स्टेट मेडिकल विभाग के अधिष्ठाता होकर आए हैं। आप कुछ माह पूर्व स्थानीय किङ्ग एडवर्ड अस्पताल में थे। विश्वसनीय सूत्र से ज्ञात हुआ है कि वे किसी मिनिस्टर के अधीन न रह कर सीधे केबिनेट के मेडिकल मेम्बर होंगे।

एक ओर तो स्टेट की फ़ौज से लगभग ५०० सिपाही तथा कई छोटे-मोटे नौकर स्टेट की आय में कमी हो जाने से, ख़र्चे की पूर्ति करने को, निकाल दिए गए हैं। साथ ही फ़ाइनेन्स मिनिस्टर श्री० मोतीलाल जी बीजावर्गी, जनरल भवानीसिंह जी, श्री० रायबहादुर श्यामसुन्दरलाल जी फ़ारेस्ट मेम्बर आदि के समान पुराने-पुराने अधिकारियों को पेन्शन दे दी गई है। स्टेट के सब नौकरों की तनख़्वाह १०) फ़ी सैकड़ा घटा दी

गई है। दूसरी ओर देखिए तो ७५० रु० के स्टेट सर्जन के स्थान पर २,२०० रु० माहवार पर एक अङ्गरेज़ सर्जन रक्खा जा रहा है! और सुना जाता है कि महाराजा साहब के साथ बड़ी-बड़ी तनख़्वाह वाले कई अङ्गरेज़ पधार रहे हैं, जो शासन के भिन्न-भिन्न विभागों के अधिकारी होंगे! तो क्या इन्हीं गौराङ्ग प्रभुओं के लिए यह सब काट-छाँट हुई है और ग़रीब सिपाहियों का गला घोंटा गया है?

—'कर्मवीर'

❀ ❀ ❀

अलवर के महाराज

ख़बर है कि अलवर-नरेश ने भावनगर से ४० लाख रुपए क़र्ज़ लिए हैं और यह रुपया मोटरों की सजावट तथा इसी प्रकार के और कामों में ख़र्च किया जायगा।

आज सारे संसार के राष्ट्रों पर आर्थिक महासङ्कट आ पड़ा है, प्रत्येक राष्ट्र की स्थिति डाँवाडोल हो रही है। नहीं कहा जा सकता कि कब किसका दिवाला निकल जाय। सबके बजट फ़ेल हो रहे हैं, अतः बैलेन्स ठीक करने के लिए कस कर ख़र्चों में कमी की जा रही है। ऐसे समय में अलवर-नरेश का यह क़र्ज़ लेना और फिर उसे इस प्रकार फ़िज़ूल ख़र्च करना बड़ी ही नासमझी है और साथ ही उनकी मदान्धता का परिचय देता है। प्रजा की ख़ून की कमाई का ऐसा निर्दयता-पूर्वक दुरुपयोग किया जा रहा है, पाठक स्वयं ही विचार कर लें। देशी नरेशों के इस प्रकार के कार्यों से ही हमें दुखी होकर यह कहना पड़ता है कि नरेशों के इस प्रकार के शासन का जितना शीघ्र हो, अन्त हो जाय। प्रजा पर मनमानी तरह से शासन के नाम पर अत्याचार करना और अधिक से अधिक धन ऐंठना और फिर उसे अपने ऐशो-आराम में, अपनी इन्द्रियों की ज्वाला शान्त करने में फूँक देना, यह इन नरेशों के स्वाभाविक काम हो गए हैं। और यदि प्रजा कहीं ज़रा चूँ करती है, तो उस पर इच्छानुसार गोलियों की वर्षा की जाती है।

—'हिन्द राजस्थान'

❀ ❀ ❀

हमारे रजवाड़े

हमारे देश में छोटे-मोटे रजवाड़ों की भरमार है। बड़े और छोटे सभी को मिला कर इनकी संख्या लगभग पाँच-छः सौ के होगी। ये सब ब्रिटिश छत्रछाया में हैं। ब्रिटिश सरकार के साथ इनकी जो सन्धि हुई हैं, वे इस प्रकार की हैं, जिससे इनको अपनी रियासत में भले ही कुछ स्वतन्त्रता रह गई हो, पर बाहर तो इनको लेश-मात्र भी स्वतन्त्रता नहीं है। कहीं जाना हो, किसी दूसरे राजा से मिलना हो, कोई विशेष पत्र-व्यवहार करना हो, सब जगह इनके हाथ-पैर बँधे हुए हैं। इनका समीपस्थ उपास्य देव, इष्टदेव, देवाधिदेव होता है पोलिटिकल एजण्ट। जहाँ बहुत छोटी रियासतें हैं, वहाँ कमिश्नर ही एजण्ट का काम भी करता है। भारतवर्ष में छोटी से छोटी रियासत पाँच-पाँच, दस-दस ग्रामों की हैं, जिनके शासक राजा, राव आदि कहे जाते हैं, और बड़ी-बड़ी रियासतें भी हैं, जैसे निज़ाम राज्य, मैसूर, बड़ौदा आदि। कहने को नेपाल स्वतन्त्र है, पर क्या स्वतन्त्रता है? मारा करो पहाड़ों में टक्कर! जिस राज्य को अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक सन्धि-विग्रह करने की स्वतन्त्रता नहीं, उसकी स्वतन्त्रता क्या है? अस्तु, बटलर कमीशन ने चाहा था कि भारत-वर्ष के दो टुकड़े करके इन राजा-महाराजाओं के भारत-वर्ष को ब्रिटिश भारतवर्ष से पृथक् करके सीधे इनका सम्बन्ध लण्डन की सरकार से जोड़ा जाय, पर अब सङ्घ-राज्य की नई और ताज़ी कल्पना इस समय हो रही है और देखना चाहिए कि जहाँ इस कल्पना के कारण भारतवर्ष दो टुकड़े होने से बच सकता है, वहाँ प्रजातन्त्रवादी ब्रिटिश भारत की प्रजा के साथ एक सत्ता-वादी राजा-महाराजाओं की कहाँ तक पट सकेगी, यह भी एक देखने की बात है।

भारतवर्ष के राजा-महाराजा इतने परतन्त्र और निस्तेज कभी नहीं हुए थे, जितने इस ब्रिटिश छत्र-छाया में हो गए हैं। मुसलमानी साम्राज्य के समय में ये रजवाड़े बहुत स्वतन्त्र थे। किन्तु इस समय के ब्रिटिश प्रतिनिधि शासकों की एक को हाथ में लेकर

दूसरे को पटकने की नीति ने सबको छिन्न-विच्छिन्न कर दिया। अब इन रजवाड़ों को परचक्र का कोई भय नहीं रहा, इसीलिए विषय-लोलुपता, प्रजा के साथ क्रूरता और ब्रिटिश एजेण्ट तथा अन्य अधिकारियों की चाटुकारिता ही प्रायः इनके काम रह गए हैं। इससे बढ़ कर इनकी हीनता का और क्या प्रमाण होगा कि अपनी गद्दी पर भी वे स्वतन्त्रतापूर्वक न स्वयं बैठ सकते हैं और न अपने वंशज को बिठा सकते हैं ? इसके अतिरिक्त यदि किसी नरेश की रीति-नीति गौराङ्ग महाप्रभुओं को पसन्द न आई, तो वह चाहे जब गद्दी से उतार दिया जा सकता है।

हम जानते हैं कि राजाओं के हाथ-पैर बँधे हुए हैं। पर उन्हें तो खोलना ही पड़ेगा। जब हमारे देश में परचक्र आया और विदेशियों के आक्रमण होने लगे, तब भीतर से असमर्थ हुए भारतवर्ष ने कौर्मी वृत्ति का आश्रय करके दिन बिताए। इस विज्ञान-युग में अब उस कौर्मी वृत्ति का क्या काम ? अब तो सिकुड़े हुए हाथ-पैरों को खोलने का समय है। हाथ-पैर जकड़े पड़े हैं, उनमें रुधिर की अव्याहत गति नहीं हो रही है। इस रुधिर-प्रसरण के बिना शरीर चलने-फिरने योग्य नहीं होगा। यदि भारत के राजा-महाराजा भारतवर्ष को पुनरपि एक बनाना चाहते हैं, तो उनको समय की गति के साथ पैर रखना होगा। बड़े से बड़े राजा अथवा महाराज को एक कुली-प्रतिनिधि के साथ बैठ कर समान भाव से बात करनी होगी, दुख-सुख में सहानुभूति का भाव प्रकट करना होगा। ऐसा हुआ तो रजवाड़े चाहे स्वतन्त्र रहें चाहे सङ्घ-राज्य में सम्मिलित रहें, आनन्द से उनके दिन कट सकते हैं। यह बात अभी स्वेच्छा से करते भी हैं, पीछे से बलवत्तर काल ने कान ऐंठ कर करा लिया तो फिर आपकी क्या बात रही ?

मान लिया कि सङ्घ-राज्य भारतवर्ष में स्थापित हो गया। माना कि कॉन्स्टिट्यूशन बनाया और उसकी निर्धारित रीति पर राजा-महाराजाओं के प्रतिनिधि इधर भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों तथा सम्प्रदायों के प्रतिनिधि सब एकत्र होकर शासन-शकट चलाने लग गए। अब मान लीजिए कि रजवाड़ों में प्रजा को कष्ट होने लगा, उस पर ब्रिटिश प्रतिनिधि कोई प्रस्ताव लाने लगे, तो झट रजवाड़ों के प्रतिनिधि कह उठेंगे कि हमारी बातों में आप न बोलिए। इसी प्रकार प्रत्युत्तर में इधर के प्रतिनिधि भी रजवाड़ों के प्रतिनिधियों को कोरा जवाब दे सकते हैं। फिर हमारी समझ में नहीं आता कि ऐसे सङ्घ-राज्य से क्या लाभ होगा। ख़ैर, यदि ऐसा होते हुए भी रजवाड़ों के प्रतिनिधियों की सामान्य नीति कहीं प्रजातन्त्रवादी प्रतिनिधियों के विरुद्ध पड़ती गई और वह भीतर ही भीतर अथवा प्रकट रूप में "सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा" कठपुतली की तरह अङ्गरेज़ों की उँगलियों के इशारे पर नाचते रहे, तो प्रजातन्त्रवादियों के गले से दुहरी शिला लटक जायगी। पहले नौकरशाही की दृढ़ शिला ही कम नहीं, उसमें फिर यह दूसरी महाशिला लटकेगी ! तीसरी शिला धर्मान्ध मुसलमान प्रतिनिधि होंगे ही। यदि भारतीय प्रजातन्त्रवादियों को पूर्ण स्वराज्य मिला अर्थात् सेना-विभाग और अर्थ-विभाग में भी उनका पूर्ण अधिकार रहा तो सङ्घ-राज्य में सम्मिलित होने वाले रजवाड़ों पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। जहाँ सङ्घ-राज्य एक अविच्छिन्नपूर्ण भारतवर्ष के सम्मिलित शासन का सुख-स्वप्न दिखलाई पड़ रहा है, वहाँ उसमें इतनी कूटनीति-पूर्ण गाँठें भी दिखाई पड़ रही हैं कि उनकी कल्पना करके ही जी घबराने लगता है। अभी तो अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन रियासतों में घुसा नहीं है, यदि गोलमेज़ असफल रही और वह आन्दोलन कहीं ब्रिटिश भारत और रजवाड़ों में एक साथ चला तो फिर देखना ! रजवाड़े अभी यही समझ रहे हैं कि इस प्रकार के आन्दोलन उनके यहाँ न उठेंगे। यदि रजवाड़ों में सुबुद्धि हो और वे ब्रिटिश भारत के प्रजातन्त्रवादियों की पूर्ण-स्वतन्त्रता की माँग का समर्थन करें, तो इसमें उन्हीं का भला है। अथवा किसी आन्दोलन की प्रतीक्षा किए बिना ही यदि अपने-अपने राज्य में प्रतिनिधि-सत्तात्मक पद्धति का प्रवेश कर दें तो भी उनकी प्रजा सुख समाधान से रह सकती है, नहीं तो "समानशीलव्यसनेषु सख्यम्" इस स्वभाव के अनुसार रजवाड़ों की दुखित प्रजा और ब्रिटिश भारत के प्रजातन्त्रवादी दोनों का सम्मिलित आन्दोलन एक साथ, एकदम चल पड़ना असम्भव बात नहीं है।

—'आज'

बीकानेर का राजवंश

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

परिचय अन्यत्र देखिए

छप रही है !

छप रही है !!

लन्दन-प्रवासी जिन डॉक्टर धनीराम प्रेम की कहानियों को पढ़ने के लिए 'चाँद' और 'भविष्य' के पाठक उत्सुक रहते हैं, जिनकी पहली ही कहानी 'डोरा' ने कहानी-संसार में हलचल मचा दी थी, 'वल्लरी' उन्हीं की ग्यारह सरस सुन्दर कहानियों का संग्रह है।

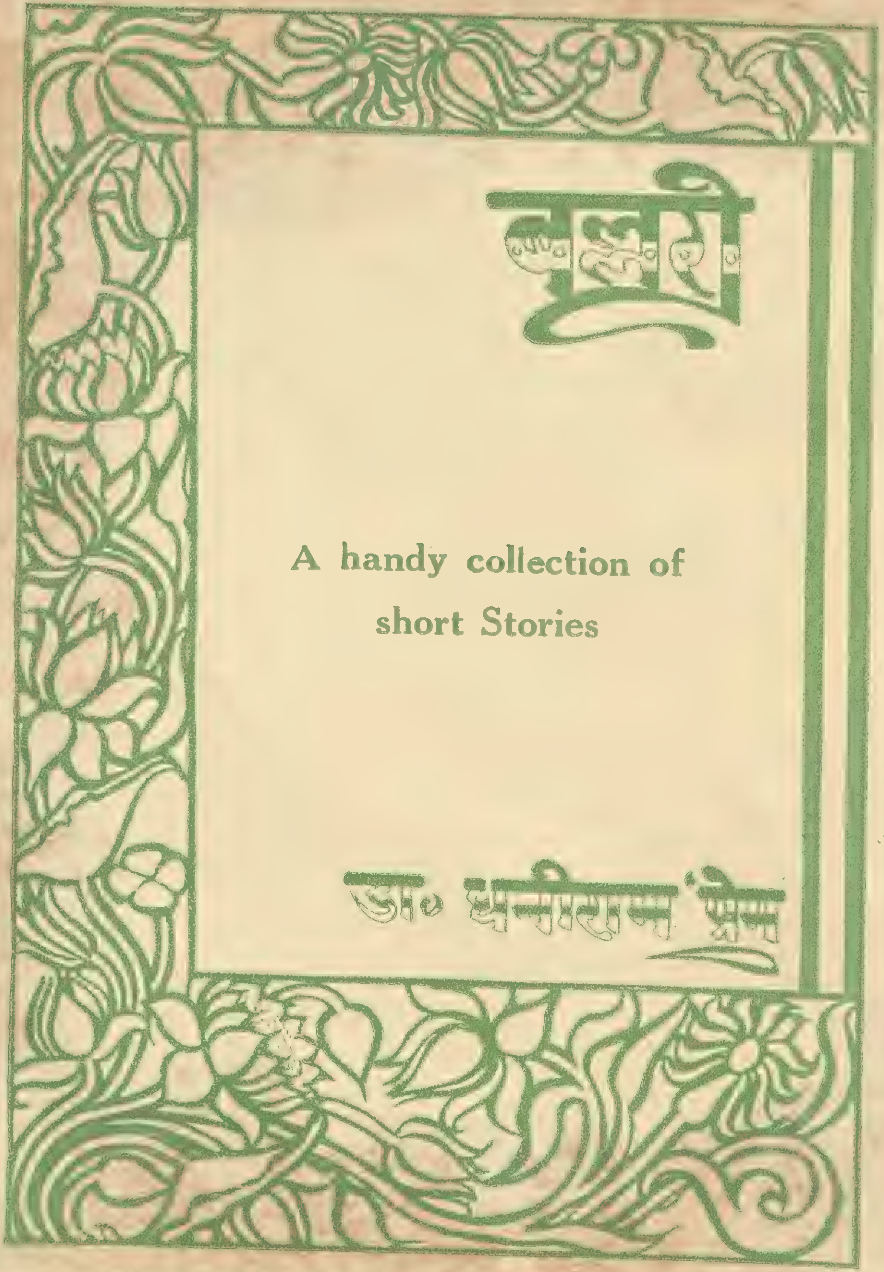

पुस्तक छप रही है ! शीघ्र ही ऑर्डर रजिस्टर करा लीजिए, अन्यथा पछताना पड़ेगा !

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

गृह-विज्ञान

शिशु-पालन

निम्न-लिखित नियमों पर प्रत्येक माता को ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इनके पालन करने से वे अपने बच्चों को आदर्श बना सकती हैं :—

१—बच्चे को २४ घण्टे में पाँच-छः बार से अधिक दूध न पिलाना चाहिए।

२—रात्रि के समय १० बजे से लेकर सुबह ६ बजे तक न कुछ खिलाओ, न पिलाओ।

३—बच्चे को अधिकतर गोदी में न रक्खो, इससे बच्चे की वृद्धि रुक जाती है और माता भी घिरी रहती है।

४—बच्चे को कभी-उसके हाथ पकड़ कर सिर के ऊपर न झुलाओ।

५—बच्चे के मुख के सामने न खाँसो, न छींको।

६—बालक के नेत्रों पर तेज़ रोशनी कभी न पड़ने दो।

७—बालक के प्रथम वर्ष की आयु में ही टीका लगवाना चाहिए।

८—बच्चे को रोज़ाना स्नान कराना न भूलो। कभी-कभी तेल की मालिश भी लाभदायक है। उसके नाख़ून भी साफ़ रक्खो।

९—जब बच्चा रोवे तो यही न समझो कि वह भूखा है। शायद है कि वह ज़्यादा खाने से रोता हो।

१०—बच्चे को बिना किसी वैद्य या डॉक्टर की सलाह के कोई शरबत या Patent Medicine या कोई Stimulant जैसे मदिरा इत्यादि व सुलाने वाली दवाई जैसे अफ़ीम इत्यादि न दो।

११—बच्चे का मुख किसी दुशाला या कम्बल से न ढको।

१२—बच्चे को अधिक मात्रा में वस्त्र न पहिनाओ, परन्तु उसे गर्म रक्खो।

१३—बच्चे को बहुत गर्म या अधिक आदमियों से भरे हुए कमरे में न सुलाओ।

१४—बच्चे को, जहाँ तक हो सके, ताज़ा दूध पिलाना चाहिए।

१५—बच्चे को कोई खिलौना या उँगली इत्यादि न चूसने दो।

१६—बच्चे को उसकी इच्छानुसार नहीं, किन्तु नियत समय पर भोजन या दूध इत्यादि दो।

१७—बच्चे को तोलना मत भूलो। पैदा होने पर ५ से ७ पौण्ड तक वज़न होना चाहिए। ५ मास बाद इससे दुगुना और एक वर्ष बाद तिगुना होना चाहिए। यदि वज़न घटता हो या बढ़ता भी न हो, तो दोनों दशाओं में किसी वैद्य इत्यादि को दिखलाओ।

१८—बच्चों को कभी मत डराओ। भूत प्रेतादि का कभी उसके सम्मुख ज़िक्र न करो। दण्ड देने के लिए उसको अँधेरे मकान में बन्द न करो, न उसका खाना बन्द करो।

१९—यदि बच्चा कुछ बीमार हो जावे, तो उसको खाना न खिलाओ; पानी पीने को दो और अरण्डी के तेल (Castor oil) या Enema से उसका पेट साफ़ कर दो। (बहुधा बच्चे पेट की गड़बड़ी से ही रोगी होते हैं)

२०—बच्चे को मुँह द्वारा साँस न लेने दो और मुँह फाड़ कर न सोने दो, ऐसा प्रयत्न करो जिससे नासिका द्वारा ही श्वास ले। यदि ऐसा न हो तो समझना चाहिए कि उसकी श्वास-नलिकाओं में कुछ रुकावट है और उसका शीघ्र उपचार आवश्यक है।

२१—बालकों को दूध पिलाने वाली बोतलें और उनके ऊपर के रबर के ढक्कन (Teats) सर्वदा अच्छी तरह धो लेने चाहिएँ। परन्तु जहाँ तक हो सके, माँ का दूध और नारङ्गी या अङ्गूर का रस देना लाभदायक है।

—डॉक्टर आनन्दस्वरूप शर्मा

❀ ❀ ❀

पाक-विद्या

आम की खीर

पहले एक सेर कच्चे आम लेकर छील डाले, फिर कद्दूकस में कस कर चूने के पानी में उबाल ले (चूने का पानी इस तरह उतारे कि चूना न आने पावे) जब गल जाय, तब उतार कर पानी से साफ़ धो डाले, ताकि चूने का असर न रहने पावे। फिर पाव भर घी कढ़ाई में डाल कर भून ले। जब सुगन्ध आने लगे तब उतार ले, तत्पश्चात् तीन सेर दूध गरम करके, उसमें उबले हुए आम डाल कर ख़ूब चलाए, ताकि दूध फटने न पावे। जब दूध गाढ़ा होकर एक दिल हो जाए, तब उतार ले। फिर उसमें गरी व किशमिश, चिरौंजी, छोटी इलायची डाल दे व जितना मीठा पसन्द हो, उतनी चीनी डाल ले। यह खीर बहुत स्वादिष्ट होती है।

बेसन की बर्फ़ी

आध सेर बेसन में एक छटाँक घी डाल कर मले। फिर पानी से कड़ा सान कर मोटी-मोटी पूरी बेल, धीमी आँच से घी में लाल-लाल सेंक ले। ठण्डी होने पर कूट कर चलनी से छान ली जाए, ताकि मोटी-बारीक न होने पावे। जब सब कुट कर सूजी के समान हो जाए तब पाव भर घी में भून ले। तत्पश्चात् आध सेर चीनी की चाशनी बना कर उसमें भुनी हुई सूजी डाल कर ख़ूब चलाए। फिर थाली में घी लगा कर जमा दे। ऊपर से कटे हुए पिस्ते व किशमिश लगा दे। चाहे तो चाँदी के वर्क़ भी लगा दे।

—विद्यावती रामपायली

❀ ❀ ❀

घरेलू दवाइयाँ

सिर-दर्द की दवा

अगर सर्दी से सिर में दर्द हो तो बादाम घी में घिस कर लगाओ।

दूसरी दवा

सफ़ेद चन्दन, कपूर, छोटी इलायची, इन सबों को पानी में घिस कर मस्तक पर रख ले, तुरन्त आराम होगा।

पेट-दर्द की दवा

सोंठ को आग में भून कर पीस ले और बराबर का बूरा मिला कर दूध के साथ खावे।

बिच्छू काटे की दवा

नौसादर और चूने का पानी बिच्छू काटी जगह पर ख़ूब मले, ज़हर फ़ौरन उतर जाएगा।

कान बहने की दवा

समुद्रफेन, जली सुपाड़ी, पपरिया कत्था ख़ूब महीन पीस कर कान में डाल दे।

मासिक धर्म की दवा

मुलहठी २ तोले, बिसखपड़े की जड़ २॥ तोले, अजवाइन ६ माशे, इन सब चीज़ों को कूट कर आध सेर पानी में उबाले। जब पानी जल कर आध पाव रह जाय तो २ तोले शहद मिला कर पीवे, शीघ्र मासिक धर्म होने लगेगा।

—सरला देवी कुलश्रेष्ठ

शब्दकार—डॉ० धनीराम प्रेम]

ईमन तीन ताल

[स्वरकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)

स्थायी—जय त्रिभुवनकर्ता, हे दुखहर्ता, सङ्कट हरो हमारे !
भवसागर में डूब जायँगे, भगवन बिना तुम्हारे !
अन्तरा—कौन कहे तुम नहीं उपस्थित, कौन कहे तव बल है परिमित,
धरणीधर, विश्वम्भर, जयशङ्कर, तुम बिन कैसे चलें—
घड़ी भर कार्य सृष्टि के सारे। जय त्रिभु० ॥

स्थायी

×				३				०				१			
सं	—	निं	ध	नि	ध	म (त)	ध	प	—	म (त)	प	नि	ध	म (त)	प
जय	—	त्रि	भु	व	न	क	र	ता	—	हे	ए	दु	ख	ह	र
ग	—	रे	—	ग	रे	ग	म (त)	ध	प	ग	रे	नि़	रे	स	—
ता	—	सं	—	क	ट	ह	रो	ओ	ह	मा	अ	आ	आ	रे	—
नि़	स	रे	—	स	रे	ग	—	रे	ग	म (त)	प	ग	म (त)	ध	—
भ	व	सा	—	ग	र	में	—	डू	ऊ	ब	जा	आ	यं	गे	—
म (त)	प	ध	नि	प	ध	नि	सं	ध	नि	सं	रें	सं	—	—	—
भ	ग	व	न	बि	ना	आ	तुम	हा	आ	आ	आ	रे	—	—	—

अन्तरा

		त													
प	—	म	ग	ग	—	प	प	ध	प	सं	सं	सं	—	सं	—
कौ	—	न	क	हे	—	तु	म	न	हा	ई	उ	पस	—	थित	—
सं	नि	ध	ध	सं	—	रें	रें	नि	नि	नि	सं	ध	नि	प	—
क	व	न	क	हे	—	त	व	ब	ल	है	प	रि	इ	मित	—
												त			
गं	गं	रें	—	सं	सं	नि	—	ध	—	प	प	म	—	ग	—
ध	र	णी	—	ध	र	वि	—	श्वं	—	भ	र	जय	—	शं	—
					त				त				त		
रे	रे	स	रें	ग	म	प	ध	नि	म	प	—	प	म	ध	प
क	र	तु	म	बि	न	क	ए	से	च	लें	—	घ	ड़ी	भ	र
मिं	ध	सं	नि	रें	सं	गं	रें	ध	नि	सं	रें	स	—	—	—
का	आ	र	ज	सृ	इस	ष्टि	के	सा	आ	आ	आ	रे	—	—	—

"सूरज डूब गया।"

"डूब जाने दो, तुम्हारी उसमें कौन सी पूँजी लगी है।"

❀

"तुम्हारे कोट में यह गाँठ क्यों लगी है?"

"मेरी स्त्री ने यह लगा दी है, ताकि मैं उसके पत्र को पोस्ट-बॉक्स में डालना न भूल जाऊँ।"

"अभी तक पत्र डाला नहीं?"

"वह पत्र मुझको देना भूल गई।"

❀

डॉक्टर ने बुढ़िया को दवा देते हुए कहा—"देखो, जितनी दवा दुअन्नी के ऊपर आवे, उतनी एक बार खा लेना।" बुढ़िया घर चली गई। दूसरे दिन जब डॉक्टर बुढ़िया को देखने गया तो उसकी दशा बहुत ख़राब थी।

"दवा किस तरह खाई थी?"—डॉक्टर ने पूछा।

"आपके कहने के अनुसार ही खाई थी। हाँ, मेरे पास उस समय दुअन्नी नहीं थी, इसलिए मैंने आठ पैसों पर जितनी दवा आई, उतनी खा ली।"

मनुष्य-भक्षक—इसके पहले कि मैं तुम्हें खाऊँ, तुम कुछ कहना चाहते हो?

सभ्य क़ैदी—मुझे वनस्पत्याहार के लाभों पर कुछ कह लेने दीजिए।

❀

एक छोटा लड़का अपने पिता की दूकान के सामने नाली के किनारे खड़ा रो रहा था। उधर से एक दयालु पुरुष जा रहे थे। वे लड़के को रोता देख कर खड़े हो गए और कहा—तुम क्यों रो रहे हो, बेटा?

"मेरी एक इकन्नी नाली में गिर गई है। मेरे पिता जी को मालूम होगा तो मुझे वे मारेंगे।"—लड़के ने उत्तर दिया।

दयालु पुरुष ने उसे एक इकन्नी दी। लड़के ने इकन्नी जेब में रख ली और फिर रोने लगा।

"अब क्या बात है?"—दयालु सज्जन ने पूछा।

"जब मेरे पिता को सारा हाल मालूम होगा तो वे मुझे मारेंगे कि मैंने आपसे यह क्यों नहीं कहा कि नाली में एक रुपया गिर गया है।"

१—कबीर का रहस्यवाद—लेखक श्री० रामकुमार वर्मा, एम० ए०, अध्यापक हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग; प्रकाशक गाँधी-पुस्तक-भण्डार, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या २५० के लगभग; मूल्य २)

उक्त पुस्तक को पढ़ कर हृदय आनन्द से नाच उठा, चित्त प्रसन्न हो गया और यह आशा अधिक बलवती हो गई कि हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है। पुस्तक विशद, स्वच्छ, निर्मल तथा पाण्डित्यपूर्ण है। इस पुस्तक में रहस्यवाद की परिभाषा, उसकी परिस्थितियाँ, अद्वैतवाद, सूफ़ीमत आदि सब बातों के बारे में विचार किया गया है। रहस्यवाद की विशेषताओं का भी बहुत अच्छा वर्णन है। पुस्तक के विचार गम्भीर, विचारपूर्ण और प्रामाणिक हैं। सारी पुस्तक पढ़ जाने से ठीक-ठीक पता चल जाता है कि पुस्तक पर्याप्त अध्ययन के बाद लिखी गई है। आजकल ऐरे-ग़ैरे नत्थू-ख़ैरे भी रहस्यवाद के ऊपर क़लम-कुल्हाड़ा चलाने लग गए हैं और कल्पना के मैदान में अपने सड़े और गन्दे दिमाग़ का घोड़ा दौड़ाने लग गए हैं। जिसे देखो वही इस पर कुछ न कुछ लिख ही तो मारता है और अपने को हास्यास्पद बनाता है, परन्तु वर्मा जी ने ख़ूब सोच-विचार कर लिखा है और अध्ययन के बाद लिखना प्रारम्भ किया है। हम वर्मा जी को ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिए हृदय से बधाई देते हैं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि अभी तक हिन्दी-भाषा में रहस्यवाद पर ऐसी सुन्दर पुस्तक नहीं लिखी गई है। इसमें लेश-मात्र भी सन्देह नहीं है कि इस अंश में वर्मा जी ने पथदर्शक का काम किया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि वर्मा जी मेरी निम्नलिखित बातों पर अवश्य विचार करेंगे।

पृष्ठ ८ में वर्मा जी ने लिखा है:—"कबीर की 'बानी' को आद्योपान्त पढ़ जाने पर ज्ञात हो जाता है कि वे सच्चे रहस्यवादी थे।" कई और स्थानों पर वर्मा जी ने इसी बात की पुष्टि भी की है। फिर पृष्ठ २१ में उन्होंने कबीर के रहस्यवाद का आधार अद्वैतवाद और सूफ़ी मत बतलाया है। इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि दोनों बातों की सङ्गति कैसे बैठाई जा सकती है। यदि कबीर सच्चे रहस्यवादी थे, तो उन्हें आधार पर लिखने की क्या आवश्यकता थी और यदि उन्होंने आधार पर ही लिखा है, तो वे सच्चे रहस्यवादी कैसे हुए?

इसी प्रकार कुछ और स्थानों पर भी पुस्तक में ऐसी बातें आ गई हैं। पृष्ठ ९४ में लेखक ने "सम्पूर्ण हृदय" शब्द का प्रयोग किया है और उसी के लिए पृष्ठ ९९ में "आत्मा की सारी शक्तियों एवं आत्मा" का प्रयोग किया है। इस प्रकार पृष्ठ ९४ का प्रयोग विरोधात्मक ही नहीं, ग़लत भी है।

पृष्ठ ७९ में तथा उसके आगे ग्रन्थकर्ता ने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आनन्द के बारे में विचार किया है। उसके लिए जितनी दलीलें दी गई हैं, लँगड़ी मालूम पड़ती हैं। जेम्स आदि प्रधान मनोवैज्ञानिकों का इस सम्बन्ध में विचार प्रकट करना आवश्यक था। जितनी जल्दी लेखक ने उन भेदों के उड़ा देने का प्रयत्न

किया है, यह काम उतना आसान नहीं। हमारे यहाँ जड़-समाधि की सत्ता में लोग केवल विश्वास ही नहीं करते हैं, परन्तु उसे सत्य भी मानते आए हैं।

हठयोग के प्रकरण में लेखक ने बहुत-कुछ लिखा है, परन्तु मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि हठयोग में पतञ्जलि ऋषि के अष्टाङ्ग योग की गणना क्यों की गई? इसके अतिरिक्त हठयोग का प्रकरण असम्बद्ध भी प्रतीत होता है। संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार उनके वर्णन करने से कुछ भी लाभ नहीं, यदि उनका सामञ्जस्य कबीर के विचारों से न किया जाय। इस प्रकरण में पाण्डित्य-प्रदर्शन अधिक है और तथ्य कम।

पुस्तक के पढ़ जाने से पता चलता है कि ग्रन्थकार ने अन्य पुस्तकों की अपेक्षा कबीर के ग्रन्थों पर कम ज़ोर दिया है और उसके अध्ययन की उतनी अधिक आवश्यकता नहीं समझी है।

इसीलिए इसमें कई तरह की ग़लतियाँ हो गई हैं, जो दूसरे संस्करण में सुधार दी जानी चाहिएँ। पहले तो कविता में रहस्यवाद, दर्शन में रहस्यवाद और धर्म में रहस्यवाद के भेदों के न करने से पुस्तक में कुछ गड़बड़ी हो गई है, जिसके कारण पुस्तक में कुछ ऐसी बातें आगई हैं, जो परस्पर विरोधी मालूम होने लगती हैं! दूसरे कबीर के ग्रन्थों के अध्ययन की कमी के कारण भी कुछ अशुद्ध बातें लिखी गई हैं। इस प्रकार के उदाहरण के लिए मैं 'अनाहद' और 'सुन्न' शब्द लेना अच्छा समझता हूँ। अनाहद का जो अर्थ लेखक ने लिखा है वह वास्तव में नहीं है। समाधि से अनाहद से सम्बन्ध अवश्य है और यह बात सच है कि समाधि की अवस्था में योगी लोग अनाहद शब्द सुनते हैं, परन्तु बिना समाधि के भी यह शब्द योगी सदा सुना करते हैं। इसी प्रकार 'सुन्न' के लिए ब्रह्मरन्ध्र शब्द का प्रयोग किया गया है। ब्रह्मरन्ध्र तो इसी शरीर की खोपड़ी का एक अङ्ग है और मरने के समय कुछ योगियों का यह फूट जाता है। कबीर का 'गगन' और 'सुन्न' इससे सर्वथा भिन्न है, परन्तु इन बातों से पुस्तक का महत्त्व कुछ कम नहीं होता। हिन्दी-प्रेमियों तथा कबीर के विद्यार्थियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

❀ ❀ ❀

२—प्रकृति-सौन्दर्य—लेखक और प्रकाशक दाराब ख़ाँ 'अभिलाषी', धरगाँव, होल्कर राज्य; पृष्ठ-संख्या ३३, मूल्य ।=)

यह कविता की एक छोटी-सी पुस्तक है, परन्तु वास्तव में यह अत्यन्त ही सुन्दर तथा मनोहर है। मुझे तो यह पुस्तक इतनी सुन्दर लगी कि मैं इसे कई बार पढ़ गया। मेरा पूर्ण विश्वास है कि यह छोटी-सी पुस्तक हिन्दी-साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त करेगी और इसी छोटी सी पुस्तक से दाराब ख़ाँ हिन्दी-साहित्य में अमर हो जायँगे। मैं दाराब ख़ाँ से प्रार्थना करता हूँ कि वे और भी इसी तरह की सुन्दर पुस्तकें हिन्दी में लिखें, जिससे हिन्दू और मुसलमान एक हो जायँ और परस्पर प्रेम का बर्ताव करें। मेरा पूर्ण विश्वास है कि इन हिन्दू और मुसलमान लेखकों के ऊपर ही इन दोनों की एकता निर्भर है। यदि दाराब ख़ाँ एक ऐसी छोटी-सी कविता में कहानी लिखें, जिससे हिन्दू और मुसलमानों में एकता की जड़ जमे तो बड़ा उपकार हो। मैं दाराब ख़ाँ को ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिए हृदय के अन्तस्तल से बधाई देता हूँ। इस पुस्तक में प्रकृति का वर्णन वास्तव में बहुत मनोहर है। पीपल और बरगद के सम्बन्ध में देखिए, कैसी मनोहर कविता है:—

कुछ आगे और बढ़ा तो, पीपल का पेड़ पुराना।
दे-देकर सुन्दर ताली, कुछ छेड़ रहा है गाना।
जोगी बन जटा बढ़ाए, बरगद का पेड़ खड़ा है।
पद रोके प्रबल पवन से, वह कितनी बार लड़ा है।

निम्नलिखित पंक्तियाँ वास्तव में बहुत सुन्दर तथा मनोहर हैं:—

जो धन्यवाद से बढ़ कर बहुमूल्य वस्तु मैं पाता;
चरणों में उनके धर कर, तिस पर भी नहीं अघाता।
इस परिचयहीन जगत् की मैं किनको कथा सुनाऊँ,
यह जीवन का सौदा है, क्षण-क्षण में क्या इतराऊँ?
चपला की चमक निराली आँखों में बल खाती है,
काले अञ्चल के भीतर 'उस पार' दौड़ जाती है।
अब के आने दो उसको डोरी से झूम पड़ूँगा,
पूछूँगा नियम वहाँ के जीवन भर यहाँ लड़ूँगा।

माखन से मधुर हृदय में छिड़ गईं प्रेम की तानें,
वे सौरभ के व्यापारी आए हैं मुझे रिझाने।
काली कोयल ने स्वर को मीठी किलकारी मारी,
आमों के सघन वनों में चू पड़ी सुधारस झारी।
तुल गए कसौटी पर जो पतझड़ में झाँझ बजाते,
नीले रँग की झाँईं में तरु हरे-भरे दिखलाते।
उड़-उड़ कर खेल रहे हैं मलयानिल के फूलों पर,
कुछ गलबाहीं डाले हैं मनचले मधुप फूलों पर।

—अवध उपाध्याय

❀ ❀ ❀

३—'हंस' का विशेषाङ्क—सम्पादक श्री० प्रेमचन्द, बी० ए०; प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस। वार्षिक मूल्य ३॥)

'हंस' का जुलाई-अगस्त का युग्माङ्क विशेषाङ्क के रूप में निकला है। इस अङ्क के साथ ही 'हंस' ने अपने जीवन का दूसरा वर्ष प्रारम्भ किया है। यों तो 'हंस' का प्रत्येक अङ्क ही सुपाठ्य तथा मनोरञ्जक सामग्री से भरा हुआ होता है, परन्तु इस अङ्क में तो इन बातों का बाहुल्य है। इसमें स्वयं श्री० प्रेमचन्द जी तथा अन्य विख्यात लेखकों की अनेकों कहानियाँ हैं, जो 'हंस' की एक विशेषता है। इनके अतिरिक्त राय कृष्णदास जी लिखित 'साधना' तथा अन्य कई लेख एवं 'प्रसाद' जी आदि कवियों की कई कविताएँ भी हैं। कई सुन्दर रङ्गीन चित्रों ने इसकी शोभा को और भी बढ़ा दिया है। हम प्रेमचन्द जी को 'हंस' के इस सर्वाङ्ग सुन्दर विशेषाङ्क के निकालने पर बधाई देते हैं।

❀ ❀ ❀

४—रुबाइयात उमर ख़य्याम—अनुवादक श्री० मैथिलीशरण गुप्त; प्रकाशक प्रकाश पुस्तकालय, कानपुर। मूल्य ३)

उमर ख़य्याम फ़ारसी भाषा का एक बेजोड़ कवि हुआ है। एशियाई कवियों में से बहुत कम ऐसे हुए हैं, जिनकी कविता विश्व भर में आदर और उत्साह से पढ़ी जाती हो। उमर उन बहुत कम में से एक हैं। इसकी रुबाइयों का प्रत्येक भाषा में अनुवाद हो गया है। अङ्गरेज़ी में तो इसकी रुबाइयात की एक-एक प्रति सैकड़ों रुपयों में बिकी है। इसी अमर कवि की रुबाइयात का श्री० मैथिलीशरण जी ने अनुवाद करके हिन्दी-भाषा-भाषियों के समक्ष रक्खा है।

मानव-हृदय के भाव एकदेशीय नहीं, सर्वदेशीय होते हैं। इसीलिए कविता—भावमयी कविता—एकदेशीय नहीं, सर्वदेशीय होती है। परन्तु भाषाओं की भिन्नता के कारण भाव सर्वदेशीय होते हुए भी अर्थ एकदेशीय हो जाता है। यहीं पर अनुवादक के कौशल की परीक्षा होती है। कहना नहीं होगा कि इस कठिन कार्य को गुप्त जी ने ख़ूब निभाया है। प्रारम्भ में 'उमर ख़य्याम और उसकी कविता' शीर्षक एक नोट है, जिसके पढ़ लेने पर पाठक को रुबाइयों के समझने में बड़ी सहायता मिलेगी।

कई रुबाइयों के भावों को रङ्गीन चित्रों द्वारा व्यक्त किया गया है। चित्र कमाल के हैं और उनमें भावों को बड़ी ख़ूबी के साथ व्यक्त किया गया है। प्रत्येक चित्र के साथ उसी की रुबाई एक काग़ज़ पर छाप कर लगा दी है। हमारी समझ में यह और भी अच्छा होता कि या तो वह काग़ज़ इतना बारीक होता कि चित्र उसमें से स्पष्ट दिखाई देता या रुबाई काग़ज़ के दूसरी ओर छापी जाती, जिससे वह चित्र के सामने रहती।

पुस्तक का काग़ज़, छपाई, जिल्द आदि सब सुन्दर हैं। प्रत्येक कविता-प्रेमी को इसकी एक-एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

—धनीराम प्रेम

❀ ❀ ❀

निम्न-लिखित पुस्तकें भी मिल गई हैं, जिनके लिए प्रेषकों को धन्यवाद :—

(१) भक्तामर और भोजभूप—लेखक पीताम्बरदास गुप्त; प्रकाशक लेखक की धर्मपत्नी, बाँसा, पथरिया, दमोह।

(२) 'राकेश' का नेत्र-रोगाङ्क—बरालोकपुर, इटावा से प्रकाशित। मूल्य १)

(३) जैनकर्म-सिद्धान्त—लेखक पं० अजितकुमार शास्त्री; प्रकाशक श्री० दिगम्बर जैन सभा, अमरोहा, मुरादाबाद। मूल्य =)

(४) खेती-बाड़ी—लेखक पं० रामदीन पराशर, किशनगढ़ स्टेट। मूल्य ॥)

(४) जानकीहरण—महाकाव्य। लेखक रामदीन पाण्डेय ; प्रकाशक श्री० हृषीकेश पाण्डेय, माधव-दिदरी, पो० लेस्लीगञ्ज (बिहार)। मूल्य १)

❀ ❀ ❀

५—प्रेम-सतसई—लेखक दीवान बहादुर श्री० चन्द्रभानुसिंह ; प्रकाशक प्रेम-भवन गरौली (मध्य भारत), पृष्ठ-संख्या ६७ ; मूल्य ≡)

वास्तव में यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि अब राजे-महाराजे तथा राजकुमारादि भी हिन्दी की सेवा करने लगे हैं। प्रेम-सतसई भी इसी तरह का प्रयत्न है। इसके प्रारम्भ में दीवान बहादुर श्री० भारतेन्द्रसिंह जी की एक मार्मिक प्रस्तावना है। इस प्रस्तावना के पढ़ने से पता चलता है कि कुँवर भारतेन्द्रसिंह जी वास्तव में काव्य-रसिक तथा काव्य-मर्मज्ञ हैं। इस मार्मिक प्रस्तावना से इस पुस्तक का महत्व बहुत-कुछ बढ़ गया है।

कहीं-कहीं तो इस पुस्तक में लेखक का कवि-हृदय ख़ूब अच्छी तरह से विकसित हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि किसी भी पुस्तक की सब कविताएँ प्रथम श्रेणी की नहीं हो सकतीं, तथापि इस पुस्तक के अनेक स्थल बहुत अच्छे हैं। बहुत कवियों ने स्त्रियों की ख़ूब निन्दा की है और उन्हें अवगुणों की खान बतलाने की कृपा की है। यह बात इस ग्रन्थ के लेखक को खटकी है और उन्होंने निम्न-लिखित दोहे में इस सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकट की है :—

अरे बावरे ध्यान दै, मति कर तिय-अपमान।
सति, सावित्री, जानकी, 'रज' नारी धौं आन॥

कहीं-कहीं इस ग्रन्थ में अलङ्कारों के अच्छे उदाहरण पाए जाते हैं। कहीं-कहीं अनुप्रासों की छटा वास्तव में बड़ी सुन्दर है—

वन बागन "रज" बेलि बिच, बगरयो बीर बसन्त।
बच्यौ बिरहिनो बाल वह, बाँधि बाट बलवन्त।

आँखों के सम्बन्ध के कुछ दोहे इसमें वास्तव में मनोहर हैं। उदाहरणार्थ—

नैन फाँस की गाँस तें, दुसह दुःख ह्वै जाय।
ना निकसै ना दुख मिटै, पीर सु 'रज' अधिकाय।
दाव-घात अवसर तकैं, 'रज' छल सों लै ओट।
सुघर नैन अरु वीरवर, रहैं न बिन किय चोट।

वंशी सम्बन्धी दोहे भी वास्तव में बड़े सुन्दर हैं, जैसे—

कटी, छँटी, खरदी, छिली, छिदी सु तज्यौ निकेत।
बँधी, जरी, सूखी सु 'रज' स्याम-अधर-रस हेत।
धन्य बाँसुरी बावरी, भई कृष्ण 'रज' हेत।
तनु छिदाय मन बावरो, औरन को करि लेत।

राधा-कृष्ण सम्बन्धी कुछ दोहे भी वास्तव में बहुत सुन्दर हैं—

तन साखा, मन झूलना, डरी सुरत की डोर।
'रज' या बिच झूलत रहो, प्यारे जुगलकिसोर।
प्रेम-सिखर पै चढ़ि कहत 'रज' बस एक कलाम।
भयो कृष्ण को दास मैं, राधा केर गुलाम।

इस पुस्तक में कहीं-कहीं पर दार्शनिक बातों तथा अनुभवों की भी अच्छी झलक है। जैसा कि कुँवर भारतेन्द्रसिंह जी ने अपनी प्रस्तावना में लिखा है, नवीनता कठिन है, तथापि सब लोग अपने ढङ्ग से कहने का प्रयत्न करते ही हैं और दीवान बहादुर श्री० चन्द्र-भानुसिंह जी ने भी इस पुस्तक में अपने ढङ्ग से वर्णन किया है। हकीं-कहीं पर तो भाषा का अपनापन स्पष्ट मालूम पड़ता है।

—अवध उपाध्याय

जोधपुर का राजवंश

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

परिचय अन्यत्र देखिए

छप गई ! प्रकाशित हो गई !!

ख्यातनामा कहानी-लेखक डॉ० धनीराम जी प्रेम का यह हास्यरसपूर्ण नाटक सिर से पैर तक मौलिक है। लन्दन के सैकड़ों नाटकों के व्यक्तिगत अनुभवों के बाद यह नाटक लिखा गया है। अङ्गरेज़ी के Musical Comedy (सङ्गीतमय सुखान्त नाटक) की तरह का अभी तक कोई नाटक हिन्दी में नहीं लिखा गया था। प्रचार की दृष्टि से पुस्तक का मूल्य केवल ॥।); स्थायी ग्राहकों से ॥-) मात्र !

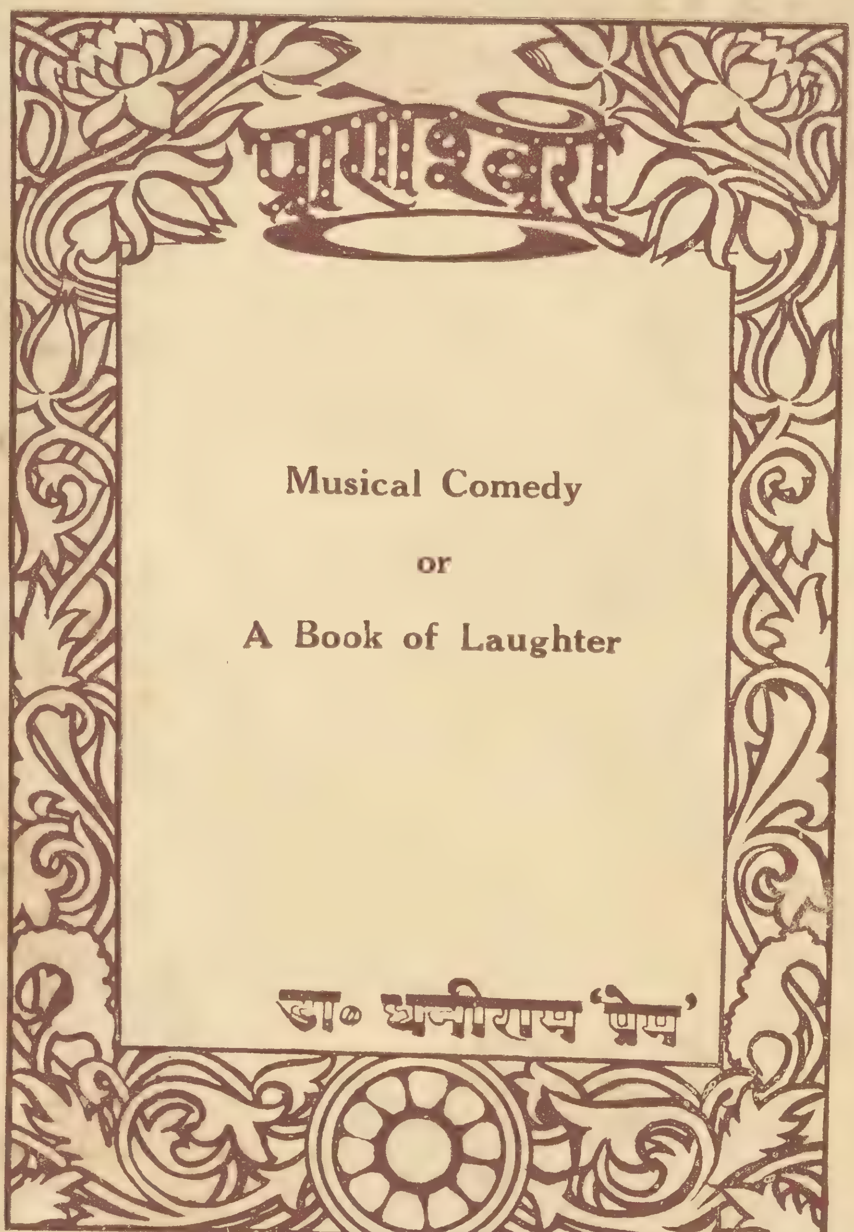

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

नेत्रों के लिए एक व्यायाम

[डॉ० रघुवीरशरण जी अग्रवाल]

नेत्रों की ज्योति पुरुष, स्त्री तथा बच्चों के लिए समान रूप से आवश्यक है। जीवन का आनन्द ही नेत्रों से है। इतने पर भी भारतवर्ष में नेत्रों की चिकित्सा तथा नेत्र-ज्योति की पुष्टता की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता है।

चश्मा लगाना एक व्याधि से कम नहीं है। यह तो निश्चय ही है कि जो मनुष्य एक बार चश्मा लगाने लगा, फिर उसके चश्मा छोड़ने की कोई आशा नहीं है। वह बिना चश्मे के कोई काम नहीं कर सकता। और अगर किसी समय चश्मा उसके पास न हो, टूट जाय अथवा खो जाय तो वह बेकार हो जाता है और उसको तुरन्त डॉक्टर के यहाँ जाकर दूसरा चश्मा ख़रीदना पड़ता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि वह रोग, जिसके लिए चश्मा लिया जाता है, नेत्रों से चला नहीं जाता है! दूसरी हानि जो चश्मों के प्रचार से देश को हो रही है, वह यह है कि इसके द्वारा हमारे ग़रीब देश का करोड़ों रुपया विदेशों को चला जाता है। तीसरी बात चश्मे की चिकित्सा में यह है कि बहुत से हमारे ग़रीब भाइयों को इससे वञ्चित ही रहना पड़ता है। इन्हीं बातों को देख कर डॉक्टर बेट्स ने कुछ व्यायाम नेत्रों के लिए निकाले हैं, जो अनुभव द्वारा उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अब मैं भी हर एक रोगी को, जो चश्मा लगाता है, इन्हीं व्यायामों द्वारा चश्मा छुड़वाता हूँ। ये व्यायाम अति सरल बातों पर अवलम्बित हैं।

प्रायः जब बच्चा पैदा होता है तो उसकी दृष्टि ठीक होती है। पर ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है, वह अपने चारों तरफ़ की वस्तुओं को देखने का प्रयत्न करता है। और ऐसा करने में उसके मस्तिष्क पर ज़ोर पड़ता है और जब मस्तिष्क पर ज़ोर पड़ता है, तो आँखों पर भी ज़ोर पड़ता है; क्योंकि मस्तिष्क का नेत्रों से घनिष्ट सम्बन्ध है। यह बात एक उदाहरण से और स्पष्ट हो जावेगी। पाठकों ने भी अनुभव किया होगा कि विद्यार्थी रात्रि के समय में जब अपनी पाठ्य पुस्तकें पढ़ने बैठता है तो उसको जल्दी ही नींद आने लगती हैं, आँखें दुखने लगती हैं और वह जल्दी ही सो जाता है। यह सब इसलिए होता है कि उसके मस्तिष्क पर ज़ोर पड़ता है और मस्तिष्क पर ज़ोर पड़ने से नेत्रों पर भी ज़ोर पड़ता है और नींद आने लगती है। परन्तु वही विद्यार्थी यदि कोई मनोरञ्जन नॉविल लेकर बैठता है, तो वह बिना किसी थकान के रात भर पढ़ सकता है। रात को बिना नींद के नाटक देख सकता है। यह सब क्यों? केवल इसीलिए कि ऐसा करने से उसके दिमाग़ पर ज़ोर नहीं पड़ता और आँखें भी नहीं थकतीं।

मस्तिष्क पर ज़ोर—झूँठ बोलने, किसी डर से, किसी नवीन वस्तु के देखने से तथा अन्य कई कारणों से पड़ सकता है और जब-जब मस्तिष्क पर ज़ोर पड़ेगा, तब-तब दृष्टि अवश्य कम हो जावेगी। इससे यह सिद्ध हुआ

कि यदि मस्तिष्क स्वस्थ है, तो नेत्र भी स्वस्थ रहेंगे। इसलिए मस्तिष्क का स्वस्थ रखना आवश्यक है।

हर एक घर में दृष्टि जाँचने वाले अक्षरों वाले बोर्ड (Eye-testing Chart) का होना परमावश्यक है। हर एक बच्चा इन अक्षरों को एक नेत्र को हथेली से बन्द कर प्रत्येक दिन बीस-बीस फ़ीट के अन्तर से पढ़े। ऐसा करने से दृष्टि बलहीन न होगी। यदि किसी की दृष्टि अधिक न्यून है और केवल चार्ट पढ़ने से कोई लाभ नहीं होता, तो उसे कुछ व्यायाम और करना पड़ेगा। व्यायाम अनेकानेक हैं, परन्तु यहाँ केवल एक ही व्यायाम, जो अति सरल और लाभकारी है, बतलाया जाता है। इसीसे बहुत से न्यून दृष्टि वाले पूर्ण दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं।

इस व्यायाम का नाम पामिङ्ग (Palming) है। दोनों हाथों की अँगुलियाँ एक-दूसरी से चिपटा कर दोनों हथेलियों को आँखों पर इस प्रकार रक्खो कि अन्दर प्रकाश न फटकने पावे। इस अन्धकार में किसी काली से काली वस्तु का ध्यान करो। जितना अधिक गहरा काला रङ्ग ध्यान में लाया जाएगा, दृष्टि को भी उतना ही अधिक लाभ पहुँचेगा। दृष्टि बढ़ने का अनुभव आप इस तरह से कर सकते हैं। दृष्टि जाँचने वाले बोर्ड (Eye-testing Chart) को आँखों से इतने अन्तर पर रक्खो कि आप किसी ख़ास लाइन को बिल्कुल साफ़-साफ़ पढ़ सकें। अब आँख को पहिले की तरह बन्द कीजिए और किसी काली वस्तु या काले अक्षर का ध्यान कीजिए। अपनी आँख को तब तक बन्द रक्खो, जब तक उस काली वस्तु का ध्यान रहे। अब अपनी एक आँख खोलो और चार्ट को पढ़ो। प्रथम तो अक्षर बड़े साफ़ दिखाई देंगे, परन्तु फिर वह धुँधले पड़ते जावेंगे। जैसे ही अक्षर धुँधले दिखलाई देने लगें, उस आँख को तुरन्त बन्द कर लो। फिर दूसरी आँख से पढ़ो और अक्षर धुँधले दिखलाई पड़ते ही उसे भी उसी प्रकार बन्द कर लो। फिर काली चीज़ का ध्यान करो और इसी प्रकार एक समय में कम से कम दस बार उस काली चीज़ का ध्यान करके उन काले अक्षरों को पढ़ते रहो। कुछ ही दिनों में आपको अपनी दृष्टि बढ़ने का अनुभव होगा। यह प्रयोग आप तब तक करते रहें, जब तक कि बीस फ़ीट की दूरी से चार्ट की हर लाइन अच्छी तरह से पढ़ न सकें। बच्चों की दृष्टि तो इस व्यायाम से बहुत ही शीघ्र बढ़ जाती है। दृष्टि पूरी हो जाने के उपरान्त भी यह आवश्यक होगा कि बीस फ़ीट की दूरी से उस चार्ट को प्रति दिन पढ़ लिया जाय। इसके समर्थन में मैं अपने अनुभव का कुछ भाग उद्धृत करता हूँ।

१—मैं स्वयम् नौ साल से चश्मा लगाता था, परन्तु इसी व्यायाम के करने से मेरी दृष्टि इतनी बढ़ गई है कि मुझे अब चश्मे की कोई आवश्यकता नहीं है और मैंने चश्मा छोड़ दिया है।

२—डी० ए० वी० हाईस्कूल, बुलन्दशहर का एक विद्यार्थी, जिसकी अवस्था लगभग बारह वर्ष की होगी, जन्म से बाँईं आँख से अन्धा था। इस बेचारे ने इलाज के लिए बड़े-बड़े डॉक्टर लगाए, परन्तु अन्त में हरएक का यही उत्तर मिला कि रोग असाध्य है। भाग्यवश वह मेरे पास भी आया। मैंने उसे इसी व्यायाम का प्रयोग कराया। आप इस बात पर अवश्य अचम्भित होंगे कि उस विद्यार्थी की दृष्टि एक मास में बिल्कुल ठीक हो गई। इसके उपरान्त मैं उस बच्चे को लेकर कैप्टन रामचन्द्र राय साहब सिविल सर्जन के पास उसकी परीक्षा कराने को गया। जब लड़के ने सब अक्षर ठीक-ठीक बीस फ़ीट की दूरी से बतला दिए, तो उन्होंने कहा कि जब तक इस चिकित्सा से पहले और पीछे मैं रोगी को नहीं देख लूँ, तब तक मुझे इस प्रकार की चिकित्सा में विश्वास नहीं हो सकता, और मेरी पुत्री बहुत दिनों से चश्मा लगाती है, यदि आप उसका चश्मा छुड़वा कर उसकी दृष्टि ठीक कर दें तो मुझे अवश्य विश्वास हो जाए।

मैंने प्रसन्नतापूर्वक उस देवी का इलाज करना प्रारम्भ किया। इसी व्यायाम के द्वारा केवल चौदह दिन में उस देवी की दृष्टि पूरी हो गई। तब मैंने सिविल सर्जन साहब से अपनी पुत्री के नेत्रों की परीक्षा के लिए निवेदन किया। वह रोगी की परीक्षा करने के बाद उसे ठीक पाकर बड़े प्रसन्न तथा अचम्भित हुए, और मुझे मेरी सफलता पर बधाई दी। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से रोगी इसी व्यायाम द्वारा ठीक किए गए हैं।

राजकुमार चण्ड

चण्ड राणा लाखा के सबसे बड़े पुत्र थे। एक दिन का ज़िक्र है कि राणा जी अपने दरबार में सब सरदार व सामन्तों सहित बैठे थे, उसी समय जोधपुर के राजा रणमल का भेजा हुआ एक दूत वहाँ आया। पूछने पर मालूम हुआ कि राजा जी अपनी लड़की का सम्बन्ध राणा जी के पुत्र चण्ड के साथ करना चाहते हैं। चण्ड उस समय दरबार में नहीं थे, इसलिए उनकी राय बिना लिए उत्तर नहीं दिया गया और दूत को कुछ देर वहीं ठहरना पड़ा। राणा जी ने इस बीच में अपनी दाढ़ी को चढ़ाते हुए कहा—"मैं जानता हूँ कि मेरे समान सफ़ेद दाढ़ी-मूँछ वाले के लिए आप लोग इस प्रकार खेल की सामग्री नहीं भेजते।" सभासद इसी वाक्य को बार-बार कहने लगे और चण्ड ने भी इसको सुन पाया। बस उन्होंने वहीं प्रतिज्ञा कर ली कि वह लड़की उनकी माता है, स्त्री कभी नहीं हो सकती। लाख समझाने-बुझाने और धमकाने पर भी वे अपनी "भीष्म-प्रतिज्ञा" से न टले।

तब राणा जी ने क्रोधित होकर चण्ड से कहा कि, "राजा रणमल की मान-रक्षा के लिए मैं ख़ुद ही शादी करता हूँ, परन्तु याद रक्खो कि उससे जो सन्तान होगी वही मेरे बाद इस राज्य की मालिक होगी और तुम्हारा कोई भी अधिकार न रहेगा। यदि मन्ज़ूर है तो प्रतिज्ञा करो।" इस वाक्य ने धीर-वीर चण्ड को ज़रा भी विचलित न किया। उसने कहा कि, "मैं भगवान की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं स्वयम् ही अपने उत्तराधिकार को छोड़ दूँगा।"

होनहार बड़ी बलवान होती है। पचास वर्ष के बुड्ढे राणा का विवाह बारह वर्ष की कन्या के साथ हुआ, जिससे मुकुल नामक एक पुत्र हुआ। जब वह पाँच साल का हुआ और महाराणा गया की रक्षा के लिए युद्ध में जाने लगे तो चण्ड ने पिता के सामने ही बालक मुकुल को राज्य-सिंहासन पर बिठा दिया और आप उसकी रक्षा में रहा। कुमार के इस स्वार्थ-त्याग से साफ़ ज़ाहिर होता है कि वे किस विशाल हृदय के रखने वाले थे। उन्होंने जिस चतुराई और गम्भीरता के साथ राज-काज सँभाला, वह प्रशंसनीय है। परन्तु मुकुल की माता चण्ड के गुणों को न जान सकी। उसने उन पर बहुत से झूठे कलङ्क लगाए, जिससे चण्ड के हृदय में भारी चोट पहुँची और राज्य को छोड़ कर वे बाहर चले गए।

अब रानी ने अपने पिता रणमल तथा भाई जोधराव को राज-भार सौंपा। उन्होंने मुकुल को बालक देख राज्य को हड़प जाना चाहा, परन्तु रानी से यह बात छिपी न रही और अब उसको मालूम हुआ कि चण्ड और रणमल में से कौन राज्य और राना का सच्चा हितैषी था। रानी ने चण्ड को बुलाया और सारा क़िस्सा कह सुनाया। चण्ड ने शीघ्र ही आकर रणमल को मार मुकुल को राज्य सौंपा।

चण्ड के वंश वाले चण्डावत (चन्दावत) नाम से पुकारे जाते हैं, इनके रहने का स्थान सालुम्ब्रा है। मेवाड़ के सर्दारों में सालुम्ब्रा सरदारों की बहुत मानता है।

—गङ्गा देवी

❀ ❀ ❀

अनाथ पत्नी

[ले० पण्डित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी]

[भूमिका-लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

इस उपन्यास में बिछुड़े हुए दो हृदयों—पति-पत्नी—के अन्तर्द्वन्द्व का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक एक बार इसके कुछ ही पन्ने पढ़ कर करुणा, कुतूहल और विस्मय के भावों में ऐसे ओत-प्रोत हो जायँगे कि फिर क्या मजाल कि इसका अन्तिम पृष्ठ तक पढ़े बिना कहीं किसी पत्ते की खड़खड़ाहट तक सुन सकें !

अशिक्षित पिता की अदूरदर्शिता, पुत्र की मौन-व्यथा, प्रथम पत्नी की समाज-सेवा, उसकी निराश रातें, पति का प्रथम पत्नी के लिए तड़पना और द्वितीय पत्नी को आघात न पहुँचाते हुए उसे सन्तुष्ट रखने को सचेष्ट रहना, अन्त में घटनाओं के जाल में तीनों का एकत्रित होना और द्वितीय पत्नी के द्वारा, उसके अन्तकाल के समय, प्रथम पत्नी का प्रकट होना—ये सब दृश्य ऐसे मनोमोहक हैं, मानो लेखक ने जादू की क़लम से लिखे हों !!

लेखक कहानी और उपन्यास लिखने में वैसे भी लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, पर इस उपन्यास के लिखने में तो उन्होंने सच-मुच कमाल किया है। शरत बाबू के उपन्यासों में जो मोहक आकर्षण है और मेरी करेली के उपन्यासों में जो तड़पन, वह सब आपको इसकी पृष्ठ-प्यालियों में सर्वत्र ही छलकता हुआ मिलेगा !!!

काग़ज़ बढ़िया, छपाई लाजवाब, मूल्य केवल २)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

चन्द्रलोक, इलाहाबाद

नवयुग की वेदना

प्रताप-कुटीर
महाराजा-कॉलेज, जयपुर

प्रिय लीला,

घोर रुद्र-गर्जन के पश्चात् की यह प्रभात-बेला कितनी शान्त है ! इस तारिका-विहीन नभ-मण्डल के नीचे केवल एक मेरे ही कमरे में वैज्ञानिक चन्द्रमा का एक अति शून्य विन्दु टिमटिमा रहा है, नहीं तो सारा छात्रालय मस्त और मधुर निद्रा में सो रहा है। तुम्हारे कॉलेज के छात्रालय में तो अब तक कई स्टोव नीली अग्नि-शिखाओं पर चाय उबालने लगे होंगे। तुम और कमल भी तो इस समय न जाने स्वप्नों के किस नन्दन-निकुञ्ज में रमण कर रही होंगी ?

आज मुझे तो इस ब्राह्म-मुहूर्त में रह-रह कर कण्व ऋषि के तपोवन की याद आ रही है, उस स्वर्ण-युग के ऊषा-काल की स्मृति जग पड़ी है, स्मरण कर रहा हूँ मैं शकुन्तला का, अनुसूया और प्रियम्वदा का, और ऋषि-कुमारों का ! पुलकित हो रहा हूँ, पर साथ ही वेदना की एक तीव्र लहर सारे शरीर में टीस मार रही है। इसे मैं क्या कहूँ, आनन्द या शोक ?

क्या तुम भी कभी......आह ! क्षमा करना, भूल गया था। तुम तो बहुत अधिक आधुनिक (Modern) हो ! 'प्राचीन' की शरण जाना तुम्हारे लिए एक लज्जा की बात होती होगी। पर हाँ, किंग्सले हॉल की प्रभाती का तो ध्यान कभी-कभी आ ही जाता होगा। अस्तु !

प्रिये, कल वाले पत्र में तो तुमने अपना हृदय ही खोल कर रख दिया है। कैसी सजीव धड़कन है उसमें ! राजस्थान की निर्जीवता में सन्देह ही क्या है ? उसके राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और मानसिक पतन के कढ़े विचारों ने तो मुझे घण्टों रुलाया है। उस वृहत् झील के समीप एक पत्थर की चट्टान पर बैठ, जब कभी मारवाड़-विभूति का, मेवाड़-शौर्य का—हाँ, राजपूताने की सहस्त्रों थर्मापॉलियों (Thermopolies) का ध्यान करता हूँ, तो बस अजीब मस्ती छा जाती है, भुजाएँ फड़कने लगती हैं, रक्त में प्रबल ज्वार आ जाता है। पद्मिनी, प्रताप, दुर्गादास और महामाया की पवित्र स्मृतियाँ तो मुझे एक ऐसे लोक में ले जाती हैं, जहाँ दासता, भोग-विलास, स्वेच्छाचारिता, स्वार्थपरता और कायरता नाम को भी नहीं। वहाँ तो हैं स्वाभिमान, वीरता, निष्काम सेवा और देश-प्रेम !

इस बीसवीं सदी के राजस्थान की कहानी तो बड़ी ही वेदनापूर्ण है—भला तुम्हें वह 'टॉड' कैसे बता सकता था ? राजपूतनी ? हाँ प्रिये ! वे तो जाने कब की जौहरों में जल-जल कर स्वाहा हो गईं। उन होम-रेणुओं की तो अब भस्म भी हाथ नहीं आती ! मैं तुम्हें अब किसे बताऊँ ! भीमकाय, लम्बोदर, चाँदी की बेड़ियों से लदी, मस्तक पर आधुनिक राजस्थान का ट्रेड-मार्क शोभित किए, घाघराधारी, अनपढ़ स्त्रियों की तुलना यदि महाराष्ट्रीय महिलाओं से करता हूँ, तो पृथ्वी-आकाश का अन्तर पाता हूँ।

आकाश-गङ्गा की उज्ज्वल और निर्मल धारा से मृतक सागर (Dead Sea) की काली और भारी लहरों की तुलना !!

यहाँ डिग्री-क्लास में किसी राजपूत—'लीला' के साथ-साथ पढ़ने की कल्पना करना कितना व्यर्थ, कितना हास्यास्पद है। लज्जा आती है कहते हुए कि यहाँ का स्त्री-समाज ग़दर के समय के बुड्ढे और बुढ़ियों के चक्कर में पड़, किस उपेक्षा के साथ इस नवयुग की ज्योति से विमुख हो रहा है।

किसी आधुनिक साहित्यिक या औपन्यासिक नायिका (Heroine) का अध्ययन करके जो तुलना-

त्मक भाव मेरे हृदय में उत्पन्न होते हैं, उनका उल्लेख नहीं किया जा सकता। वे तो नेत्र मूँद कर अनुभव करने की किसी 'सोफ़ोक्लियन ट्रैजडी' का निचोड़ मात्र हैं। इस विज्ञान और क्रान्ति के युग में भी माध्यमिक काल के समाज (Medieval Society) में रहना नई ज्योति के पुत्र को कितना अखरता है।

हाँ लीले ! सच कहती हो—ठाकुरों की भङ्ग और अफ़ीम तो अभी तक नहीं उतरी है। उस ईंठी हुई दाढ़ी, शानदार रङ्ग-विरङ्गे साफ़े और अँगरखे के नीचे सिसक रहा है सदियों का एक परतन्त्र हृदय ! परन्तु ठाकुरों को इस तड़पन का अभी पता तक नहीं है। उस जीवन का उद्देश्य केवल निज उदर तक ही परिमित है। बेटे, पोते और लकड़पोते को किसी भाँति स्टेट-सरविस मिल जाय, फिर कल्याण ही कल्याण है। फिर क्या अन्तर रहा शीशोदिया, गहलौट और चन्दावत ठाकुरों में और मारवाड़ी बनिए में।

देवि, प्रिन्सिपल के बँगले की शान से चिढ़ कर तथा कृषकों और भीलों के झोपड़ों से प्रभावित हो, मैंने अपने कमरे को प्रताप-कुटी के नाम से पुकारना प्रारम्भ कर दिया है। प्रताप-कुटी या गाँधी-कुटी, मेरे लिए तो दोनों एक ही अर्थ रखते हैं। कितना जादू है, ओह ! कितना स्वर्गीय आनन्द है इस नाम में ! सरलता, पवित्रता और निर्भयता का एकदम सुन्दर समन्वय। यही तो नवयुग का सन्देश है न !

क्या चुटकियाँ ली हैं, क्या व्यङ्ग-कौतुक रचा है—बड़ी नटखट है यह कमल ! बनारस जैसे विश्वविद्यालय में भी इसका मन न लगा। और लगे भी क्यों ? कमल और 'लिली' के आकर्षण का तो प्रकृत-कवि वर्ड्सवर्थ भी शायद वर्णन न कर सके। ऐसा जान पड़ता है कि मानो उसी के व्यङ्गोत्तर में कल नगर में एक मृतक-भोज होने वाला है। 'जती' भी आएँगे, सत्कार होगा, पूजा होगी। कमल तो हँसेगी ही, यदि मैं कहूँ कि इसी परम-धाम की यात्रा करने वाले करोड़पति ने श्रावण की एक सन्ध्या को अपनी पगड़ी मेरे चरणों पर डाल दी थी—क्यों ? (कमल से कहो, हँसना आरम्भ करे) हाँ, क्यों ? अपनी इकलौती सुकुमारी फूलकुँवर को मुझसे श्रीमती रूप में ग्रहण कराने के लिए। कमल तो उसे यहाँ की यात्रा में देख ही चुकी है। असभ्यता, मूढ़ता, हठ, अभिमान उस छोकरी में कूट-कूट कर भरा हुआ है, उसकी शारीरिक और मानसिक सुन्दरता को सजीव करने के लिए पूरी एक शताब्दी—दो जन्मों—की आवश्यकता है। भला मुझ-सा साहित्यिक जीव कहीं रुपयों के साथ विवाह थोड़े ही करता ? अस्तु।

हाँ, शक्ति-आश्रम गया तो था। गहरा प्रभाव पड़ा। ज्ञात होता था, पूर्व और पश्चिम मिल रहा है, नवीन-भारत का निर्माण हो रहा है। साधु टी० एल० वास्वानी के उपदेश तो आन्तरिक शत्रुओं पर आक्रमण करके भीतरी चक्षुओं को नवयुग की ज्योति से प्रकाशित कर देते हैं। कभी न भूलूँगा वहाँ के उन चालीस दिवसों को। भाई-बहिनों का सङ्गम था, रचनात्मक कार्य-प्रणाली थी। उस तरुण दम्पति के प्रेम के रस से भरी जलेबी तो सदैव याद रहेगी।

परन्तु वहाँ से लौटा तो अनेक वेदनाओं का नया बोझा मेरे सर पर हो गया था। कोई राजपूतनी वहाँ पर थी ? न, क्योंकि हो ही नहीं सकती थी। सबके प्रतिनिधि थे, पर राजस्थान का मातृ-मण्डल तो निर्जीव और कृत्रिम गुड़ियों से भरा हुआ है। उसमें ऐसे साहस और लगन वाली रमणी-रत्न कहाँ ? सामने के मन्दिर पर बैठ कर दुःखाश्रु टपकता रहता था। और.........अब क्या करोगी अधिक सुन कर ? वहाँ की बड़ी वेदना-पूर्ण कहानी है—काश कि तुम भी तब वहाँ होतीं !!

ठीक है, सहमत हूँ। काश्मीर है तो भारत का स्विटज़रलैण्ड। और यह भी माना कि एक कवियित्री की प्रतिभा के लिए वह ख़ूब उपयुक्त होगा। फिर भी तुमने वहाँ जाना स्थगित करके बुद्धिमानी ही की है। सराहना करता हूँ। वहाँ का भ्रमण वस्तुतः समयानुसार नहीं है।

बस, अब अधिक न लिखूँगा। कमल कहेगी, लो इतना बड़ा पत्र लिख दिया कि पढ़ते-पढ़ते चाय को भी देर हो गई !

यदि उचित समझो और समय मिले तो भाव-प्रदर्शन करती रहा करो। मेरा सहारा-सा सन्तप्त हृदय इससे हरा होता रहता है, शान्ति मिलती है, अकेलापन मिटता है।

—तुम्हारा वीरेन्द्र

२

शिवाजी-आश्रम,
फ़रगुसन कॉलेज, पूना

प्रिय वीरेन्द्र,

मुझसे इतनी आशा न रखते होगे ! पर यह तो होना ही था—जल्दी या देर में। भला जब महाराष्ट्र और राजस्थान की विषम-वेदना के बादल आपस में वेग से टकरा रहे हैं, तो ऐसे आश्रमों की वर्षा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अब रात एक पहर चली गई है, महात्मा बुद्ध, समर्थ रामदास और महात्मा गाँधी के दिव्य सङ्घों की नाईं हमारे इस शिशु-सङ्घ ने भी अभी ही रात्रि की प्रार्थना की है। दोनों समय कण्व के आश्रम का सा वायुमण्डल यहाँ पर भी थोड़ा-बहुत हो जाता है। शान्ति, आनन्द और स्फूर्ति, इन बहिन और भाइयों के हृदयों में लबालब भर रही है। क्या इतने पर भी मुझे तटस्थ और अति आधुनिक (Too Modern) कहोगे ?

वेदनाओं का घर्षण हो रहा है। आत्म-निरीक्षण बड़ी तत्परता से हो रहा है। चाय, पाउडर, क्लब, सिनेमा और फ़ैशन को सदैव के लिए तिलाञ्जलि दे दी है। विदेशी कैंचुली अलग जा पड़ी है, 'स्वदेशी लीला' का मानो पुनर्जन्म हुआ है। कमल ? हाँ, वह तो अभी तक ढङ्ग पर नहीं आई। बड़ी रोमाण्टिक (Romantic) बन रही है वह आजकल। कई बार उसके टी-सैट, रैकिट और पाउडर के डिब्बों को फेंक चुकी हूँ, पर वह केवल एक हलका और दबा हुआ हास्य करके चुप हो जाती है। तो भी मैं निराश नहीं हूँ। प्राचीन और नवीन का योग शीघ्र हो जायगा। साधु जी की पुस्तकों ने तो मुझे बहुत सचेत किया है।

वीरेन्द्र ! महाराष्ट्र-महिला के प्रति तुम्हारे हृदय में जो प्रगाढ़ आदर और श्रद्धा है, उसके लिए धन्यवाद ! तुमने तो पिण्डारकर बाबू की 'बैन' के यहाँ जाकर देख ही लिया है—कैसा स्नेह, बेतकल्लुफ़ी, सामञ्जस्य और सहयोग है एक महाराष्ट्र गृहस्थ के जीवन में। कोई राजपूत-युवक इस बात की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता कि पिता अपने पुत्र की अनुपस्थिति में पुत्र-वधू के निकट ही बैठा हुआ उसे कालिदास पढ़ा रहा है; या पाकशाला के निकट दोनों तरकारी छील-छील कर ऑफ़िस से लौटने वाले प्रिय-पुत्र के लिए खाना तैयार कर रहे हैं। राजपूत-वधू तो शायद इन वयोवृद्ध को ढाई फ़ीट का घूँघट काढ़ सात द्वारियों के पीछे-पीछे छिप कर बैठ जाती होगी ! क्यों है न ?

वास्तव में इस तुलनात्मक दृष्टि से हमारा समाज अति उन्नत है—हाँ, हम आधुनिक (Modern)

श्रीयुत तथा श्रीमती बिहारीलाल
(एक सामाजिक क्रान्ति करने वाली दम्पति)

होने का दम भर सकती हैं। हमारी सामाजिक स्वतन्त्रता हमें संसार की विशालता, उसके दुख-सुख, छल-कपट आदि को समझने में बड़ी सहायता प्रदान करती है। और अवसर आने पर हम किसी भी राष्ट्र से टक्कर ले सकती हैं। हाँ, यदि आधुनिक उच्छृङ्खलता न आने पाए तो हम शक्ति हैं—दुर्गा हैं !

समय कठोर है। अकेला रहना बड़ा अखरता है। अब एक ऐसे जीवन-सहचर की आवश्यकता है, जो अपने से ही उद्देश्य और भावनाएँ रखता हो, जो

एक जीती-जागती कर्मभूमि हो, कविता हो, नाटक हो, उपन्यास हो। और हाँ हो वीर, भावुक और सत्य-पथगामी। नवयुग की वेदनाओं से उसकी रग-रग व्यथित हो और शहीदों का सा आनन्द, निर्भयता और अमरत्व उसके रक्त-विन्दुओं में रमा हो !

क्यों, क्या मेरे इस आदर्शवाद पर तुम भी हँसोगे? मैं तो समझती हूँ कि तुम इसे प्रत्युक्ति या प्रमाद कभी न समझोगे, वरन् गद्‌गद हो जाओगे मेरे इस आदर्श-परिवर्तन पर !! कितना सादृश्य है हमारे उद्देश्यों में अब ! यदि विश्वकर्मा आकर लीला को वीरेन्द्र बना दें और वीरेन्द्र को लीला, तो यह अतीत स्मृति-युक्त परिवर्तन किसी को भी अरुचिकर न हो। क्योंकर हो, जब मूल-सिद्धान्त हमारे एक ही से हैं !

हाँ, तो 'अकेलापन' मिटाने का प्रयत्न मेरे पिता भी कर रहे हैं। बैरिस्टर हैं, इसलिए योग्य वर ढूँढ़ा। एकान्त में हम लोग मिले। टाई, टोप, सूट-बूट से सजे हुए आगन्तुक अपने वर में ही परदेशी बने हुए थे। चश्मों से सुरक्षित उनकी चञ्चल आँखें मेरी स्वदेशी साड़ी पर थोड़ी देर ठहर कर सीधे मुख की ओर जा ठहरीं। थोड़ी देर की निस्तब्धता के बाद लगे अङ्गरेज़ी में बातें करने, फिर मैंने उनसे 'दाम्पत्य जीवन के उद्देश्य', 'आदर्श पति और पत्नी', 'भारत का भविष्य' आदि विषयों पर प्रश्न किए।

अजीब विलायती चालों से भरे हुए थे उनके उत्तर। वे १६१२ ई० के भारत में विचरते दीख पड़ते थे। उनको तो होटल, क्लब, डान्स, सिनेमा, टेनिस आदि में जीवन-पर्यन्त सहयोग देने वाली एक पत्नी चाहिए थी। ध्रुव का अन्तर था हमारे सिद्धान्तों और जीवन-लक्ष्यों में।

प्रिय वीरेन्द्र ! नहीं ज्ञात कौन सी शक्ति मुझे राजस्थान की ओर खींच रही है। कैसी अनोखी पहेली है—यदि राजस्थान को कर्मशील, नई ज्योति वाली युवतियों की आवश्यकता है तो महाराष्ट्र को भी ऐसे ही सत्यनिष्ठ, धर्म-प्रिय, कर्मयोगी युवकों की। दोनों ही अधूरे हैं। फिर ?

हाँ, उस स्वप्न की याद और आ गई। शनिवार की रात्रि थी। पूना में शिवाजी की तेजशाली मूर्ति के सामने राणा साँगा, प्रताप, दुर्गादास, पद्मिनी, महामाया, समर्थ रामदास, महादात्री, बाजीराव, जीजाबाई और ताराबाई की 'राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स' हो रही थी। शिवाजी बड़े आवेश के साथ वक्तृता दे रहे थे। उस सिंहनाद ने मेरे नेत्र खोल दिए। वीर श्रेष्ठ शिवाजी की तड़पन ने मेरी तमाम आत्मा में तड़पन भर दी। होस्टल की दीवार फाँद रात्रि की घोर कालिमा में मैं उसी ओर विद्युत-गति से चल दी। रास्ते में कृष्ण, बुद्ध, हौन्चवाँग, रूसो, गेटे, टालसटॉय, रस्किन, मैज़िनी, मॉर्क्स, लेनिन भी एक बैलगाड़ी में कोई विश्व-गीत गाते उसी ओर जा रहे थे। हाँ, गाँधी गड़वारे थे। पर मैं तो भागती ही चली गई। मैं वहाँ पहुँची, तुमुल ध्वनि हुई। मुझे एक गेरुआ साड़ी पहिनने को दी गई। थोड़ी देर पश्चात् तुम भी चेतक पर सवारी करते पण्डाल में आए। तुमुल ध्वनि हुई। प्रताप ने तुम्हें भी केसरिया वस्त्र दिया। बन्देमातरम् का नाद हुआ। हमें परीक्षा के पर्चे दिए गए। कमल और विनोद को किसी ने न आने दिया।.........फिर अग्नि की वर्षा हुई, ज्वालामुखी फटा, देवदूत ने हमें उठाया। हाँ, हम उत्तराखण्ड की पुण्य भूमि में थे!.........मैं इस स्वप्न का अर्थ नहीं समझ सकी, क्या तुम समझ सकोगे ?

ओह री व्यग्रता ! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थान और महाराष्ट्र का मेल हो रहा है, आदर्श और कर्म की सन्धि हो रही है, ठाकुरों के हृदय वीर-रस से धड़कने लगे हैं, चित्तौड़-दुर्ग की पवित्र भस्म-राशि के एक-एक कण से पद्मिनियाँ बन रही हैं, अरावली में भीलों की बालिकाएँ बन्देमातरम् गा रही हैं, पूना और जयपुर एक बन गए हैं, तथा साबरमती, शान्ति-निकेतन, शिवाजी-आश्रम सभी प्रताप-कुटी के निकट आ बसे हैं—हाँ, प्रताप-कुटी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बन गई है। हाँ, और 'लीला' राजपूतनी बन गई है, भिक्षुणी बन गई है ; और 'वीरेन्द्र'.........भिक्षु !

बस, अब आगे नहीं लिखा जाता, स्फूर्ति से काँप रही हूँ।...............

—तुम्हारी लीला

—बनारसीदास कौशिक, बी० ए०

* * *

स्वर्गीय बाबू रामनारायण जी दूगड़

उदयपुर-मेवाड़ के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्रीयुत बाबू रामनारायण जी दूगड़ का ता० १३ अक्टूबर, १९३१ को जोधपुर में ७५ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। आपकी इस अचानक मृत्यु ने इतिहासज्ञों तथा पुरातत्वज्ञों के बीच एक स्थान रिक्त कर दिया है, जिसकी पूर्ति कठिनता से ही हो सकेगी। अपने

राजपूताने के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ
स्वर्गीय बाबू रामनारायण जी दूगड़

परिश्रम, विद्वत्ता तथा सादा रहन-सहन आदि गुणों के कारण आपका दर्जा इतिहासज्ञों में बहुत ऊँचा हो गया था और जनता में भी आपका बड़ा आदर होता था। आप हिन्दी तथा फ़ारसी के अच्छे विद्वान थे। मृत्यु-समय भी आप अपनी पुस्तक 'वीरभूमि चित्तौड़गढ़', जो आपके सुपुत्र श्रीयुत के० आर० दूगड़ की कृपा से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है, के प्रूफ़ देख रहे थे।

हिन्दी में आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं—'राजरत्नाकर', 'पृथ्वीराज चौहान की जीवनी' तथा 'पृथ्वीराज रासो की समालोचना'। आपने इनके अतिरिक्त 'मुहणोत नेनसी की ख्यात' नामक ग्रन्थ का सम्पादन भी किया था।

आप एक विधवा स्त्री, दो पुत्र तथा दो पुत्रियाँ छोड़ गए हैं। ईश्वर आपकी आत्मा को सद्गति दे।

—एक सम्बाददाता

❀ ❀ ❀

क्षत्राणी नीलदेवी

यवन सेनापति अब्दुल शरीफ़ के अत्याचारों से पञ्जाब प्रान्त की जनता में भीषण हाहाकार मचा हुआ था। लूटती, मारती और ग्रामों को जलाती हुई उसकी प्रबल सेना नूरपुर के सन्निकट पहुँची। यह समाचार सुन कर नीलदेवी से न रहा गया और उसने अपने पति सूरजदेव से कहा—"प्राणनाथ! नूरपुर के निकटवर्ती ग्रामों में ही अपने अत्याचारों से समस्त प्रजा को यवन-सेना पीड़ित कर रही है, क्या आप इसका कुछ प्रबन्ध नहीं कर सकते, क्या इस भारत-भूमि पर कोई क्षत्री वीर नहीं रहे, जो हमारी भारत-ललनाओं का पवित्र सतीत्व-धर्म नष्ट हो रहा है? यदि नहीं तो आप क्यों चुपचाप बैठे हैं? आपका कर्तव्य है कि अपनी माँ-बहिनों के लिए, अपनी जाति के लिए और पवित्र भारत-भूमि के उद्धार के लिए प्राणों को न्यौछावर करने के वास्ते तैयार हो जाइए।"

नीलदेवी के उत्साहपूर्ण भाषण को सुन कर सूरजदेव की भी निद्रा-भङ्ग हुई। उन्होंने देवीसिंह नामक अपने मित्र को बुलवा कर परामर्श किया और नगर में एक ढिंढोरा पिटवा कर यवन से लड़ने के लिए तैयार हो गया। ढिंढोरा के सुनते ही वीर राजपूत युवक युद्ध के सामान से लैस होकर सूरजदेव के मकान पर एकत्रित होने लगे और बात की बात में लगभग एक हज़ार क्षत्री इकट्ठा हो गए। उन वीरों को देख कर नीलदेवी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने सभी के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर कहा—"भाइयो! आज का दिन आप लोगों के लिए बड़े ही सौभाग्य का है, क्योंकि क्षत्रियों के लिए ऐसे सुअवसर बार-बार नहीं मिलते, इसलिए

वर्षों से दबे हुए अरमान यवन सेना से युद्ध करके आज निकाल लो और क्षात्र-धर्म पर अपने को बलिदान कर दो।"

नीलदेवी का ओजस्वी, पुरजोश भाषण सुन कर क्षत्रियों के दिल दूने हो गए। समस्त राजपूत वीर रणोन्मत्त होकर अपनी-अपनी तलवारें चमकाते हुए यवन-सेना की ओर चल पड़े। यवनों को भी इसका पता लगा और वे भी तैयार होकर खड़े हो गए। युद्ध आरम्भ हो गया, वीर क्षत्रियों ने यवनों के छक्के छुड़ा दिए और दिन भर लड़ाई होने पर यवनों के लगभग तीन सौ सिपाही काम आए और सेनापति अब्दुल शरीफ़ का लड़का भी सुरलोक पधारा, परन्तु वीर राजपूतों की ओर केवल पचास वीर बलिदान हुए।

कई दिन संग्राम होने से यवन सेना बहुत कम रह गई। रोज़ाना अब्दुल शरीफ़ का ही अधिक नुक़सान होता रहा। अन्त में विजयलक्ष्मी से निराश होकर दग़ाबाज़ अब्दुल ने रात्रि के समय धावा बोल दिया। उस समय वीर राजपूत-गण अपने डेरों में विश्राम कर रहे थे। इस अचानक आक्रमण को वे न सँभाल सके और सूरजदेव गिरफ़्तार हो गया। पिता के क़ैद होने का समाचार सुन कर सूरजदेव का पुत्र सोमदेव उन्मत्त हो उठा और उसने भी रात्रि के समय ही छापा मारने का सङ्कल्प किया। परन्तु नीलदेवी ने उसके मनोरथ को न सिद्ध होने दिया और उसने स्वयम् अब्दुल शरीफ़ से बदला लेने का दृढ़ सङ्कल्प किया।

सूरजदेव के क़ैद हो जाने पर अब्दुल शरीफ़ ने विजय का डङ्का बजवा दिया और जीत होने के उपलक्ष में दूसरे ही दिन अपने मुन्शी को जलसा आम होने का हुक्म दिया। आज्ञानुसार फ़ौरन ही महफ़िल का इन्तज़ाम किया गया। तमाम जनता जलसा देखने के लिए आने लगी। एक वेश्या भी अपने सफ़रदाओं के सहित महफ़िल में आ उपस्थित हुई। सभा लग गई, गाना आरम्भ हुआ और शराब की बोतलें ख़ाली होने लगीं। वेश्या के सौन्दर्य को देख कर अब्दुल की अजब हालत हो गई। नशे में चूर हो शराब का प्याला देता हुआ रण्डी से बोला—लो! प्यारी लो! जाम पियो और अपनी इस.........

वेश्या ने सलाम कर उत्तर दिया—हुज़ूर, मैं पीकर आई हूँ, यदि और पी लूँगी तो फिर मुझसे नाच-गाना कुछ भी न हो सकेगा, इसलिए मुझे मुआफ़ कीजिए।

फिर गाना आरम्भ हुआ, वेश्या के सौन्दर्य पर तो अब्दुल पहिले ही मुग्ध हो चुका था, तिस पर कोकिल की सी मधुर वाणी द्वारा प्रेम-रस से भरा हुआ सङ्गीत सुन कर और भी विह्वल हो गया। नशे में चूर दुराचारी अब्दुल अपने गले से हार निकाल कर वेश्या से बोला—"जानमन लो! यह एक नाचीज़ हार लो और......।" 'अच्छा' कह कर वेश्या आगे बढ़ी और अपनी चोली के अन्दर से एक पैनी कटार निकाल कर जल्दी से अब्दुल शरीफ़ की छाती में घुसेड़ दी। उसका यह हाल देख कर सफ़रदाओं ने भी बाजों को अलग फेंका और अपने अचकन के अन्दर से तलवारें निकाल कर यवनों को धराशायी करना आरम्भ कर दिया। इसके साथ ही सभा में बैठे हुए कुछ दर्शक लोग भी अपने-अपने अन्दर छिपी हुई तलवारें निकाल कर यवनों को मारने लगे। इस प्रकार की मार-काट देख कर सूरजदेव भी, जो उसी जगह एक कटघरे में बन्द था, कटघरे को तोड़-ताड़ कर निकल आया और उन्हीं कटघरे वाली लोहे की छड़ों से शत्रुओं को मारने लगा। यवन सिपाही भी झटपट अपने-अपने हथियार लेकर मुक़ाबिला करने के लिए जुट पड़े, परन्तु सँभल न सके। यवन सेना भागने ही वाली थी, तब तक एक सिपाही ने सूरजदेव के पीछे से आकर एक हाथ तलवार का ऐसा जमाया कि सूरजदेव का शिर धड़ से अलग हो गया। लड़ते-लड़ते वह वेश्या भी सूरजदेव के पास पहुँच गई थी और सिपाही को वार करते देख कर सूरजदेव का शिर अपने हाथों में लेकर युद्धस्थल से बाहर निकल आई। वहाँ पर देवीसिंह एक घोड़ा लिए हुए पहिले से ही खड़े थे। उसी घोड़े पर सवार होकर वेश्या नूरपुर की ओर चल पड़ी।

अब्दुल शरीफ़ की महफ़िल में जाने वाली वेश्या स्वयम् नीलदेवी थी और साथ के सफ़रदा तथा दर्शक वीर राजपूतगण थे। नीलदेवी अपने पति का शिर लिए हुए नूरपुर आई और पुत्र सोमदेव तथा अन्य राजपूतों को क्षात्रधर्म का समुचित उपदेश देकर हँसती हुई अपने पति के साथ सती हो गई।

—शिवदत्त प्रसाद शर्मा, एच० एम० बी०

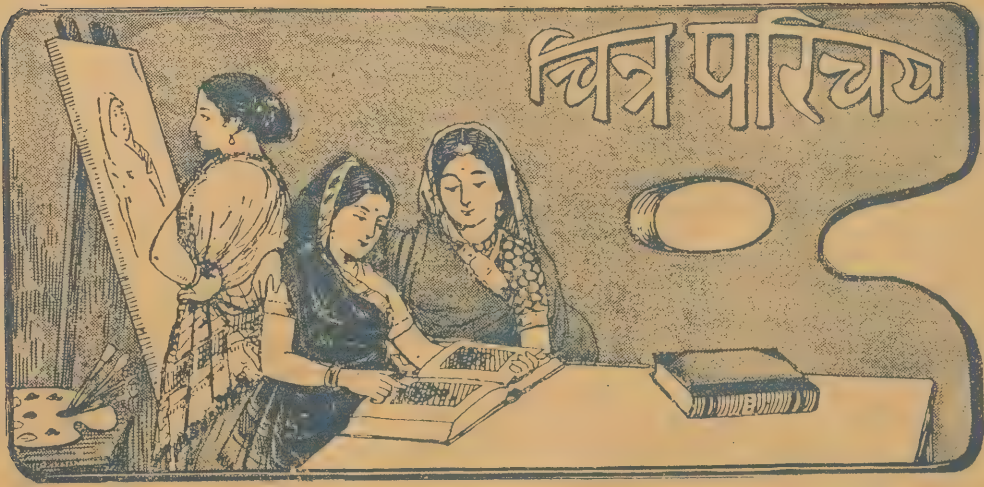

राजपूताना के राजवंश

राजपूताना के जिन राजवंशों के तिरङ्गे चित्र हमें प्राप्त हो सके और इस अङ्क में अन्यत्र दिए जा रहे हैं, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है। इनमें बीच-बीच में जो कई राजे-महाराजे और गद्दी पर बैठे, उनके चित्र तथा परिचय बहुत चेष्टा करने पर भी हमें प्राप्त नहीं हो सके। जो चित्र प्रकाशित हैं, नीचे उन्हीं का परिचय और शासन-काल (जो हमें मिल सका) दिया जा रहा है :—

उदयपुर-राजवंश

१ महाराणा उदयसिंह	...	१५४१
२ महाराणा प्रतापसिंह	...	१५७२
३ महाराणा अमरसिंह	...	१५९७
४ महाराणा करनसिंह	...	१६२१
५ महाराणा जगतसिंह	...	१६२८
६ महाराणा राजसिंह	...	१६६१
७ महाराणा जयसिंह	...	१६८१
८ महाराणा अमरसिंह (दूसरा)	...	१७००
९ महाराणा संग्रामसिंह	...	१७१६
१० महाराणा जगतसिंह (दूसरा)	...	१७३४
११ महाराणा प्रतापसिंह (दूसरा)	...	१७५२
१२ महाराणा राजसिंह (दूसरा)	...	१७५५
१३ महाराणा अरसीसिंह	...	१७६१
१४ महाराणा हमीरसिंह	...	१७७२
१५ महाराणा भीमसिंह	...	१७७८
१६ महाराणा ज्वानसिंह	...	१८२८
१७ महाराणा सरदारसिंह	...	१८३८
१८ महाराणा सरूपसिंह	...	१८४२
१९ महाराणा शिम्भूसिंह	...	१८६१
२० महाराणा सज्जनसिंह	...	१८७४
२१ महाराणा सर फ़तेहसिंह, जी० सी० एस० आई०	... ...	१८८४

❀ ❀ ❀

जोधपुर-राजवंश

१ राव शिवाजी	...	१२११
२ राव रीरमल	...	१४१७
३ राव जोधाजी	...	१४५३
४ राव शुजा	...	१४९१
५ राव उदयसिंह	(राज्य नहीं किया)	
६ राव गङ्गासिंह	...	१५१५
७ राव मालदेव	...	१५३१
८ राव उदयसिंह	(मोटा राजा)	१५८३
९ राजा शूरसिंह	...	१५९४
१० राजा गजसिंह	...	१६१९
११ महाराजा यशवन्तसिंह	(पहला)	१६३५
१२ महाराजा अजीतसिंह	...	१६७८
१३ महाराजा अभयसिंह	...	१७२५
१४ महाराजा रामसिंह	...	१७५०

१५ महाराजा बख़्तसिंह	...	१७५१
१६ महाराजा विजयसिंह	...	१७५३
१७ महाराजा भीमसिंह	...	१७६४
१८ महाराजा मानसिंह	...	१८०४
१९ महाराजा तख़्तसिंह	...	१८४३
२० महाराजा जसवन्तसिंह (दूसरा), जी० सी० एस० आई०	...	१८७३
२१ महाराजा सरदारसिंह	...	१८९५

❀ ❀ ❀

जयपुर-राजवंश

१ महाराजा पृथ्वीराज	...	१५०३—२८
२ महाराजा पूरनमल	...	१५२८—३४
३ महाराजा भीम	...	१५३४—३७
४ महाराजा रतन	...	१५४८
५ महाराजा आसकरन	...	१५४८
६ महाराजा भारमल	...	१५४८—७४
७ महाराजा भगवानदास	...	१५७४—९०
८ महाराजा मानसिंह	...	१५९०—१६१५
९ महाराजा भावसिंह	...	१६१५—२२
१० महाराजा जयसिंह	(पहला)	१६२२—६८
११ महाराजा रामसिंह	(पहला)	१६६८—९०
१२ महाराजा बिसनसिंह	...	१६९०—१७००
१३ महाराजा जयसिंह	(दूसरा)	१७००—४४
१४ महाराजा ईसरीसिंह	...	१७४४—५१
१५ महाराजा माधोसिंह	(पहला)	१७५१—६८
१६ महाराजा पृथ्वीसिंह	...	१७६८—७९
१७ महाराजा प्रतापसिंह	...	१७७९—१८०३
१८ महाराजा जगतसिंह	...	१८०३—१८
१९ महाराजा जयसिंह	(तीसरा)	१८१८—३५
२० महाराजा रामसिंह	(दूसरा)	१८३५—८०
२१ महाराजा सर माधोसिंह (दूसरा) जी० सी० एस० आई०	...	१८८०

❀ ❀ ❀

बीकानेर-राजवंश

१ राव बीका
२ राव नारा
३ राव लूनकरन
४ राव जैतसी
५ राव कल्यानसिंह
६ राजा रायसिंह
७ राजा दलपतसिंह
८ राजा सुरसिंह
९ राजा करनसिंह
१० महाराजा अनूपसिंह
११ महाराजा सरूपसिंह
१२ महाराजा सजनसिंह
१३ महाराजा ज़ोरावरसिंह
१४ महाराजा गजसिंह
१५ महाराजा राजसिंह
१६ महाराजा प्रतापसिंह
१७ महाराजा सूरतसिंह
१८ महाराजा रतनसिंह
१९ महाराजा सरदारसिंह
२० महाराजा डूँगरसिंह
२१ महाराजा गङ्गासिंह (वर्तमान)

❀ ❀ ❀

बूँदी-राजवंश

१ महराव सुरजन	...	१५३३
२ महराव भोज	...	१५८८
३ महराव रतन	...	१६०७
४ महराव गोपीनाथ	...	१६१४
५ महराव छत्रशाल (छतरसाल)		१६३१
६ महराव भावसिंह	...	१६५९
७ महराव अनरुद्धसिंह	...	१६८२
८ महराव बुधसिंह		
९ महराव उम्मेदसिंह	...	१७४४ मृत्यु १८०४
१० महराव अजीतसिंह	...	१७७१
११ महराव बिसनसिंह	...	१७७२
१२ महराव रामसिंह	...	१८२१
१३ महराव राजा रघुबीरसिंह		१८८९

❀ ❀ ❀

विज्ञान तथा वैचित्र्य

'टेलीविज़न' का भविष्य

क्या वैज्ञानिक खोज का कभी अन्त होगा? क्या कोई विज्ञान के विशाल क्षेत्र की सीमाओं का पता लगा सकेगा? ये प्रश्न ऐसे हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है। अनेकों विद्वान ऐसे हैं, जिनका कहना है कि विज्ञान का एक दिन दिवाला निकल जायगा। यह बात, सम्भव है, सहस्त्रों वर्षों के अनन्तर सत्य सिद्ध हो जाय, परन्तु आजकल की खोजों के परिणाम पर दृष्टिपात करने से तो इसकी सत्यता में विश्वास नहीं होता।

कुछ वर्ष पूर्व, जब बोलती हुई सिनेमा की तसवीर का आविष्कार हुआ था, तो विशेषज्ञों तक का कहना था कि वह आविष्कार सफल नहीं हो सका। परन्तु आज हम देखते हैं कि सारे संसार में बोलती हुई तसवीरों की ही तूती बोल रही है। आज संसार की फ़िल्म-कम्पनियों में दस अरब रुपए लगे हुए हैं। इसीसे पाठकों को पता लग सकता है कि इस आविष्कार को संसार ने किस प्रकार अपनाया है।

सिनेमा सम्बन्धी आविष्कार करने वाले इतने से ही सन्तुष्ट नहीं रहे। उन्होंने बड़े परिश्रम के बाद 'टेलीविज़न' अर्थात् बिना किसी तार द्वारा दूर के पदार्थों को देखने का आविष्कार कर लिया है। अभी तक आप बिना तार के तार भेज सकते थे (Wireless Telegraphy), बातचीत कर सकते थे (Wireless Telephony), फ़ोटो की नक़ल कर सकते थे (Wireless Photography), परन्तु अब आप एक स्थान पर बैठे हुए अपने मित्रों को दूसरे स्थान से देख भी सकेंगे।

इस आविष्कार का प्रयोग सिनेमा के सम्बन्ध में अमेरिका में किया जा चुका है। वहाँ कई नगरों में एक केन्द्रीय सिनेमा में एक फ़िल्म दिखाया जाता है और वही फ़िल्म एक मील के दायरे में स्थित समस्त सिनेमाओं के दर्शक देख सकते हैं। इङ्गलैण्ड में भी इसके कई प्रयोग एक सङ्गीत-भवन में कुछ दिन पूर्व किए गए थे, परन्तु उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। परन्तु प्रयोगशाला में काम अभी जारी है।

उधर अमेरिका में Entertainments Trust नामक कम्पनी ने 'टेलीविज़न' के ऐसे यन्त्र बनाए हैं, जिन्हें साधारण स्थिति के व्यक्ति भी ख़रीद सकते हैं। शायद वह दिन दूर नहीं है, जब हम टेलीफ़ोन के साथ-साथ टेलीविज़न का यन्त्र भी घर-घर देखेंगे और जिन व्यक्तियों से वार्तालाप करेंगे, उनकी आकृति भी देख सकेंगे।

* * *

मोटर का नया भोजन

अब तक मोटरों में पैट्रोल जलाया जाता था, परन्तु रूस के प्रोफ़ेसर नेमोव ने ऐसी मोटर का आविष्कार किया है, जो कोयले से बनी हुई गैस से चलती है। इस प्रकार मोटर चलाने के व्यय में बहुत कमी हो जाती है। साधारण मोटर ने ६३० मील की यात्रा के लिए ४६ गैलन पैट्रोल स्वाहा कर दिया था, परन्तु इस नई मोटर के लिए इतनी ही दूरी के लिए केवल ४ गैलन पैट्रोल और सवा पाँच मन कोयले की आवश्यकता पड़ी।

मक्खी कितने दिन भूखी रह सकती है ?

लन्दन के स्कूल ऑफ़ ट्रौपीकल मैडिसिन के एक कार्यकर्ता ने ताऊन फैलाने वाली मक्खी को एक बक्स में बन्द करके इस बात की परीक्षा करनी चाही कि मक्खियाँ कितने दिन बिना भोजन के रह सकती हैं। एक मक्खी ६२ दिन बिना भोजन के जीवित रही।

अफ़ीम के बीजों से दूध

क्या आपने अफ़ीम के बीजों से निकला हुआ दूध पिया है ? यदि नहीं, तो आप कुछ दिनों प्रतीक्षा कीजिए। जर्मनी में इन बीजों से दूध निकाल कर उन बच्चों को पिलाया जाता है, जो अपनी माता का दूध नहीं पा सकते। डॉक्टरों का कहना है कि इसमें अफ़ीम का पता तक नहीं मिलता।

विज्ञापन का नया ढङ्ग

विदेशों में बड़ी-बड़ी दूकानें अपने सामने कोई ऐसी आश्चर्यजनक बात दिखाती हैं कि पथगामी उधर आकर्षित होकर उसे देखने के लिए आते ही हैं और इस प्रकार वे दूकान पर बिकने वाली वस्तुओं की प्रदर्शिनी भी शीशे की आलमारियों में देख लेते हैं। इस प्रकार जो विज्ञापन होता है, वह अन्य साधनों द्वारा विज्ञापन देने से अधिक लाभदायक होता है।

एक कम्पनी ने हाल ही में उन दुकानों के लिए, जो छोटी-छोटी गलियों में स्थित हैं और जहाँ बिजली द्वारा आलमारियों के सामान को सन्ध्या के कई घण्टों तक दिखाने में अधिक व्यय होता है, एक ऐसी मैशीन बनाई है कि दूकान की इन आलमारियों में वैसे तो अँधेरा रहता है, परन्तु ज्योंही कोई व्यक्ति दूकान के सामने होकर निकलता है, इन आलमारियों में लगी हुई बिजली की बत्तियाँ जल उठती हैं और पथगामी का ध्यान उन आलमारियों की ओर आकर्षित कर लेती हैं।

ऐनकों के करश्मे

लन्दन में हाल ही में होने वाली 'ऑप्टीकल एक्ज़िहिबिशन' में ऐनकों के नूतनाविष्कृत रूप दिखाए गए थे। इनमें गोलाकार शीशों के बजाय ऐसे शीशे लगाए गए हैं, जो कई ओर से काटे हुए होते हैं। इन ऐनकों के लगाने से चेहरे के अनेकों प्रकार के दोष छिप जाते हैं। कुछ ही दिनों में अनेकों कुरूप व्यक्ति इन ऐनकों को रूपवान दिखाई देने के लिए ही लगाने लगेंगे।

मनुष्य से पत्थर

ख़बर है कि आयर्लैण्ड में एक व्यक्ति का शरीर अचानक ऐसा अकड़ गया कि वह जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। न उसके जोड़ हिलते थे और न दाँत अलग हो पाते थे। उसकी मृत्यु के अनन्तर उसका शरीर डबलिन के अजायबघर में सुरक्षित रख दिया गया है।

❀ ❀ ❀

क्या आप जानते हैं ?

संसार का सबसे पहला समाचार-पत्र 'नूरैम्बर्ग गैज़ट' जर्मनी में सन् १४५७ ई० में प्रकाशित हुआ था।

❀

सन् १४५० ई० में जर्मनी के गूटैनबर्ग नगर में प्रेस द्वारा सबसे पहली पुस्तक छपी थी।

❀

संसार का सबसे पहला दैनिक पत्र 'Die Frankfurter Oberpostante Zeitung' जर्मनी में सन् १६१५ में निकला था।

❀

लन्दन में सन् १९१४ और १९१७ के बीच २०,००० स्त्रियाँ इसलिए गिरफ़्तार हुई थीं कि वे पुरुषों को उनके साथ पापाचार करने के लिए आमन्त्रित कर रही थीं।

❀

न्यूयार्क में लगभग ५०,००० वेश्याएँ ऐसी हैं, जो खुलेआम यह व्यवसाय करती हैं। इनके अतिरिक्त, ऐसी स्त्रियों की संख्या तो अगणित है, जो छिप कर होटलों आदि में व्यभिचार करती हैं। हिसाब लगाने पर यह पाया गया है कि इस प्रकार न्यूयार्क की हर ५५ स्त्रियों में से एक वेश्या है। ये स्त्रियाँ प्रतिवर्ष ५५,९०,७०० या प्रतिदिन १५,१८० पुरुषों के साथ व्यभिचार करती हैं।

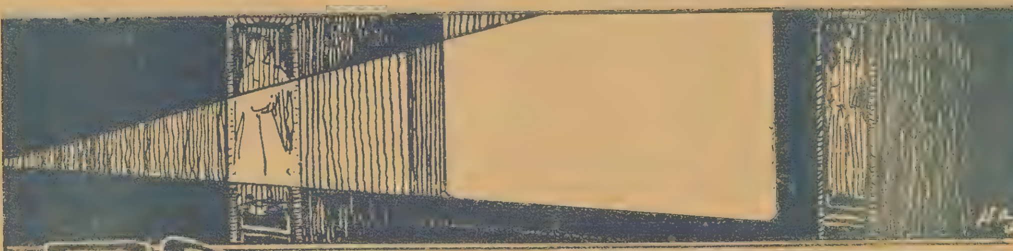

सिनेमा तथा रङ्गमञ्च

भारतीय फ़िल्म कम्पनियाँ

हम अक्टूबर के 'चाँद' में भारतीय फ़िल्म कम्पनियों के विषय में कुछ लिख चुके हैं। इन पंक्तियों में हम इस विषय पर कुछ विस्तार से विचार करेंगे। भारत में फ़िल्म बनाने की कला का प्रचार हुए अधिक काल नहीं हुआ। प्रारम्भ में जो कम्पनियाँ खुली थीं, वे बहुधा धार्मिक, पौराणिक गाथाओं के आधार पर अपने फ़िल्मों के लिए कथानक चुनती थीं। बाह्य दृश्यों (Outdoor Scenes) की चित्रकारी की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। लगभग सभी दृश्य स्टूडियो के भीतर ही बनाए जाते थे। स्टूडियो भी सुसङ्गठित नहीं होती थीं। ऐक्टर लोगों का निर्वाचन भी भली-भाँति नहीं किया जाता था। पुरुषों को ही स्त्रियों का कार्य भी करना पड़ता था। धीरे-धीरे लोगों की रुचि सिनेमा की ओर बढ़ने लगी और फल-स्वरूप कई ऐसी कम्पनियों का जन्म हुआ, जो प्राचीन रूढ़ि को छोड़ कर सामाजिक तथा ऐतिहासिक फ़िल्म बनाने लगीं।

इन सामाजिक फ़िल्म बनाने वाली कम्पनियों में बम्बई की कोहिनूर फ़िल्म कम्पनी का नाम अग्रगण्य है! इसके अतिरिक्त मदन थियेटर्स लिमिटेड, इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी, रॉयल आर्ट स्टूडियो, शारदा फ़िल्म कम्पनी, कृष्णा फ़िल्म कम्पनी, महाराष्ट्र फ़िल्म कम्पनी, सौराष्ट्र फ़िल्म कम्पनी आदि अनेकों अन्य कम्पनियों ने भी इसी प्रकार के फ़िल्म बनाए। महाराष्ट्र फ़िल्म कम्पनी ने अधिकतर ऐतिहासिक फ़िल्म बनाए हैं और उनके बनाने के लिए उन्हें सफलता भी अधिक मिली है।

अब तो कई प्रान्तों में फ़िल्म कम्पनियाँ खुल गई हैं। इनमें से अधिकांश बम्बई में हैं। इन कम्पनियों में से केवल चार-पाँच कम्पनियों के पास अपनी स्टूडियो हैं। अन्य कम्पनियाँ इन्हीं स्टूडियों में, किराया देकर, अपने फ़िल्म तैयार कर लेती हैं। इन कम्पनियों का स्वत्व अधिकतर एक व्यक्ति का होता है। कुछ कम्पनियों में दो-तीन साझीदार होते हैं। अभी ऐसी कम्पनियाँ बहुत कम हैं, जिनके हिस्से जनता को बेचे गए हों। हमारा ध्यान मद्रास की एक ऐसी ही कम्पनी की ओर आकर्षित किया गया है, जो बड़ी सफलतापूर्वक अपना कार्य कर रही है। ये कम्पनियाँ चूँकि एक-दो स्वामियों की सम्पत्ति हैं, अतः सिनेमा-उद्योग में सङ्गठन की बहुत कमी पाई जाती है। इनकी छोटी-छोटी स्टूडियो होती हैं, जिनमें बहुतेरे दृश्यों को दिखाने का कोई साधन नहीं होता। अन्य देशों में इस प्रकार एक-एक स्वामी की कम्पनियाँ बहुत कम हैं; वहाँ पर कई व्यक्ति मिल कर एक कम्पनी खोलते हैं और उसे वे अपटूडेट बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ पर इस बात का प्रयत्न भी किया जाता है कि फ़िल्म बनाने के लिए दो-चार ऐसे केन्द्र चुन लिए जायँ, जहाँ सभी फ़िल्म कम्पनियाँ अपना कार्य कर सकें और जहाँ फ़िल्म बनाने की सभी सुविधाओं—पहाड़, जलाशय, समुद्र, नगर आदि—का प्रबन्ध हो। अमेरिका में इस प्रकार का केन्द्र 'होलीवुड' है। अमेरिका की सबसे बड़ी कम्पनियाँ यहीं पर स्थित हैं। इसी प्रकार इङ्गलैण्ड में भी 'ऐल्स्ट्री' को वहाँ की कम्पनियाँ अपना केन्द्र बनाने का प्रयत्न कर रही हैं। भारतवर्ष में भाषाओं तथा रहन-सहन के भेद-भाव के कारण शायद एक-दो केन्द्रों से काम न चल सके, परन्तु प्रत्येक प्रान्त में एक-एक केन्द्र होलीवुड के ढङ्ग पर बनाया जा सकता है। साथ ही आवश्यकता इस बात की है कि छोटी-छोटी कम्पनियों

के स्थान पर एक-दो बड़ी कम्पनियाँ खुलें, जो अपनी स्टूडियों को पूर्ण रूप से आधुनिक बना सकें।

सङ्गठन के बाद जो दोष हमें अपनी कम्पनियों में दिखाई देता है, वह है फ़िल्म बनाने में जो उनका उद्देश्य रहता है, उसके सम्बन्ध में। कथा, सीनरियों, ऐक्टिङ्ग, टाइटिलों की भाषा आदि सबको देख कर यही विदित होता है कि इनके फ़िल्म शिक्षित तथा ऊँचे भाव वालों के लिए नहीं बनाए जाते। यही कारण है कि हमारे देश का शिक्षित-समुदाय भारतीय फ़िल्मों को देखना समय और रुपए का अपव्यय समझता है। यह तो ठीक है कि शिक्षित और अर्ध-शिक्षित व्यक्तियों की फ़िल्म सम्बन्धी रुचि एक सी नहीं होती। पहले तो सिनेमा में कला का समावेश आवश्यक समझते हैं और साथ ही वे फ़िल्मों को एक तमाशा नहीं, वरन् स्वाभाविक जीवन का दिग्दर्शन समझते हैं। और दूसरे (अर्ध-शिक्षित तथा अशिक्षित) सिनेमा में भागदौड़, हवाई जहाज़, लड़ाई, आग आदि के दृश्यों को देख कर ही फ़िल्म की अच्छाई या बुराई का निर्णय कर लेते हैं। इनकी रुचि के अनुसार जो फ़िल्म बनेंगे, उनसे पैसा पैदा होगा, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु उससे सिनेमा की कला को जो धक्का पहुँचेगा, वह अकथनीय है।

रञ्जीत फ़िल्म कम्पनी की सुप्रसिद्ध सिनेमा-स्टार—
मिस शान्ता

इन दोषों में सबसे बड़ा दोष ऐक्टिङ्ग का है। ऐक्टरों और ऐक्ट्रेसों की जैसी भर्ती भरी जाती है, वह सर्वथा अवाञ्छनीय है। इन पंक्तियों के लेखक ने कई कम्पनियों में देखा है कि बाज़ारू लड़कियाँ पकड़ कर दो दिन में ऐक्ट्रेस बना दी जाती हैं और फिर जनता के सामने उनकी प्रशंसा के पुल बाँध दिए जाते हैं। इनके कारण इन फ़िल्म कम्पनियों का वातावरण इतना गन्दा रहता है कि किसी भले आदमी का वहाँ गुज़ारा होना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त ऐक्टिङ्ग में कोई हृदयग्राही या भावो-

त्पादक बात होती ही नहीं। इस कमी को दूर करने का उपाय यही है कि सिनेमा में शिक्षित व्यक्तियों को खींच कर लाया जाय और कथाएँ सुप्रसिद्ध नाट्यकारों, औपन्यासिकों तथा कहानी लेखकों से लिखवाई जायँ।

हम पिछले अङ्क में भारतीय बोलती तस्वीरों के विषय में भी कुछ प्रकाश डाल चुके हैं। यह हर्ष का विषय है कि कई कम्पनियाँ अब बोलती तस्वीरें बनाने लगी हैं। इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी ने अपनी दूसरी तस्वीर 'दौलत का नशा' सामाजिक बनाई है, यह सन्तोष की बात है; परन्तु उसमें दो दोष हैं, जिनकी ओर हम कम्पनी का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। एक तो यह कि अधिकांश ऐक्टरों के ऐक्टिङ्ग में अस्वाभाविकता की हद हो गई है, और कई स्थलों पर कथानक में भी अस्वाभाविकता आ गई है। दूसरा यह कि बातचीत इस प्रकार से की गई है मानो फ़िल्म का वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है और पात्र किसी रङ्गमञ्च पर खड़े हुए कोई नाटक कर रहे हैं। मिस सुलोचना और डी० बिलीमोरिया की बोलती तस्वीर 'हीर राँझा', देखिए, हमारी आशाओं को कहाँ तक पूर्ण करती है।

❀ ❀ ❀

एक नई फ़िल्म कम्पनी

हाल ही में कलकत्ते के टोलीगञ्ज में एक नई फ़िल्म कम्पनी 'न्यू थिएटर्स लिमिटेड' का जन्म हुआ है। यह सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं है, इसके मालिक दो-तीन भाई हैं परन्तु जैसे समाचार हमने पढ़े हैं, उससे तो यही आशा है कि इस कम्पनी द्वारा सिनेमा की कला को काफ़ी प्रोत्साहन मिलेगा।

❀ ❀ ❀

होलीवुड के कुछ समाचार

होलीवुड में रुपया फ़िल्म बनाने में अन्धाधुन्ध ख़र्च होता है। एक बार एक डाइरेक्टर ने अपने फ़िल्म के लिए कम्पनी को एक स्वर्णमय रथ की आवश्यकता बताई। लाखों रुपए व्यय करके वह रथ बनाया गया। बन जाने पर डाइरेक्टर ने कहा, अब इसकी आवश्यकता नहीं है। जिस दृश्य में रथ की आवश्यकता थी, उसका चित्र लिया जा चुका है।

इसी प्रकार, एक फ़िल्म March of the Time' लगभग बारह लाख रुपया लगा कर बनाया गया था। परन्तु जब वह बन कर तैयार हुआ, तो कम्पनी को पता लगा कि वैसे फ़िल्मों की फ़ैशन चली गई थी। वह फ़िल्म रद्दी के टोकरे में ही गया।

इसी प्रकार की कहानियाँ कुछ लेखकों के विषय में भी हैं। इङ्गलैण्ड के एक सुप्रसिद्ध औपन्यासिक को होलीवुड की एक कम्पनी ने एक वर्ष के लिए तीन लाख रुपया दिया था और उस एक वर्ष में उस औपन्यासिक को एक लाइन तक लिखने को न मिली थी।

* * *

सिनेमा का संक्षिप्त इतिहास

सन् १८८८ में संसार में एक भी सिनेमा-घर नहीं था। जब सिनेमा का प्रारम्भ हुआ तो केवल ४०-५० फ़ीट लम्बा फ़िल्म ही दिखलाया जाता था। सन् १९२३ में संसार भर में लगभग तीन लाख सिनेमा थे।

सन् १९०७ में इङ्गलैण्ड में ५०० आदमी सिनेमा घरों में काम करते थे। सन् १९१३ में इनकी संख्या-सवा लाख हो गई। इन दिनों इङ्गलैण्ड के सिनेमा-घरों में प्रति सप्ताह ८० लाख दर्शक फ़िल्म देखते थे। अमेरिका में सन् १९२० में रोज़ाना १ करोड़ व्यक्ति तमाशा देखते थे।

सन् १९१३ में अमेरिका से पन्द्रह हज़ार मील लम्बी फ़िल्म बाहर भेजी गई थी।

बोलती हुई तसवीरों का प्रारम्भ सन् १९२८ में हुआ था। सबसे पहले 'वार्नर ब्रदर्स' कम्पनी ने अपनी 'दी जज़ सिङ्गर' नामक तस्वीर बनाई थी, जिसमें 'आल जॉन्सन' नामक ऐक्टर का प्रमुख पार्ट था।

संसार में तीन सबसे बड़े सिनेमा-घर हैं। एक न्यूयॉर्क में, एक पैरिस में और एक लन्दन में। न्यूयॉर्क और पैरिस के सिनेमा-घरों में लगभग ६,५०० दर्शक बैठ सकते हैं। लन्दन के 'ट्रोकाडियरो' सिनेमा-घर में, जो लगभग एक वर्ष पूर्व खोला गया था, ६००० दर्शकों का स्थान है। इसमें जो Organ बाजा बजता है, केवल उसी का मूल्य लगभग २ लाख रुपया है। इस सिनेमा-घर में एक छोटा-सा अस्पताल, एक वाचनालय, रेडियो आदि सभी आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध है।

आदर्श चित्रावली

(पहिला भाग)

यह वह चीज़ है, जो आज तक भारत में नसीब नहीं हुई !

The Hon'ble Mr. Justice B.J. Dalal of the Allahabad High Court:

Your Album (*Adarsh Chittrawali*) is a production of great taste and beauty and has come to me as a pleasant surprise as to what a press in Allahabad can turn out. Moon-worshipping and visit to the temple are particularly charming pictures—life-like and full of details. I congratulate you on your remarkable enterprise. . . .

यदि 'चाँद' के निजी प्रेस

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज

की

छपाई और सुघड़ता

का रसास्वादन करना चाहते हों तो

एक बार इसे देखिए

बहू-बेटियों को उपहार दीजिए और इष्ट-मित्रों का मनोरञ्जन कीजिए। पाश्चात्य देशवासी

धड़ा[illegible] मँगा रहे हैं

विलायती पत्रों में इस

चित्रावली की धूम मची हुई है

कुछ भारतीय प्रतिष्ठित विद्वानों और पत्रों की सम्मतियाँ मँगा कर देखिए—

मूल्य केवल ४) रु०, स्थायी ग्राहकों से ३) मात्र !!

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

चिट्ठी पत्री

आत्म-हत्या कर ली

एक नवयुवक लिखते हैं :—

श्रीयुत सम्पादक जी,

.........नगर में एक समाज-सेवी, साहित्य-सेवी तथा देश-सेवी हैं। उनका नाम है श्रीयुत............। आपका विवाह लगभग ग्यारह वर्ष हुए, जब एक जज की कन्या से हुआ था। देवी जी का लालन-पालन तथा शिक्षा बड़े ही सुचारु रूप से हुई थी। विवाह के समय स्त्री-पुरुष दोनों में प्रेम था। दोनों वैवाहिक सूत्र में बँधना चाहते थे। योग्य पिता ने समाज के बन्धनों का ख़्याल न करके विवाह कर दिया।

श्रीयुत.........ने धीरे-धीरे देवी जी से घृणा करना आरम्भ किया। देवी जी समझ गईं। उन्होंने कारण पूछा तो जवाब मिला कि वे बदसूरत हैं और इसलिए श्रीयुत.........दूसरी शादी शीघ्र ही करने वाले हैं। इस समय देवी जी के गर्भ था। कुछ समय बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ। आजकल उसकी अवस्था लगभग आठ या दस वर्ष की होगी।

पुत्र के बाद ही आप एकदम से देवी जी को छोड़ बैठे। देवी जी ने हज़ारों बार उनसे क्षमा माँगी, प्रार्थनाएँ कीं, उनको प्रसन्न रखने के अनेकों यत्न किए, पर सब निष्फल हुए। उनका हृदय पसीजा नहीं, प्रत्युत कठोर ही होता गया। ज़रा-ज़रा सी बात पर मार बैठना, सदैव देवी जी तथा उनके पिता-माता को गालियाँ देना आदि ही उनका कार्य रह गया। उधर धीरे-धीरे एक उसी नगर की वेश्या से आपका सम्बन्ध हो गया। मान-हानि सहते-सहते देवी जी का हृदय पक गया। उन्होंने गत १४ अगस्त को ४ तोले अफ़ीम खाकर आत्म-हत्या कर ली। मृत्यु के पहिले उन्होंने एक पत्र अपने पिता जी को, एक अपनी बहिन को तथा एक अपनी माता को भेज दिए थे। मृत्यु-समाचार मिलने के बाद वे पत्र मिले। वे पत्र भी भेजता हूँ। जो व्यक्ति समाज-सुधारक होते हुए भी ऐसे जघन्य कार्य करते हैं, उनका भण्डाफोड़ अवश्य होना चाहिए।

[हमें इस पत्र के साथ ही वे पत्र भी मिले हैं, जो इस अभागिनी देवी ने मृत्यु से पूर्व अपने सम्बन्धियों को लिखे थे। ये पत्र इतने करुणापूर्ण हैं कि पढ़ कर आँखों में आँसू आए बिना नहीं रह सकते। हमें खेद है कि हम स्थानाभाव के कारण उन सबको यहाँ प्रकाशित नहीं कर सकते। हम यहाँ केवल उस पत्र के कुछ अंश उद्धृत करते हैं, जो इस देवी ने अपनी बहिन को लिखा था। पत्र में लिखा है :—

"प्रिय बहिन ! तुम्हारे जाने के बाद जो दुःख मुझे हुआ, वह मैं लिख कर नहीं बतला सकती। वह अन्तिम मिलन था। संसार में मेरे समान पति के रहते दुखी कोई नहीं है। इनके अत्याचारों से मैं बहुत ही दुखी हो गई हूँ। बहिन, सब मेरी दुर्दशा ख़ूबसूरती के पीछे करते हैं। आज मैं रूपवती होती तो मेरे ये हाल न होते। सुहागरात को इन्होंने मेरा मुँह देख कर कहा, कि 'हमको ईश्वर ने डुबा दिया। हम बहुत ख़ूबसूरत स्त्री चाहते थे, तुम तो नाम को भी ख़ूबसूरत नहीं हो। हम सरी शादी ख़ूबसूरत स्त्री से अपने मन की करेंगे।' दूसरी शादी करने पर ये

बिल्कुल तैयार थे। घरवालों ने इनको बहुत समझाया, तब मान गए। लेकिन मुझे धमकी दिया करते थे। बात-बात में कहते कि सारा संसार मरता है, इसको मौत नहीं आती। नहीं मालूम यह कब मरेगी। जब तक ज़िन्दा हूँ, इसका मुँह नहीं देखूँगा, ऐसी-ऐसी तकलीफ़ दूँगा, जितनी हमसे देते बनेगी। दोगले की सन्तान हूँगा तो फिर से उसे चाहूँगा। वे ऐसी क़सम खा चुके हैं।

"जब से बदचलन मित्रों की सङ्गति की कि ये बरबाद हो गए। पहिले ये आत्मा को रखते थे, अब एक ख़ूबसूरत वेश्या को बहुत चाहते हैं और वहाँ कई बार दिन में जाते हैं, उसे २००) भी दिए हैं।

"आषाढ़ के महीने में मेरे दम उठती थी, मेरी तबियत बहुत घबराई। मैं रोने लगी। ये पास ही पड़े थे। कहने लगे—कोई दवा मत करो, मरने दो। मर जाय तो हम बड़ी भारी पार्टी करेंगे, किसी तरह इससे पिण्ड तो छूटे।

"बहिन, तुम्हीं बताओ, जब इन्होंने ऐसा कह दिया तो मैं दुनिया में किसकी होकर रहूँ? अपने बच्चे के पीछे इतनी मुसीबत सह कर भी जीती रही, मेरा इरादा था कि उसके कुछ बड़ा होने पर मैं मरूँगी। परन्तु क्या करूँ, जब सब कर्मों को पहुँच गई, तो विवश होकर आत्म-हत्या करने जा रही हूँ, हालाँकि यह संसार छोड़ते बड़ा दुःख हो रहा है।"

हम जानते हैं कि हमारे समाज की छाती पर भार-रूप ऐसे अनेकों व्यक्ति हैं, जो सामाजिक तथा राजनैतिक नेता होते हुए भी नीच से नीच कार्य करने में नहीं सकुचाते। ऐसे व्यक्तियों का भण्डाफोड़ कर देने से ही काम न चलेगा, आवश्यकता है ऐसे नवयुवकों की, जो घोर विरोध द्वारा ऐसे व्यक्तियों को समाज के उच्चासन से नीचे गिरा दें। जिन अस्त्रों से हम राजनैतिक युद्ध लड़ रहे हैं, उन्हीं अस्त्रों से सामाजिक क्रान्ति में भी जब तक काम न लिया जायगा, तब तक ऐसी आत्म-हत्याएँ समाज की कलङ्क-कालिमा को और भी गहरा बनाती रहेंगी।

—स० 'चाँद']

सतीत्व के शिकारी

एक दुखिनी बहिन लिखती हैं:—

सम्पादक जी,

कई महीने हुए तब मैं विधवा हो गई थी। मेरे एक पुत्र भी है। मेरी सास मर चुकी थीं। घर में ससुर था। मैं समझती थी कि वहीं मेरी ज़िन्दगी दुखी-सुखी कट जायगी। लेकिन कुछ दिन बाद मुझे मालूम हुआ कि मेरा ससुर मेरा जन्म बिगाड़ना चाहता था। मैं बड़ी मुश्किल से बचती रही। इतने ही में मेरा नन्दोई वहाँ आया। वह भी मुझसे छेड़-छाड़ करने लगा। यहाँ तक कि मेरे पास आकर रोया, मुझे धमकाया। इन लोगों से मैं अब तक तो बची रही हूँ, लेकिन इस तरह कब तक काम चलेगा। शायद मैं ही इनकी बातों में आकर फिसल जाऊँ। मैं अपने पीहर ही चली जाती, लेकिन वे लोग यही सीख देते हैं कि तू अपने सुसर की सेवा कर।

इधर मेरी जान-पहचान एक बड़े सज्जन और धर्मात्मा पुरुष से हो गई है। हम दोनों अभी पवित्र हैं और ब्याह करके स्त्री-पुरुष की तरह रहना चाहते हैं। लेकिन इस काम के लिए घर-वाले तो मदद देंगे नहीं। वह व्यक्ति बड़ा शरमीला है। अब आप बताइए कि अगर कोई जगह ऐसी हो, जहाँ हम दोनों आकर ब्याह कर सकें, तो हम दोनों आ जाएँ।

[इन बहिन को हम यही सलाह दे सकते हैं कि यदि इन दोनों व्यक्तियों का विवाह करने का पक्का विचार है, तो उन्हें घर वालों का ख़्याल तथा लोक-लज्जा छोड़ देनी चाहिए। हाँ, इन बहिन को यह देख लेना चाहिए कि वह व्यक्ति उन्हें पीछे धोखा तो न देगा। विश्वास होने पर यदि वे विवाह करना चाहें, तो किसी भी मातृ-मन्दिर या आर्य-समाज में उनके विवाह का प्रबन्ध हो सकता है।

—स० 'चाँद']

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष]

यद्यपि राजपूताना के राजपूत नरेशों ने श्रीजगद्गुरु के पास कभी भाँग-बूटी का निमन्त्रण नहीं भेजा, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने पैतृक सद्गुणों को बड़ी तत्परता से निभाए जाते हैं। सुयोग्य वंशधरों के लिए इतना काफ़ी है।

❀

इनके पूर्वज अगर तलवार-बहादुर होते थे, तो ये भी विलास-बहादुर और गिलास-बहादुर होते हैं। फलतः 'गाय गुन बछवा पिता गुन घोर, बहुत नहीं तो थोरै थोर,' यह प्राचीन कहावत राजपूताने के नरेशों पर ऐसी 'फ़िट' होती है, जैसे हिज़ होलीनेस के 'सखर-सकोमल' पद-पङ्कजों में श्रीलादूराम जी मोची का चमरौधा !

❀

प्राचीन काल के राजपूत-नरेश भगवान शङ्कर और भगवती शङ्करी के भक्त होते थे, तो हमारे आधुनिक नरेश भी गौराङ्ग देव और गौराङ्गी देवी के सच्चे उपासक होते हैं। बल्कि अगर हिज़ होलीनेस ईमानदारी से काम लें तो कह सकते हैं, इस अभिनव कला में हमारे राजपूत-नरेशों ने दादा की दाढ़ी पर हाथ रख दिया है।

❀

जब ये हीरे-जवाहरात के मूल्यवान आभूषणों से सुसज्जित होकर मूँछदार मङ्गलामुखियों की तरह, भरी सभा में खड़े होकर, गौराङ्ग पद-पङ्कजों के उद्देश्य से, 'तुम्हीं हो दीनो-दुनिया, दीनो-ईमाँ भी तुम्हीं हो' के सस्वर गान-सहित श्रद्धाञ्जलि निवेदन करने लगते हैं, तो प्राचीन काल के विरुदावली-वाचक चारणों को भी मात कर देते हैं। इस कला में इन्होंने कल्पनातीत सफलता प्राप्त की है।

❀

अपनी प्रजा से इनका वही पवित्र सम्बन्ध है, जो हिज़ होलीनेस का भगवती विजया से। धोना, रगड़ना और अन्त में घोल कर उदरस्थ कर जाना। अल्लाह-ताला ने इस कल्प-वृक्ष की सृष्टि ख़ासतौर पर इन्हीं के लिए की है। बस, "वे घास बनें हरियाया करें, चर राजे गधे से मुटाया करें।"

❀

इन सार्वजनिक राज-गुणों के सिवा हमारे राजपूत-नरेशों में कुछ ख़ास गुण हैं। जैसे, बीकानेर के राजा बहादुर में वाक्-चातुरी। इस गुण में आपने अन्यान्य नरेशों को मात ही नहीं किया है, वरन् इसकी बदौलत अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति भी बहुत सी बटोर ली है। माशा-अल्लाह, आपकी गणना राजपूताने के 'लीडर प्रिन्सों' में है।

❀

बाबा औलिया पीर की कृपा से आप एक 'आईडियल नरेश' हैं। अपनी परिमार्जित जिह्वा की तर्रारी के सहारे आपने अपने राज्य के रेगिस्तानी इलाक़े में सुख-समृद्धि की गङ्गा बहा दी है। आप विश्वास न करेंगे, मगर सच्ची बात कहनी ही पड़ेगी, और वह यह कि हमारे महाराजा बहादुर अपनी आमदनी का पूरा डेढ़ प्रति सौ प्रजा की शिक्षा के लिए ख़र्च कर देते हैं। बताइए, इस अलौकिक उदारता और अद्वितीय दान-शीलता के लिए आपको कलियुगी हरिश्चन्द्र या रेगिस्तानी दधीचि न कहा जाय तो क्या कहा जाए ?

❀

आपके रामराज्य का विस्तार २३॥ हज़ार वर्गमील है, जिसमें २,७०० गाँव और क़सबे हैं और स्कूलों की तादाद ७१ है। आप कहेंगे, अवश्य ही ये स्कूल एक दूसरे से यथेष्ट दूरी पर होंगे और सब लड़के वहाँ पहुँच न पाते होंगे। मगर आपको सोचना चाहिए कि यह

हवाई जहाज़ और रेडियो का ज़माना है। ७१ तो बहुत हैं, अगर सारे राज्य में एक ही स्कूल हो तो भी प्रजा के लड़के घर बैठे ही विद्वान हो सकते हैं।

❀

अब ज़रा महाराज अलवरेन्द्र बहादुर का हाल सुनिए। आप माशाअल्लाह, 'फ़ोटो-प्रेमी' नरेश हैं और यह आपका 'स्पेशल वस्फ़' है। आप राज-कार्य और पासबरदारी के लिए नौजवान, शकील और मज़बूत आदमी रखते हैं। किसी रिक्त स्थान के लिए आवेदन-पत्र भेजने के साथ फ़ोटो भी भेजने की सख़्त ताकीद रहती है और फ़ोटो लौटाया नहीं जाता।

❀

अलिफ़लैला के आरम्भ में ही एक सती-साध्वी का ज़िक्र आता है। आपका शैतान पति आपको एक मञ्जूषे में बन्द करके दिन-रात सर पर लादे फिरता था, परन्तु इस दशा में भी जिस भाग्यवान पर आपकी दया-दृष्टि पड़ती थी, उससे, अन्त में स्मृति-स्वरूप उसकी अँगूठी भी ले लिया करती थीं। इसलिए थोड़े दिनों में सौ अँगूठियाँ प्राप्त करके "शती" की महान पदवी से विभूषिता हो चुकी थीं।

❀

परन्तु हमारे अलवरेन्द्र बहादुर ने फ़ोटो-संग्रह में अलिफ़लैला की अँगूठी संग्रहकारिणी देवी जी को भी मात कर दिया है। फलतः वह अगर "शती" थीं तो हमारे स्वनाम-धन्य प्रभु जी पूरे 'लक्खी' हैं। आपका अद्वितीय 'अलबम' अगणित नौजवानों के स्वास्थ्य और सौन्दर्य का अद्भुत 'स्मृति-मन्दिर' है। अवश्य ही महाराज जब कभी उसे उलटते होंगे, तो सगर्व कह उठते होंगे :—'यह सब घर हमारे बसाए हुए हैं!'

❀

मगर जनाब, अगर श्रीजगद्गुरु जी इन स्वनाम-धन्य नरेशों की विशेषताओं का अलग-अलग वर्णन करने लगें, तो तुलसी बाबा के शब्दों में 'बाढ़ै कथा पार नहिं लहहूँ' का व्यापार होगा। इसलिए इन्हें पुनः उन्हीं सार्वजनिक विशेषताओं का वर्णन करके इस पवित्र कथा का अन्त करना पड़ेगा। परन्तु आप घबराइए नहीं, क्योंकि जितना ही होगा, उतने ही से आप नातीपूत समेत स्वर्ग के अधिकारी होंगे।

'ऋणम् कृत्वा घृतं पीवेत्' की तो हमारे राजपूत-नरेश साक्षात् मूर्त्तियाँ हैं। इसी सद्गुण के बदौलत लण्डन और पेरिस के होटलों और बाज़ारों में इनका आदर 'अलादीन के चिराग़' से भी बढ़ा हुआ है। उपर्युक्त दोनों स्थान इन राजाओं के लिए गया धाम हैं। वहीं जाकर ये अपनी पैतृक मर्यादा, गृहीत ऋण और प्रजा की पसीने की कमाई का श्राद्ध किया करते हैं। यहीं इनके कुलपूज्य श्वेतकाय पण्डे रहते हैं, जो इन्हें धरा-धाम पर ही स्वर्ग का सुख प्रदान करते हैं।

❀

वैसे तो ये राजे बड़े मज़े में हैं, प्रजा को चूसना और गुलछर्रे उड़ाना इनका जीवन-व्रत है। श्रीजगद्गुरु की प्रेयसी अर्थात् सखी सरकार का वरद पाणि भी इनकी रक्षा के लिए सदैव उद्यत रहता है; दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से सदैव निश्चिन्त रहते हैं। परन्तु इनको 'अख़बारातङ्क' रोग ने बहुत सताया है और जिस तरह कुत्ते का काटा हुआ मनुष्य पानी देख कर घबरा उठता है, उसी तरह ये कतिपय अख़बारों का नाम सुनते ही घबरा उठते हैं और अपने को तथा अपने राज्य को बचाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं

❀

यद्यपि श्रीमती भारत-सरकार ने इनके चारों ओर क़ानूनी काँटों का मज़बूत बेड़ा लगा कर इनकी सुख-स्वच्छन्दता का काफ़ी प्रबन्ध कर रक्खा है, परन्तु जिस तरह अल्लाह मियाँ के हज़ार सावधान रहने पर शैतान उन्हें कभी-कभी परेशान कर देता है, उसी तरह ये अख़बार वाले भी क़ानूनी बेड़े में छेद करके राजा साहब पर नज़र लगा ही देते हैं और बेचारे नरेशों को इस टोने के प्रतिकार के लिए 'राई-नून' एकत्र करने की ज़हमत उठानी पड़ती है।

❀

परन्तु कुछ 'एकां लज्जा परित्यज्य त्रैलोक विजयी भवेत्' की नीति के अनुयायी न अख़बार की परवाह करते हैं और न अख़बार के बाप की। उन्हें न किसी की निन्दा की फ़िकर, न किसी की स्तुति की परवाह! बस, उन पर श्रीमती गौराङ्गी देवी प्रसन्न रहें तो—

बाल न बाँका करि सकै,
जो जग बैरी होय!

कहाँ है वह पहली सी अब वज़्अदारी,
हुई क़ौम मुहताज .फ़ैशन के पीछे।
न ऐ "ताज" दुनिया से तुम दिल लगाना,
हुए मर्द बर्बाद इस ज़न के पीछे।

❀ ❀ ❀

[जनाब "अहमक़" साहब]

परदे में रहें या वह करें रौज़ने दरबन्द,
होगी न कहीं भी नज़रे अहले नज़रबन्द।
पाजामे में झगड़े हैं बहुत हज़रते सूफ़ी,
पतलून ही अच्छा न मयानी न कमरबन्द।
एक पर्दानशीं जब से किराए पे है इसमें,
रहता है मेरा ख़ानए दिल आठ पहर बन्द।
दिल पर भी लगा दीजिए अब एक सौ चौबीस,
कर दीजिए इसको भी मेरी तरह नज़रबन्द।
अब चाशनीए शरबते आनर न मिलेगी,
सुनते हैं कि होती है विलायत की शकर बन्द।
तुम हाथ न सीने से हटाओ कि मेरी जाँ,
मुश्किल से है इस वक़्त मेरा दर्दे जिगर बन्द।
सय्याद का यह हुक्म मिला है कि चमन में,
जितने हों जवानाने चमन सब हों नज़रबन्द।
पर काट चुका बुलबुले नाशाद के सैयाद,
ज़ालिम उसे अब कुन्जे क़फ़स में तो न कर बन्द।
"अहमक़" की ज़बाँ बन्द करो वरना बराबर,
वह जेल में लिक्खेगा ग़ज़ल रहके नज़रबन्द।

❀ ❀ ❀

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

तुम लहू के घूँट अब पिए जाओ,
जीने से ग़रज़ है बस जिए जाओ।
दुनिया में सुकूत सब से अच्छा,
कुछ भी न करो यही किए जाओ।
हुज्जत की नहीं कोई ज़रूरत,
जो वह कहें बस वही किए जाओ।
आए हो क़ब्र में आज "बिस्मिल",
दो घूँट शराब तो पिए जाओ।

✻

देख कर हम मिसे लन्दन को परी कहते हैं,
हुस्न कहते हैं इसे जलवागरी कहते हैं।
लगी-लिपटी कभी कहते नहीं हम ऐ "बिस्मिल",
कोई नाख़ुश हो मगर बात खरी कहते हैं।

❀

न हम जाएँगे इस घर में न हम जाएँगे उस घर में,
हमारी उम्र गुज़रेगी बड़े साहब के दफ़्तर में।
उड़ाते हैं सरे महफ़िल नई तहज़ीब का ख़ाका,
तअाज्जुब है कि "बिस्मिल" आगए अब रङ्गे "अकबर" में।

❀ ❀ ❀

जो फूल चमन में फूला है वह फूल कभी मुरझाएगा

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

यह काम तो अच्छा काम नहीं, जब सोचेगा पछताएगा,
तकलीफ़ जो सबको देता है, तकलीफ़ वह ख़ुद भी पाएगा।
ऐ अहले वतन सोचो-समझो, जाँचो-परखो देखो-भालो,
मर जाओ वतन पर मर जाओ मरना यह बड़ा काम आएगा।
अमवाजे अलम[1] ने घेरा है मँझधार में अपना बेड़ा है,
हमदर्द हम उसको समझेंगे जो नाव किनारे लाएगा।

गुलज़ारे जहाँ[2] पर नाज़ न कर मसरूर[3] न हो मग़रूर न हो,
जो फूल चमन में फूला है वह फूल कभी मुरझाएगा।
एक-एक से दुनिया कहती है और अपना भी यही कहना है,
तकलीफ़ से जो घबराएगा वह चैन न हर्गिज़ पाएगा।

दुनिया में न झेलें हम ज़िल्लत[4] सरवत[5] के लिए दौलत के लिए,
जो कुछ है यहीं रह जाएगा कुछ साथ न अपने जाएगा।
तकलीफ़ सहो आज़ार सहो, लेकिन न ख़ुदा से शिकवा करो,
पाओगे कभी तुम लुत्फ़ो .ख़ुशी ऐसा भी ज़माना आएगा।
यह बात ज़रा भी झूठ नहीं तासीरे मुहब्बत होती है,
तड़पेगा वह .ख़ुद बिस्मिल की तरह "बिस्मिल" को जो तड़पाएगा।

१—रञ्ज की लहरें, २—संसार रूपी बाग़, ३—लिप्त, ४—अप्रतिष्ठा, ५—सम्पत्ति।

मेवाड़ के प्रति

[श्री० सोहनलाल जी द्विवेदी, बी० ए०]

हे वीर-शिरोमणि, जाग-जाग !
हे देश-मुकुट-मणि जाग-जाग !
हे स्वतन्त्रता के देश जाग !
मेरे मेवाड़ अशेष जाग !
तेरे वैभव का आदि-अन्त,
कितना अपार कितना अनन्त !
जिसके गीतों से हैं अब भी
मुखरित जगतीतल के दिगन्त !
मेरे उर में सुलगा करती
चित्तौड़-चिता वह दिवस-रात,
जिसमें लाखों ही ललनाएँ
हो गईं पलक में भस्मसात् !
पद्मिनी-समाज-समूह जाग !
गोरा-बादल के व्यूह जाग !
ऐ स्वाभिमान की मूर्ति जाग !
मेरे रग-रग की स्फूर्ति जाग !

हल्दीघाटी के आँगन में
सोया तेरा विक्रम महान !
फिर एक बार तू जगा उसे,
गा-गाकर रण के मधुर गान !
मैं खड़ा सजाए अस्त्र-शस्त्र,
बढ़ जाने को रण में पल में,
तू मेरा सेनापति बन आ !
सिर-सुमन चढ़ा दूँ पद-तल में ।
उठने की बेला यही—आज
हो जा स्वतन्त्र, बन्धन विनाश !
ऐ रण-मतवाले जाग-जाग !
जौहर व्रत वाले जाग-जाग !
हे स्वतन्त्रता की आग जाग !
मर मिटने के अनुराग जाग !
हे वीर-शिरोमणि जाग-जाग !
हे देश-मुकुट-मणि जाग-जाग !

निद्रित-राजस्थान

[श्री० बद्रीलाल गुप्त 'सत्यव्रत', विशारद]

हे निःशङ्क सिंह स्वच्छन्दी,
राजस्थान हमारे !
कैसे नयन लगे हैं अब भी,
खुलते नहीं तुम्हारे ॥

कवच कहाँ, केसरिया बाना,
छुरी, ढाल, तलवार ?
समर शीघ्र कर विजय वीर !
कायरता को तज डार ॥

चेत, ठीक है समय यही निज,
भुज-बल दिखलाने का
गुरुगर्वी विपक्ष वालों के,
नत मस्तक पाने का ॥

रण-मद-मत्ते ! विजय लाभ से,
रण-चण्डी हरषा दे !
उठ प्रिय राजस्थान ! हिन्द में,
क्रान्ति-वह्नि सुलगा दे ॥

देशी राज्य

हैदराबाद की जन-संख्या

सन् १९३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार हैदराबाद रियासत की जन-संख्या में १५·७ प्रतिशत तथा हैदराबाद नगर की जन-संख्या में १६ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। हैदराबाद अब भी भारत का चौथा सब से बड़ा नगर है।

※

अलवर का बौडीगार्ड

कुछ दिन हुए महाराजा अलवर का एक पहलवान बौडीगार्ड भाग कर कोटा पहुँच गया था। जब अलवर की पुलीस उसे पकड़ कर अलवर लाना चाहती थी, तो उसने महाराजा कोटा के सामने अपनी करुण-कहानी सुनाते हुए कहा—"मैं तलवार से टुकड़े-टुकड़े हो जाना पसन्द करूँगा, परन्तु अलवर न जाऊँगा।" महाराजा कोटा ने उसे अलवर की पुलीस को देने से इन्कार कर दिया है।

※

'हिन्द-राजस्थान' का प्रवेश-निषेध

ग्वालियर राज्य की काउन्सिल ने सहयोगी 'हिन्द-राजस्थान' का प्रवेश ग्वालियर राज्य में बन्द कर दिया है।

※

नवाब जूनागढ़ की घोषणा

नवाब जूनागढ़ के दीवान साहब ने यह घोषणा निकाली है :—

"राज्य का सञ्चालन अब तक दीवान और मन्त्रियों द्वारा होता था, परन्तु अब वह एक काउन्सिल द्वारा होगा। इसके चार सभासद होंगे तथा नवाब साहब इसके प्रधान और दीवान साहब इसके उप-प्रधान होंगे।"

※

भारतीय राज्य-प्रजा-परिषद् की माँगें

(१) देशी राज्यों के लोगों की सङ्घ राज्य की नागरिकता और उनके मौलिक अधिकार नए शासन-विधान में दर्ज हों।

(२) देशी राज्यों के लोगों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए शासन-विधान में सङ्घ-राज्य के न्यायालय की व्यवस्था हो।

(३) केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं में देशी राज्यों के लोगों को प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व प्राप्त हो और इसके लिए उन्हें भी ब्रिटिश भारत में प्रचलित निर्वाचन-पद्धति और मताधिकार प्राप्त हो।

(४) भारतीय राज्यों के न्यायालयों का सम्बन्ध सङ्घ-राज्य के सुप्रीम कोर्ट से हो।

※

देश

शरीफ़ बदमाश

'मिस ए' के नाम से जो मुक़दमा चल रहा था, उसमें आर्देसिर सोराबजी वकील नामी एक पारसी को ६ वर्ष के कारावास का दण्ड मिला है। इस पारसी ने शेहरा नाम की एक बालिका को विवाह के बहाने

चरित्र-भ्रष्ट करके वेश्या बना दिया था। शेहरा के द्वारा इसने अनेकों भोली बालिकाओं को वेश्या बना दिया और उनकी कमाई से आप आनन्द करता था। 'मिस ए' किसी प्रकार उसके फन्दे से छूट भागी और उसी का परिणाम यह मुक़दमा था।

हिजली-काण्ड की जाँच

हिजली-काण्ड की जाँच के लिए जो कमिटी नियुक्त हुई थी, उसने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि वहाँ पर गोली चलाना अनावश्यक था।

पतियों को बेत की सज़ा

बम्बई में एक मज़दूर की २० वर्षीया स्त्री ने पति और सास के अत्याचारों से तङ्ग आकर अफ़ीम खाकर आत्म-हत्या कर ली थी। कॉरोनर ने अपने फ़ैसले में लिखा है, "अच्छा हो यदि कोई सार्वजनिक कार्यकर्ता ताज़ीरात हिन्द में एक ऐसी धारा शामिल कराने की चेष्टा करे, जिसके अनुसार उन पतियों को, जो अपनी स्त्रियों को आत्म-हत्या के लिए बाध्य करते हैं, बेत की सज़ा दी जाया करे।"

पुरी की अश्लील मूर्तियाँ

पुरी की एक सभा में भाषण देते हुए श्री० जमनालाल जी बज़ाज ने कहा,—'जगन्नाथ-मन्दिर में पत्थर की खुदी हुई मूर्तियों को पुरी-कॉङ्ग्रेस के पहले ही नष्ट कर देना चाहिए। यदि अधिकारियों ने ऐसा न किया तो उत्कल कॉङ्ग्रेस कमिटी की ओर से इसके लिए सत्याग्रह किया जायगा।'

विदेश

स्पेन का नया मन्त्रि-मण्डल

स्पेन की सीनेट ने चर्च को राज्य से अलग करने और जेसूइट सम्प्रदाय के लोगों के देशनिकाले तथा जायदाद-ज़ब्ती के विषय में जो निर्णय किया था, उसके फलस्वरूप कैथोलिक प्रधान-मन्त्री जामोरा ने अपना पद-त्याग कर दिया है। नए मन्त्रि-मण्डल में प्रधान-मन्त्री का पद सीनोर अज़ाना को और स्वराष्ट्र-मन्त्री का पद सीनोर क़िरोगा को मिला है।

आयर्लैंण्ड में विद्रोह

आयर्लैंण्ड को जिस समय से औपनिवेशिक स्वराज्य मिला है, तभी से एक दल वहाँ की सरकार को पलट देने की चेष्टा में रहा है। अभी हाल ही में प्रेज़िडेण्ट कौसग्रेव ने घोषणा की थी कि राज्य को छिन्न-भिन्न करने के लिए एक भारी षड्यन्त्र रचा जा रहा था। फलस्वरूप वहाँ की पार्लामेण्ट ने राज्य-विधान को स्थगित कर दिया है और विद्रोहियों के दमन के लिए 'पब्लिक सेफ़्टी बिल' पास कर दिया है।

इङ्गलैण्ड का निर्वाचन

इङ्गलैण्ड की पार्लामेण्ट, राष्ट्रीय सरकार के कुछ दिन काम करने के बाद, भङ्ग कर दी गई थी। अभी हाल में जो वहाँ निर्वाचन हुआ है, उसके समाचार बड़े आश्चर्यजनक हैं। अनुदार दल के सदस्य इतनी बड़ी संख्या में चुने गए हैं कि उनका बहुमत अन्य सब दलों को मिला कर लगभग ५०० है। मज़दूर-दल को बड़ी करारी हार खानी पड़ी है। उसके लगभग सभी प्रसिद्ध नेता, जैसे आर्थर हैण्डरसन, क्लाइन्स, ए० वी० एलेक्ज़ेण्डर, ग्राहम, भूतपूर्व भारत-मन्त्री बेन आदि असफल रहे। मि० मैकडॉनल्ड, जिनके विरुद्ध मज़दूर-दल की पूरी शक्ति लग रही थी, ५,००० वोट से चुन लिए गए।

जर्मनी में

हेर ब्रूनिङ्ग की गवर्नमेण्ट के विरुद्ध जो अविश्वास का प्रस्ताव पेश हुआ था, वह २७० वोटों के विरुद्ध २९४ वोटों से हरा दिया गया।

प्रसिद्ध आविष्कर्ता की मृत्यु

संसार-प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा आविष्कर्ता एडीसन की हाल ही में ८४ वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई। एडीसन ने अपना जीवन अख़बार बेचने वाले लड़के के रूप में किया था। परन्तु बचपन से ही वैज्ञानिक खोज का प्रेम होने से ये वहाँ रुक न सके और क्रमशः टेलीग्राफ़ क्लर्क, एञ्जीनियर तथा आविष्कर्ता हो गए। इन्होंने लगभग १,००० आविष्कार किए होंगे, जिनमें से मुख्य आविष्कार हैं—ग्रामोफ़ोन, टेलीफ़ोन, बिजली का प्रकाश तथा सिनेमा के फ़िल्म।

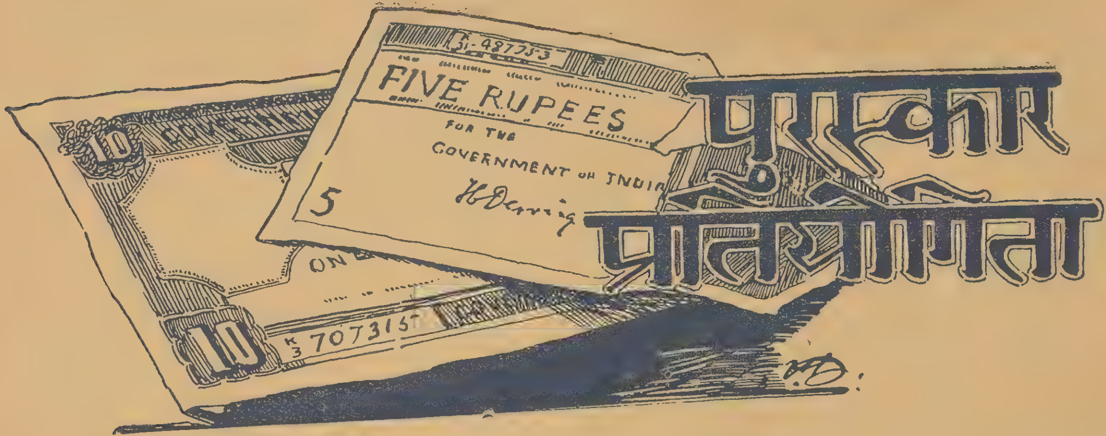

पिछली पहेली का परिणाम

१—हमें हर्ष है कि हमारी पहली ही पुरस्कार-प्रतियोगिता का पाठकों ने इतना आदर किया है। हमारे पास लगभग १,००० ग्राहकों के उत्तर आए थे। किसी ग्राहक का पूरा उत्तर सही न था। (१) मन्त्री गरियाबन्द क्लब, गरियाबन्द तथा (२) मन्त्री वेङ्कट पुस्तकालय, कटनी (जिनका चित्र यहाँ दिया जाता है।) के उत्तरों में सब से कम, अर्थात् ३-३ अशुद्धियाँ थीं, अतः ७॥)-७॥) की पुस्तकें इन्हें भिजवा दी गई हैं। दस ग्राहकों की चार अशुद्धियाँ थीं।

महिलाओं ने इसमें बड़ी संख्या में भाग लिया है और कई ने केवल पाँच अशुद्धियाँ की हैं।

अक्टूबर की प्रतियोगिता का सही उत्तर इस प्रकार है :—

रू	प	वा	न	शै	ल	जा	गा
मा	नि	क		व	त	न	
ल	हा	प	शु	प	ति	की	न
श्र	रे	टु	क	ति	ला		१ा
जा		ता	दे	त	है	सा	ज
न	व	जी	व	न	ट		नी
क़	स	म		वा	च	स्प	ति
ल	व	ह	ना	ज	ला	ष्ट	क

२—हमें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि अनेक उत्तरदाताओं ने हमारे नियमों पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। कई उत्तर सफ़ेद काग़ज़ पर लिख कर आए हैं। कई ने दो-दो बार काट-छाँट कर उत्तर भेजे हैं। कई उत्तरदाता ग्राहक नहीं थे। एक देवी ने केवल इसीलिए पुरस्कार खो दिया कि वह स्वयम् ग्राहिका न होकर किसी ग्राहक की सम्बन्धिनी थीं। भविष्य में नियम-विरुद्ध उत्तरों पर ध्यान न दिया जाएगा।

३—ग्राहकगण कृपया याद रक्खें कि इस सम्बन्ध में कोई भी पत्र-व्यवहार नहीं किया जा सकता, अतः वे कूपन के साथ टिकट न रक्खा करें और न कोई लेख, कविता या पत्र ही। नहीं तो ऐसे उत्तर नियम-विरुद्ध समझे जाएँगे।

श्री० बनवारीलाल राव, मन्त्री, वेङ्कट-पुस्तकालय, कटनी

इस मास की चित्र-पहेली

१ २ ३ ४ ५ ६

७ ८ ९ १० ११ १२

शब्दों की सूची—चूहा, टोप, सड़क, मोटर, द्वार, चाँद, पहिया, वृक्ष, नदी, कुत्ता, बन्दूक़, पुल, रेल, दुर्घटना, बिल्ली, बुड्ढा, साइकिल, लकड़ी, मेज़, बालक, घड़ी, सिपाही।

नियम

१—यह प्रतियोगिता केवल 'चाँद' के ग्राहकों के ही लिए है, कूपन पर उन्हीं का नाम होना चाहिए।

२—ऊपर बारह चित्र दिए हैं। प्रत्येक चित्र का सम्बन्ध एक शब्द से है। ये शब्द चित्रों के नीचे दिए गए शब्दों में से ही चुने गए हैं। आप भली भाँति प्रत्येक चित्र को देखिए और फिर सोचिए कि शब्दों की सूची में से कौन सा शब्द उस चित्र से सम्बन्ध रखता है। जिस शब्द को आप चुनें, उसी को कूपन पर के ख़ानों में चित्र के नम्बर के आगे लिख दीजिए और कूपन को ही काट कर सम्पादक 'चाँद' के पास इस प्रकार भेजिए कि यहाँ हमें वह ता० २८ नवम्बर तक मिल जाय। लिफ़ाफ़े में कोई पत्र न रखिए। याद रखिए, लिफ़ाफ़े पर 'पुरस्कार- प्रतियोगिता' अवश्य लिखा हो।

३—एक ग्राहक दो उत्तर भी भेज सकता है। दूसरे उत्तर को सादा काग़ज़ पर लिख कर कूपन के साथ रख दीजिए और साथ ही ।) के टिकट भेजिए।

४—जिसका उत्तर सम्पादक के उत्तर से मिल जायगा उसी ग्राहक को २५) का नक़द पुरस्कार मिलेगा। यदि कोई उत्तर सही न होगा तो १५) की पुस्तकें सब से कम अशुद्धियों वाले ग्राहक को मिलेंगी। निर्णय का अधिकार सम्पादक को है।

५—'चाँद' तथा 'भविष्य' से सम्बन्ध रखने वालों (कर्मचारी आदि) को भाग लेने का अधिकार नहीं है।

कूपन

उत्तर :—

१		२		३		४	
५		६		७		८	
९		१०		११		१२	

ग्राहक-नम्बर ____________

नाम ____________

पता ____________

बातचीत

लेखकों से—

(१) लेख किसी व्यक्ति विशेष के नाम से न भेज कर सम्पादक 'चाँद' के नाम से भेजने चाहिए, अन्यथा उनका उत्तरदायित्व सम्पादक पर न होगा। 'भविष्य' के लिए लेख सम्पादक 'भविष्य' के पास भेजे जाने चाहिए, न कि सम्पादक 'चाँद' के पास।

(२) लेख का आकार 'चाँद' के पाँच पृष्ठों से अधिक न हो। लम्बे लेखों के छापने में महीनों लग जाते हैं। कविताएँ 'चाँद' के आधे पृष्ठ से अधिक आकार की न हों। अपूर्ण तथा अस्पष्ट लेखों पर विचार न किया जायगा।

(३) 'विविध-विषय', 'विज्ञान और वैचित्र्य' आदि विषयों पर लेख 'चाँद' के दो पृष्ठ से अधिक लम्बे न हों।

(४) लेख के साथ जब तक टिकट नहीं आता, तब तक न तो हम उसके विषय में कोई सूचना दे सकते हैं, न उसे लौटा सकते हैं।

(५) हमारे पास इतने लेख आते हैं कि सबको पढ़ना और शीघ्र ही उत्तर देना असम्भव है। जो लेखक १ मास तक स्वीकृति आदि के उत्तर के लिए प्रतीक्षा न कर सकें, वे कृपया लेख न भेजें। सब से उत्तम तो यह है कि जिस मास के 'चाँद' में लेख प्रकाशित कराना हो, उससे तीन मास पहले वह हमारे पास आ जाना चाहिए।

ग्राहकों से—

(१) ग्राहकों से प्रार्थना है कि पत्र-व्यवहार के समय अपना ग्राहक नं० तथा पूरा पता अवश्य लिखा करें। ग्राहक नं० तथा पूरा पता न लिखने वाले ग्राहकों के पत्रों की ओर भविष्य में ध्यान नहीं दिया जा सकेगा।

(२) जिस ग्राहक को किसी मास का अङ्क न मिले तो उसी मास में ही वह ग्राहक शिकायत करने की कृपा करे। अधिक दिनों की पिछली प्रतियाँ अप्राप्य हो जाने पर भेजना सम्भव नहीं है। उसी मास में शिकायत आने पर तथा अङ्क प्राप्य होने पर दूसरी कॉपी भेज दी जाती है।

निम्नाङ्कित ग्राहकों का पता बदल दिया गया है :—

५१७७, ७७११, ५१७९, २९२३२, २१४५९, १२२८४, १४५६, २५५२७, २७३०३, १७४५१, २४६६१, २९२२६, २४८७१, २७२६४, २७२५४, २८८०२, २४४३१, २७३५१, २५०४२, ६७९८, २७४४४, २८३२०, ११५१४, १५९३८, २३६४८, २९२०५, १२१५२, २०८२३, १९७२४, २११६४, २७२३२, ६२११, ८५८९, १३४४८, १७०४८, १६९६६, १३७७०, २८६५८, १५११०, १५५७१, २६१४, ३८६६, २८६५८, २७४०७, २१२०४, २१९७९, २४०८८, २२८१७, २०७०, १८६४९, २९२४४, २७९७८, १६५६१, २५६८७, १७६८४, १२५६८, २१२२०, २८६६२, २९२४९, २८३९१, २९२५१, २८३६८, २९४६, १५०४४, २६२८०, २२४३५, २८४८६, २७२११, २६६३१, २४०७९, १३३७, २६३०१, २७१९८, १३३१७।

निम्नाङ्कित ग्राहकों को अक्टूबर, १९३१ का अङ्क दुबारा भेजा गया है :—

२०४६७, २१००७, २८९८०, २९०१६, २७६३५, २८६८५, २५१४५, ५२५०, ७१४५, १५८३६, २३२४८, २६५४२, २८७६०, २१७८९, २८५६, २९१२९, २८९०६, २८४२३, २७७७२, १६८२७, १४५६, २८८०२, २७२५४, २८७९९, २१९०१, १२५७३, २५३०९, १३६९३, २११८६, १६९५३, २९०५३, २१०३८, ६७९८, २२३४२, ११०९०, ५५७९, १७९००, ७४०१, १७०४८, २२००१, २७१५०, १३७७०, २९१४५, ४६५९, ५११८, १४३४१, २०१५,

२८३६५, २८६५८, २८२३९, २७५६७, २५९३०, २४५६७, २३२७४, १२७२१, १९८६४, २९०१२, २७३७१, २८३६७, २७५४९, २७४९५, १६३८१।

निम्नाङ्कित ग्राहकों को सितम्बर का अङ्क व्हीलर कं० से आने पर भेजा जायगा :—

२३८२१, २५९४०, २९०४७, १७०७९, २३२४८, २८४८४, २८१८९, २८७९९, १२५७३।

गत मास में 'चाँद' के जिन पुराने ग्राहकों का चन्दा प्राप्त हुआ है, उनका ग्राहक-नम्बर तथा चन्दे की रक़म नीचे दी जा रही है।

ग्रा० नं०			प्राप्त रक़म
२८०८४	...	...	६॥)
१२५४५	...	...	६॥)
२७०५४	...	...	६॥)
१७२७३	...	...	६॥)
२००१७	...	...	६॥)
२८१४१	...	...	३॥)
२१०३७	...	...	६॥)
२८८६२	...	...	३॥)
२०४५७	...	...	६॥)
१४८६६	...	...	४॥)
२६९२९	...	...	६॥)
२०४४९	...	...	६॥)
२६३९९	...	...	६)
२८२१३	...	...	३)
२७१५८	...	...	६॥)
१२०७०	...	...	६॥)
२७००८	...	...	६॥)
१४८७४	...	...	३॥)
२३७९९	...	...	६॥)

गत मास 'चाँद' के निम्न-लिखित नवीन ग्राहक हुए हैं। जिन-जिन ग्राहकों का चन्दा प्राप्त हुआ है, उनके नाम तथा ग्राहक-नम्बर के साथ चन्दे की रक़म नीचे दी जा रही है। ग्राहकों से प्रार्थना है कि वे अपना ग्राहक-नम्बर स्मरण रक्खें तथा पत्र-व्यवहार के समय इसे लिखना न भूलें, ताकि उचित कार्यवाही करने में किसी भाँति का विलम्ब न हो।

२९३२६	श्री० छगनलाल सारदा, मालदा ...	६॥)
२९३२७	मेसर्स मूलचन्द श्रीमाल, राजपूताना ...	६॥)
२९३२८	श्रीमती गौरादेवी, स्यालकोट ...	६॥)
२९३२९	श्री० कालिकाप्रसाद मिश्र, कानपूर ...	६॥)
२९३३०	श्री० रामकुमार, कानपुर	३॥)
२९३३१	श्री० चन्द्रप्रतापसिंह जी, प्रतापगढ़ ...	६॥)
२९३३२	मेसर्स मावजी मूलजी, राजपूताना ...	६॥)
२९३३३	श्री० चतुर्भुज कथल, गड़रवारा ...	६॥)
२९३३४	पं० बाबूराम, जबलपुर	६॥)
२९३३५	श्री० हरीप्रसाद झुनझुनूवाला, पबना ...	६॥)
२९३३७	श्री० हरनारायण क्रुर्क, पेशावर सिटी ...	३॥)
२९३३८	श्री० कृष्णलाल थिरानी, कलकत्ता ...	६॥)
२९३३९	श्री० कुञ्जलाल नागर, आगरा ...	३॥)
२९३४०	मेसर्स एस० पी० गोयल, लखनऊ ...	६॥)
२९३४१	श्रीमती मुन्नीदेवी, नैनीताल	६॥)
२९३४२	श्रीमती जनकदुलारी, श्रीनगर ...	६॥)
२९३४३	श्री० कैलाशप्रसाद रस्तोगी, बिहार-शरीफ़	६॥)
२९३४४	बा० मोतीराम, कलकत्ता	६॥)
२९३४५	श्री० एम० एन० प्रधान, सिलाङ्ग ...	३॥)
२९३४६	बा० कुञ्जबिहारीसिंह, यवतमहल ...	६॥)
२९३४७	श्री० कालूराम धीरन, छिन्दवाड़ा ...	६॥)
२९३४८	मिसेज़ ए० एन० सहाय, इलाहाबाद ...	६॥)
२९३४९	श्री० जी० वी० वेङ्कटारमन, गोविचली, पलयाम	६॥)
२९३५०	श्रीमती उषाकुमारी सौरक्स तथा ... सरलाकुमारी सौरक्स, देहली... ...	६॥)
२९३५१	शाह धनपतसिंह, जैसलमेर ...	६॥)
२९३५२	मिस यन० दूसिन, दुमका	२)
२९३५३	दि० ऑन० सेक्रेटरी रस्तोगी कुमार ... पुस्तकालय, लखनऊ	५)
२९३५४	स्वामीनाथ शर्मा, जौनपूर	६॥)
२९३५५	पं० चुन्नीलाल शर्मा, मुरादाबाद ...	६॥)
२९३५६	श्री० पाण्डु कालू चौधरी, भुसावल ...	३॥)
२९३५७	मेसर्स जगन्नाथ लालाराम, कानपूर ...	३॥)
२९३५८	श्री० सागरमल सरावगी, बीकानेर ...	६॥)
२९३५९	श्री० चरनदास, लाहौर	६॥)
२९३६०	श्री० फूलचन्द त्रिवेदी, खण्डवा ...	३॥)

(शेष मैटर पृष्ठ २०० के दूसरे कॉलम में देखिए)

मातृ-मन्दिर के लिए अपील

१४ महीनों में लगभग ४० स्त्री तथा बच्चों की जानें बचाई गईं

यह संस्था जिस महान् उद्देश्य को लक्ष्य कर स्थापित की गई है, वह पाठकों पर पूर्णतया प्रगट है; पर हमें खेद है, देशवासियों की ओर से जैसी सहायता इसे प्राप्त होनी चाहिए थी, वह नहीं हो रही है और यदि यही क्रम जारी रहा तो हमें भय है, संस्था को शीघ्र ही बन्द कर देना पड़ेगा। अब तक संस्था को बीकानेर के सुप्रसिद्ध सुधारक एवं दानवीर सेठ रामगोपाल जी मोहता २००) मासिक सहायता प्रदान करते रहे हैं; किन्तु भविष्य में वे ऐसा नहीं कर सकेंगे। यदि 'चाँद' तथा 'भविष्य' के पाठक चाहें तो सहज ही संस्था का आर्थिक कष्ट निवारण कर सकते हैं। यदि चार आने से १) मासिक दान भी प्रत्येक पाठक दिया करें तो बात की बात में संस्था की आर्थिक कठिनाई कम हो सकती है। पिछले १४ महीने में लगभग ४० महिलाओं एवं बच्चों की जानें तथा सैकड़ों प्रतिष्ठित परिवारों की मान-मर्यादा इस संस्था द्वारा बचाई जा सकी है। मातृ-मन्दिर की वार्षिक रिपोर्ट शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है, जिसके द्वारा पाठकों को इस संस्था द्वारा की गई ठोस सेवाओं का पता चलेगा। एक ऐसी उपयोगी संस्था का आर्थिक कठिनाइयों के कारण बन्द हो जाना भारतवासियों की वह कलङ्क-कालिमा होगी, जिसे सारे समुद्र का जल भी न धो सकेगा। अतएव हमें आशा है, पाठक यथाशक्ति सहायता प्रदान कर अपना कर्तव्य पालन करेंगे। प्राप्त हुए दान की सूची को 'चाँद' के प्रत्येक अङ्क में सहर्ष स्थान दिया जायगा। सब प्रकार की सहायता श्री० आर० सहगल, अवैतनिक मन्त्री, मातृ-मन्दिर, इलाहाबाद के पते से भेजनी चाहिए।

—सं० 'चाँद'

संस्था के उद्देश्य

(क) निर्धन, निराश्रय तथा असहाय महिलाओं और बच्चों की यथाशक्ति सहायता करना।

(ख) ऐसी स्त्रियों को, जो सुमार्ग से विचलित होकर किसी प्रकार की नैतिक आपत्ति में फँस गई हों, सहायता प्रदान कर उनके जीवन को आदर्श और उपयोगी बनाना।

(ग) असहाय तथा अनाथ विधवाओं की यथाशक्ति सेवा करना।

(घ) जो महिलाएँ कला-कौशल अथवा सङ्गीत आदि सीखना चाहें, उन्हें यथाशक्ति सहायता करना।

(च) जो असहाय महिलाएँ पढ़ने की इच्छा रखती हों, किन्तु धनाभाव के कारण पढ़ न सकती हों, उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना।

(छ) ऐसी स्त्रियों के साथ यदि बच्चे भी हों, तो उनके खान-पान और शिक्षा का उचित प्रबन्ध करना।

(ज) कुमार्ग द्वारा उत्पन्न बच्चों का पालन-पोषण करना, तथा उनकी शिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध करना।

(झ) जो महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करने के बाद अथवा पहले ही, विवाह करना चाहती हों, और संस्था की सहायता चाहती हों, उनके लिए सुयोग्य वर का प्रबन्ध कर विवाह करा देना।

❀ ❀ ❀

कुछ प्रतिष्ठित दर्शकों की सम्मतियाँ

Miss H. G. Stuart, M.A , O.B.E., Chief Inspector of Girls Schools, U. P.

Mr. Saigal has shown me *Matri-Mandir* and I am much impressed by its possibilities. It has a very good building in beautiful surroundings which should make an ideal home for the girls who come to it, and the plans which have been formed for the Education and training, will, if carried out, make them

useful members of society. I hope the Institution will prosper, and so met a very pressing need.

Capt. L. H. Nibblett, Joint Magistrate, Naini Tal.

I visited the *Matri-Mandir* about a month ago and was shown around by my friend Mr. Saigal. Nothing could have brought me greater pleasure. During the course of my Executive and Magisterial experience I have been impressed with the need for such an institution. Frequently I have observed cases in which a poor fallen woman, condemned by society, out-casted by her co-religionists, forsaken by her tempter, evicted from home by her relations, despised by so called reformers and religious preachers and teachers, has sought refuge and comfort in suicide. Frequently I have seen worse cases than that. The poor outcast, relegated to the dust-bin of society has saved her life only to lose it again, together with her soul, in the quagmire of prostitution as the only remaining means of earning a livelihood. That is not all. Suicide and self-hiring is bad enough ; but over and over again we see these poor hounded creatures indulging in murdur of their own offspring —poor innocent sacrifice offered at the alter of so-called moral theologians. Every S. D. O. is aware of the almost daily reports that come in from his charge of "accidental" deaths—but these are always 90 per cent, women. We need not ask why ?

Where could these poor distracted creatures find sympathy, where could they find comfort, where could they, whose sins were as scarlet, find rest and peace. To-day they have their heaven in *Matri-Mandir* with its beautiful surroundings and kindly considerate treatment, to say nothing of nourishing food and warm shelter.

The *Matri-Mandir* is a picture of cleanliness. A beautiful garden is growing up, vegetable culture is being introduced, cottage industries are being encouraged, a highly educated Indian lady is in charge of the Home and all is under the watchful eye of Mr. Saigal, who takes a parental interest in this child of his kindly disposition and sympathetic heart. He is to me a real missionary and I pray that God will bless him and his Institution abdundantly. What little I myself am able to do to help, I am now and always shall be prepared to do. I humbly dedicate half the profits of my book "Flashlights of India" to this Institution.

Dr. B. L. Atreya, M. A. D. Litt., Hindu University, Benares.

Kindly excuse me for a little delay in expressing my thanks to you for the trouble you took in showing me the *Chand* Press and the *Matri-Mandir*. My visit to Allahabad has really became sanctified by my pilgrimage to these two places, from where I have brought a good deal of inspiration. In the person of Mr. Saigal I have discovered a really great man of both thought and action, whose name will go to the posterity as one of the builders of free India. Political freedom is only an external expression of intellectual, moral and religious freedom, to bring about which the

CHAND has been striving so long. I wish I could partake in this *Mahayajna* which is being performed by you for awakening the soul of India which is even now dreaming the dreams of superstition, ignorance, social injustice, slavery and persecution of the fair sex—dreams from which other nations have already freed themselves. I pray to the Almighty to give you more and more power to continue the work you have undertaken.

With best compliments.

Mrs. Diwan Ganpat Rai, Lt. Col. I. M. S., accompanied by Mrs. Dhawan, Major, I.M.S., Shrimati Damyanti, B.A., and Mr. and Mrs. H. C. Suri, Distt. Medical Officer, E. I. Railway.

आज मैं, डॉक्टर हरीशचन्द्र सूरी, श्रीमती सीता, श्रीमती विद्यावती और श्रीमती दमयन्ती सब मिल कर "मातृ-मन्दिर" देखने गए। श्रीमान रामरखसिंह सहगल और श्रीमती विद्यावती सहगल, जोकि इस संस्था के निर्माणकर्ता हैं, उन्होंने हमें अपने साथ ले जाकर हम सबको "मातृ-मन्दिर" का अवलोकन करवाया।

यह स्थान शहर के कोलाहल से कुछ दूर, अति रमणीक वाटिका में स्थापित है। अभी तक तो यहाँ पाँच-छः स्त्रियाँ ही निवास कर रही हैं। परन्तु आशा है कि संख्या शीघ्र ही बढ़ जाएगी। उनके रहन-सहन व भोजन का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। सब स्त्रियाँ प्रसन्न दिखाई देती हैं, और अपना समय सीने-पिरोने और शिल्प-कार्य में व्यतीत करती हैं। थोड़े समय में ही उन्होंने कई सुन्दर फ़्रॉक, मेज़पोश, कुशन इत्यादि तैयार कर लिए हैं, जिसकी बिक्री का धन आश्रम में ही ख़र्च किया जावेगा।

हमारे देश में ऐसे मातृ-मन्दिर की आवश्यकता बहुत ही थी। ऐसा स्थान न होने के कारण कई अबलाएँ, जो किसी प्रलोभन में फँस कर अपना सतीत्व नष्ट कर बैठती हैं, कहीं आश्रम न पाकर आत्म-हत्या करके इस संसार से विदा होती हैं। जो आत्म-हत्या नहीं करतीं, वह अपना जीवन-निर्वाह वेश्या-वृत्ति से करती हैं। कई भ्रूण और सैकड़ों निर्दोष बालकों की हत्याएँ होती हैं। सो इन सब अत्याचारों को रोकने के लिए और प्रलोभन में फँस कर जो अबला पतित हो चुकी हैं, उन्हें इस पाप-पङ्क से निकाल कर उनके जीवन को धार्मिक बनाने के लिए यह 'मातृ-मन्दिर' स्थापित किया गया है। इस आश्रम में किसी धर्मपरायण, परोपकारिणी देवी की आवश्यकता है, जो मातृ-प्रेम के साथ इन अबला स्त्रियों की रक्षा करे और इन्हें धर्म-पुस्तकों का अध्ययन करावे, और इन्हें धर्मोपदेश देकर इनका जीवन धार्मिक बनाने का यत्न करे। शारीरिक और मानसिक रक्षा के अतिरिक्त "मातृ-मन्दिर" की निवासिनियों को आत्मिक रक्षा व आत्मिक उन्नति की अधिक आवश्यकता है।

ईश्वर "मातृ-मन्दिर" की निवासिनियों को कृपा करके बल देवे, ताकि वह अपनी भूल पर पश्चात्ताप करके अब सदाचारिणी बनने का यत्न करें। वह पतित-पावन हरी अपनी गिरी हुई सन्तान को कदापि नहीं त्यागते। वह हमारे अपराधों को क्षमा करके सदा ही हमें अपनी पवित्र गोद में लेने के लिए तैयार हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है :—

सोमहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।

फिर श्रीकृष्ण ने कहा है :—

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शाश्वच्छान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।

ईश्वर श्रीमान रामरखसिंह सहगल के शुभ उत्साह को दिनोंदिन बढ़ावे और इस परोपकार के कार्य में उनकी सहायता करे। जनता का कर्तव्य है कि इस "मातृ-मन्दिर" की आर्थिक सहायता करके इसे Barnard Shaw जैसा आश्रम बनावे ।

बसन्ती—
धर्मपत्नी दीवान गनपतराय
ले० क०; आई० एम० एस०
बोहोमिया
शिमला ईस्ट

इलाहाबाद
१७-८-३०

राव बहादुर सेठ शिवरत्न मोहता, कराची

आज मुझे श्रीमातृ-मन्दिर को देखने का सौभाग्य मिला। इस संस्था के प्रशंसनीय कार्य को कानों से सुने हुए थे, परन्तु आँखों से आज देखे तो प्रसन्नता से चित्त अति गद्गद होकर श्रीमान रामरखसिंह जी के सदुद्योग की हार्दिक प्रशंसा किए बिना मन नहीं मानता। ऐसी संस्था की भारतवर्ष में हर एक बड़े-बड़े शहरों में—ख़ास करके तीर्थ-स्थानों में, अति आवश्यकता है। भारतवर्ष के नेता व धनी पुरुषों का कर्तव्य है कि यदि स्वयं अपने उद्योग व धन से एक-एक मन्दिर स्थापित न कर सकें, तो जहाँ पर ऐसी संस्थाएँ विद्यमान हैं, उनकी अवश्य सहायता करें। इस संस्था का कार्य बहुत ही सुचारु रूप से श्रीमान सहगल जी के पितृवत् निरीक्षण में चल रहा है। मैंने ऐसा अच्छा सुप्रबन्ध कहीं नहीं देखा। ईश्वर श्रीमान सहगल जी के उत्साह की दिनोंदिन वृद्धि करें।

श्रीमती प्रयाग देवी दुबे, धर्मपत्नी कैप्टन दुबे, सर्वेण्ट आफ़ इण्डिया सोसाइटी, लखनऊ।

मैंने आज मातृ-मन्दिर देखा, जिसमें देख कर अपनी आवश्यकता की पूर्ति होने की उम्मीद पाई जाती है। परमेश्वर से मेरी प्रार्थना यही है कि इसकी उन्नति हो और वह श्रीमान रामरखसिंह सहगल के शुभ उत्साह को बढ़ावे। मुझे आज हार्दिक प्रसन्नता हुई, जिसे कि किसी प्रकार प्रकट करना असम्भव है।*

—प्रयागदेवी दुबे

* श्रीमान सेठ शिवरत्न जी मोहता तथा श्रीमती प्रयागदेवी दुबे—दोनों ही ने निरीक्षण के समय संस्था को १०१) रुपयों का दान भी दिया था।

बातचीत

(१६६वें पृष्ठ का शेषांश)

२६३६१ श्री० मुलतानचन्द, कछार ... ... ३)
२६३६२ श्री० नारायणराव धुरकुण्डे, खण्डवा... ३॥)
२६३६३ श्री० बद्रीनारायण सिंह, गोंडा ... ६॥)
२६३६४ श्री० आदित्यप्रसाद तिवारी, जौनपुर ... ३॥)
२६३६५ डिस्ट्रिक्ट इन्सपेक्टर ऑफ़ स्कूल्स ... धरमशाला ... ... ६॥)
२६३६६ श्री० रूपचन्द्र बोथरा, कलकत्ता ... ६॥)
२६३६७ श्री० कन्नेगन्टीनारायण गुण्टूर ... ६॥)
२६३६८ श्री० गुलाबचन्द जैन, भोपाल ... ६॥)
२६३६९ मेसर्स आर० एस० वी० रमन ऐण्ड को० कालपी ... ... ६॥)
२६३७० श्री० बिहारीलाल शर्मा, अजमेर ... ६॥)
२६३७१ श्री० चन्द्रभूषणसिंह, बनारस ... ६॥)
२६३७२ श्री० सुन्दरलाल अग्रवाल, मुरादाबाद... ६॥)
२६३७३ दि मैनेजर विधवा-आश्रम, गोंडा ... ६॥)
२६३७४ श्री० मुरलीधर शुक्ल, गार्ड, झाँसी ... ६॥)
२६३७५ ठा० रामअवधसिंह, रङ्गून (बर्मा) ... ६॥)
२६३७६ श्री० हरप्रसाद श्रीवास्तव, बम्बई ... ६॥)
२६३७७ श्री० शिवदयाल, इलाहाबाद ... ... ६॥)
२६३७८ श्री० नत्थालाल एन० मेहता, आगरा ... ३॥)
२६३७९ श्री० शम्भूनाथ मिश्र, मुरादाबाद ... ६॥)
२६३८० मिस्टर महाबीरप्रसाद, बनारस स्टेट ... ६॥)
२६३८१ श्री० प्रद्युम्न मोहता, छिन्दवाड़ा ... ३॥)
२६३८२ श्री० पन्नालाल शाह, कलकत्ता ... ६॥)
२६३८३ श्री० रामप्रसाद, रामगढ़वा ... ... ६॥)
२६३८४ श्री० राजवल्लभ गुप्ता, चकुलिया (सिङ्घभूम) ६॥)
२६३८५ श्री० वैद्यनाथप्रसाद कहनानी, मुज़फ़्फ़रपुर ६॥)
२६३८६ श्री० नानकचन्द बी० ए० एस०, मण्डी स्टेट ६॥)
२६३८७ मेसर्स दुर्लभजी खोदाभाई ध्रुव, जेतपुर ६॥)
२६३८८ बा० दीपनारायण सिनहा, मुङ्गेर ... ३॥)
२६३८९ ला० राजकुमार अमरेन्द्र, भागलपुर ... ६॥)
२६३९० श्री० लक्ष्मीनारायण केडिया, कलकत्ता ६॥)
२६३९१ श्री० जोगेन्द्र सेन सुबेरवाल, कलकत्ता... ६॥)
२६३९२ मेसर्स यस० यस० कण्डोई एण्ड को०, कलकत्ता ... ... ६॥)
२६३९३ मेसर्स रामलाल रामरतन, कलकत्ता ... ६॥)
२६३९४ ठा० माधोसिंह जी, कोटा स्टेट ... ६॥)
२६३९५ मिसेज़ आर० के० गुरद्व, सक्कर ... ६॥)

❀ ❀ ❀

आप भी लखपती बन जाइये !

सुगन्धित तैल के नुस्ख़े (ले० वैद्यभूषण श्री० मोहनलाल कोठारी) लेखक ने हज़ारों रुपए व्यय करके देश के सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तैलों के नुस्ख़े प्राप्त किए हैं और अपने बीस साल के अनुभव को हृदय खोल कर जनता के सामने रख दिया है। नुस्ख़े तो इस पुस्तक में सैकड़ों तैलों के दिए गए हैं, जिनमें कुछ के नाम ये हैं—हिमसागर तैल, केशराज तैल, बुद्धिवर्द्धक तैल, मनमोहिनी तैल, कलकत्ते के डॉ० नगेन्द्रनाथ सेन को करोड़पती बनाने वाला केशरञ्जन तैल, जवाकुसुम तैल, हिमकल्याण तैल, पं० चन्द्रशेखर वैद्यशास्त्री को लखपती बनाने वाला ब्राह्मीविलास तैल, मालती तैल आदि। तैलों के साफ़ करने और ख़ुशबुओं के देने का विधान भी समझा दिया गया है। मूल्य सिर्फ़ १), डाक-महसूल ।)

शर्बतों का रोज़गार (लेखक बा० पीतमलाल जी, एम० एस-सी०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट) गर्मियों में पीने वाले बहारदार शर्बतों और सोडावाटर बनाने का विधान और अनेक नुस्ख़े दिए गए हैं, मूल्य १)

सामुद्रिक विद्या (लेखक पं० चन्द्रशेखर वैद्यशास्त्री) मुख आदि अङ्गों को देख कर ही चोर, ठग, नेक-बद, धनी-निर्धन, बाँझ-विधवा, ज़िन्दगी और मौत की बात आप बता सकते हैं। लिथो के लगभग ५० चित्र, २५० पृष्ठ, मूल्य सिर्फ़ १॥) डाक-महसूल ।=)

साइनबोर्ड साज़ी साइनबोर्ड बनाना सीख कर दर्जा ३-४ तक पढ़ा ३-४ रु० रोज़ पैदा कर सकता है। मूल्य १)

साबुन की विद्या—साबुन बनाने के सरल विधान और सैकड़ों नुस्ख़े, मूल्य १)

मँगाने का पता—मैनेजर ब्राह्मी प्रेस, अलीगढ़

५०००) की चीज़ ५) में

मेस्मिरेज़्म विद्या सीख कर धन व यश कमाइए !

मेस्मिरेज़्म के साधनों द्वारा आप पृथ्वी में गड़े धन या चोरी गई चीज़ का क्षण-मात्र में पता लगा सकते हैं। इसी विद्या के द्वारा मुक़द्दमों का परिणाम जान लेना, मृत पुरुषों की आत्माओं को बुला कर वार्तालाप करना, बिछुड़े हुए स्नेही का पता लगा लेना, पीड़ा से रोते हुए रोगी को तत्काल भला-चङ्गा कर देना, केवल दृष्टि-मात्र से ही स्त्री-पुरुष आदि सब जीवों को मोहित एवं वशीकरण करके मनमाना काम करा लेना आदि आश्चर्यप्रद शक्तियाँ आ जाती हैं। हमने स्वयं इस विद्या के ज़रिए लाखों रुपए प्राप्त किए और इसके अजीब-अजीब करिश्मे दिखा कर बड़ी-बड़ी सभाओं को चकित कर दिया। हमारी "मेस्मिरेज़्म विद्या" नामक पुस्तक मँगा कर आप भी घर बैठे इस अद्भुत विद्या को सीख कर धन व यश कमाइए। मय डाक-महसूल मूल्य सिर्फ़ ५) रु०

हज़ारों प्रशंसा-पत्रों में से एक

बाबू सीताराम जी, बी० ए०, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता से लिखते हैं—मैंने आपकी "मेस्मिरेज़्म विद्या" पुस्तक के ज़रिए मेस्मिरेज़्म का ख़ासा अभ्यास कर लिया है। मुझे मेरे घर में धन गड़ा होने का मेरी माता द्वारा दिलाया बहुत दिनों का सन्देह था। आज मैंने पवित्रता के साथ बैठ कर अपने पितामह की आत्मा का आवाहन किया और गड़े धन का प्रश्न किया। उत्तर मिला—"ईंधन वाली कोठरी में दो गज़ गहरा गड़ा है।" आत्मा का विसर्जन करके मैं स्वयं खुदाई में जुट गया। ठीक दो गज़ की गहराई पर दो कलसे निकले। दोनों पर एक-एक सर्प बैठा हुआ था। एक कलसे में सोने-चाँदी के ज़ेवर तथा दूसरे में गिन्नियाँ व रुपए थे। आपकी पुस्तक 'यथा नाम तथा गुण' सिद्ध हुई !

मँगाने का पता—मैनेजर मेस्मिरेज़्म हाउस नं० १०, अलीगढ़

जगत-प्रसिद्ध हिमकल्याण तैल !

तत्काल फलदायक ! महासुगन्धित !!

यदि आप जीवन का सच्चा सुख देखना चाहते हैं और पवित्र तथा उपयोगी तैलों के लगाने का शौक़ रखते हैं, तो हमारा "जगत प्रसिद्ध हिमकल्याण तैल" मँगाइए। यह तैल आजकल के तैलों की भाँति मस्तिष्क-शक्ति-नाशक मिट्टी के तैल पर विदेशी सुगन्ध के मिश्रण से नहीं बनाया जाता, बल्कि ख़ालिस तिल के तैल से पवित्र और देशी औषधियों तथा जड़ी-बूटियों द्वारा वैद्यक-शास्त्र के मतानुकूल परम स्वच्छता से तैयार किया गया है। इसके लगाते ही कठिन से कठिन सिर-दर्द पाँच मिनट के अन्दर शर्तिया और समूल नष्ट हो जाता है। दमाग़ की कमज़ोरी, चक्कर आना, बालों का पकना, गञ्ज-रोग, आँखों में जलन और सुर्ख़ी का रहना, आँख से पानी जाना, प्यास लगना, नाक से ख़ून गिरना, रतौंधी, आधे सिर का दर्द, समलवायु का दर्द, मृगी, उन्माद इत्यादि दोष अल्प-काल में निस्सन्देह दूर होकर रुई के समान कमज़ोर दिमाग़ पत्थर के समान दृढ़ हो जाता है। दिन भर लिखते-पढ़ते और दिमाग़ी परिश्रम करते-करते जब आप थक जाइए, तो थोड़ा सा यह तैल लगा कर देखिए, १० मिनट के बाद ऐसा जान पड़ेगा, मानो आपने परिश्रम किया ही न था। आपका दिमाग़ तरोताज़ा और चित्त प्रसन्न हो जायगा। इस तैल की उत्तमता पर मुग्ध होकर बड़े-बड़े राजा-महाराजा, गवर्नमेण्ट ऑफ़िसर तथा वैद्य, डॉक्टर और हकीमों ने अनेकों प्रशंसा-पत्र और कई स्वर्ण-पदक आविष्कर्ता को दिए हैं। गवर्नमेण्ट ने भी कृपा कर आविष्कर्ता के कार्य की सरलता के लिए उसके मकान ही पर हिमकल्याण तैल के नाम पर "हिमकल्याण" नाम का पोस्ट ऑफ़िस खोल दिया है। प्रशंसा-पत्रों का पूरा विवरण बड़े सूचीपत्र में देखिए।

हमारे तैल के विषय में प्रतिष्ठित सज्जनों की सम्मति !

कलकत्ते के स्वर्ण-पदक-प्राप्त प्रसिद्ध डॉक्टर बी० डी० शर्मन, बी० ए०, एच० एम्० बी०, एम० एस० (लन्दन) एफ़० आर० एस० ए० आई० ऐण्ड सी० (ग्लासगो) लिखते हैं—"हमने आपके जगत-प्रसिद्ध हिमकल्याण तैल की स्वयं परीक्षा करके निर्णय किया है कि, यह शुद्ध तिल के तैल पर पवित्र देशी औषधियों से बना हुआ है और उन समस्त रोगों के नाश करने में पूरी शक्ति रखता है, जिनका वर्णन आपने अपने सूचीपत्र में किया है.........।"

मूल्य १ शीशा का १) । अध्यापकों, छात्रों और 'राजपूताना-अङ्क' के ग्राहकों से आधा दाम; किन्तु इस मूल्य पर २ शीशी से कम नहीं भेज सकते। महसूल ज़िम्मे ख़रीदार।

नया कलेण्डर

स्वतन्त्रता-प्रेमी प्रत्येक भारतवासी के घर की शोभा बढ़ाने योग्य और वर्तमान आन्दोलन की आदि से अब तक की प्रगति तथा आगे आने वाली भविष्य घटनाओं का दिग्दर्शन कराने वाला, परम भव्य कलेण्डर तीन रङ्गों में सुन्दर मोटे आर्ट पेपर पर छप कर तैयार है। दाम ॥) महसूल ।-), कुल ॥।-) मनी-ऑर्डर से पेशगी आने पर भेजा जाता है। वी० पी० न लेने से वापस आने पर कलेण्डर मार्ग में फट कर ख़राब हो जाता है। इससे वी० पी० से कलेण्डर नहीं भेजा जाता।

अगर यह कलेण्डर आप बिना मूल्य लेना चाहते हैं, तो ⟋= हिमकल्याण तैल का रिआयती दाम १) और पार्सल-ख़र्च ॥) कुल १॥) मनीऑर्डर से भेजने पर पार्सल के साथ कलेण्डर मुफ़्त भेजा जायगा।

राजा-महाराजाओं से स्वर्ण-पदक और प्रशंसा-पत्र प्राप्त—

पं० गदाधरप्रसाद शर्मा, राजवैद्य, हिमकल्याण बिल्डिङ्स—इलाहाबाद

दीपावली के अवसर पर 'चाँद' के प्रेमियों को विराट उपहार

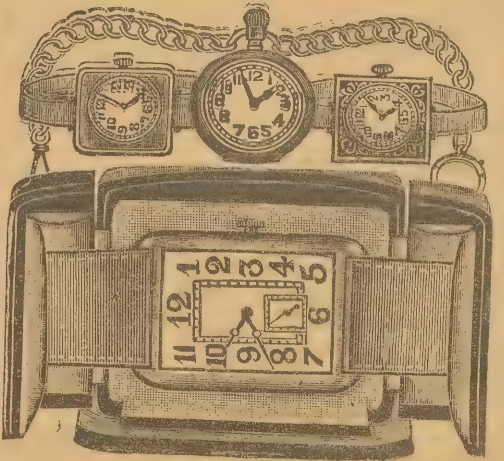

एक घड़ी लेने से तीन घड़ी मुफ़्त

हमारी महाराजा रिस्टवाच अपनी सुन्दरता और मज़बूती के कारण सारे भारतवर्ष में मशहूर है। चमचमाता हुआ डायल सुनहला रङ्ग आँखों को चकाचौंध कर देता है। स्क्वायर शेप और बनावट को देख कर आप दङ्ग रह जायँगे, पसन्द न हो तो क़ीमत वापस, दाम ६॥) साथ ही तीन अदद घड़ियाँ जैसे दो अदद सुन्दर डमी निकल पॉलिश की रिस्टवाचें बैण्ड सहित और एक रेलवे रेगुलेटर पॉकिटवाच इनाम—महाराजा रिस्टवाच की गारण्टी १० साल और इनामी घड़ियों की ख़ूबसूरती और मज़बूती की गारण्टी ५ साल। डाक-व्यय ॥=) आना सबका अलग लगेगा।

शारदा फ़्लूट हारमोनियम

जो अपनी सुन्दरता व मज़बूती के कारण सारे भारतवर्ष में मशहूर है, बढ़िया पेरिस रीड और सागोन की लकड़ी से तैयार किए जाते हैं—डबल पॉलिश, जिसमें चेहरे का बाल-बाल दिखाई देता है। आवाज़ बहुत ही मधुर और सुरीली है। क़ीमत सिर्फ़ प्रचार के लिए सिङ्गल रीड ४ स्टाप १६), २०), २५); डबल रीड पाँच-छः स्टाप ३०), ३५), ४५), ६०) रु०; ऑर्डर के साथ चौथाई दाम पेशगी। स्टेशन का नाम ज़रूर लिखें। ३ महीने में हारमोनियम सिखाने वाली किताब मूल्य १॥)

पता—शर्मा ब्रदर्स एण्ड को०, पो० ब० नं० ६७९१, बड़ा बाज़ार, सेक्सन ८५, कलकत्ता

तीनों घड़ियाँ बिल्कुल मुफ़्त

हमारी मशहूर दाद की दवा के लगाने से नया या पुराना कैसा ही दाद क्यों न हो, २४ घण्टा में जड़ से ग़ायब होता है। ६ शीशी एक साथ मँगाने वाले को सिर्फ़ २) देना पड़ेगा और साथ में एक डमी रिस्टवाच और एक इनफ्रैण्ट पाकेटवाच और एक असली बी टाइमपीस गारण्टी ५ साल मुफ़्त मिलेगी। साथ ही में १०० जादू की तस्वीरें भी मुफ़्त। इन तस्वीरों को जी चाहे जहाँ दीवाल, कपड़ा, किवाड़, किताब पर छाप लीजिए। डाक-ख़र्च अलग।

सेण्ट्रल ट्रेडिङ्ग कम्पनी, पो० ब० ११४२५, कलकत्ता

श्वेत-कुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता! यदि इस जड़ी के तीन ही दिन के लेप से सुफ़ेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना दाम वापस दूँगा। जो चाहें -) का टिकट भेज कर प्रतिज्ञा-पत्र लिखा लें। मूल्य ३) रु०।

पता—वैद्यराज पं० महावीर पाठक
नं० १२, दरभङ्गा

बवासीर की अचूक दवा

अगर आप दवा करके निराश हो गए हों, तो एक बार इस पेटेण्ट दवा को भी आज़मावें। ख़ूनी या बादी, नया चाहे पुराना, १५ दिन में जड़ से आराम। ३० दिन में शरीर बलवान न हो तो चौगुना दाम वापस। मूल्य १५ दिन का ३) रु०। ३० दिन का ५) रु०। अपना पता पोस्ट तथा रेलवे का साफ़-साफ़ लिखें।

आयुर्वेदाचार्य पं० कीर्तिनाथ शुक्र,
नं० ११, धोई दरभङ्गा

हमारे सम्राट्

ने जिस बसल की प्रदर्शिनी में, १९१० ईस्वी में, प्रधानपद स्वीकार किया था, उसके डायरेक्टर जनरल ने लिखा कि—

"हम आपके आविष्कार को सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हैं। और आपके विद्वत्तापूर्ण खोज के लिए अनेक धन्यवाद देते हैं। आशा है कि स्त्री जाति को प्रसव-काल में कोई कष्ट नहीं होगा।"

हमारा आश्चर्यमय आविष्कार स्त्री-जाति के लिए ईश्वरीय वरदान है।

इस सुपसावक बन्ध

से बालक बड़ी सुगमता से उत्पन्न होता है और प्रसूत-ज्वर आदि अनेक उपद्रव शान्त होते हैं। यहाँ तक कि गर्भाशय की ख़राबी और सूजन और मासिक धर्म से समय की पीड़ा भी दूर होती है। इसकी परीक्षा करने के पश्चात्

महाराजाधिराज दरभङ्गा जी० सी० एस० आई०

ने संरक्षता की और १९०९ की गवर्नमेण्टीय पञ्जाब प्रान्तीय प्रदर्शिनी ने पूरी जाँच कर और विशेष समिति द्वारा परीक्षा करके

सुवर्ण-पदक

दिया है। इसके आविष्कर्त्ता पश्चिमोत्तरीय भारत के विख्यात राजवैद्य, गवर्नमेण्ट डिप्लोमा होल्डर—

कविराज रामनारायण दुबे, बी० एस० एम० ए० हैं। इसको बाँईं जाँघ पर बाँध देने से ही सब काम हो जाते हैं। और अनेक वर्ष तक काम देता है। मूल्य केवल ५) रु० डाक-ख़र्च अलग।

पता—आर० एन० दुबे एण्ड-सन्स, हरप्रसाद स्ट्रीट, लाहौर

सिर्फ़ ५।।) रुपए में !

'रेडियम' रिस्ट वाच

घोर अन्धकार में भी साफ़-साफ़ समय बताती है!
लिखित गारण्टी ५ वर्ष
पसन्द न हो तो दाम वापिस

बढ़िया 'स्विस' मशीन, लुभावना छोटा साइज़ और मनोहर शक्ल। ठीक समय बताने में इतनी सच्ची है कि कभी एक मिनट का भी फ़र्क़ न पड़ेगा और वर्षों तक मरम्मत की ज़रूरत ही न पड़ेगी। ज़्यादा तारीफ़ करना व्यर्थ है, व्यवहार से ही परीक्षा होगी।

चमचमाते निकल सिलवर की	...	...	५।।)
बढ़िया सुनहरी पॉलिश की	...	...	६।।)
असली रोल्ड-गोल्ड की	...	...	९।।)

एक घड़ी का पैकिङ्ग और डाकख़र्च ।=) दो घड़ी एक साथ लेने से पैकिङ्ग और डाकख़र्च मुफ़्त।

दि यूनियन ट्रेडिङ्ग कम्पनी,
१७७, हरिसन रोड (७), कलकत्ता

बीसों प्रकार के प्रमेहों पर विजय प्राप्त कराने वाला

धातु-पौष्टिक चूर्ण (रजिस्टर्ड)

यह चूर्ण जङ्गल की जड़ी-बूटियों एवं अष्टवर्गादि द्वारा धातु रहित शुद्ध बनाया गया है। सबके खाने योग्य है। केवल २१ दिन के सेवन से पानी के समान पतले वीर्य को घन तुल्य गाढ़ा बना कर समस्त प्रकार के प्रमेहों को जड़ से खोकर, वीर्य-विकारों को दूर कर नपुंसकता, नामर्दी को नष्ट कर पुरुषत्व एवं सौन्दर्यता को देने वाला है। मूल्य फ़ी डिब्बा २) मय डाक-ख़र्च, वी० पी० द्वारा। पेशगी १।।।) भेजने से डाक-ख़र्च माफ़। नोट—स्वास्थ्योपयोगी मासिक पत्र 'रत्नाकर' का नमूना १ कार्ड डाल कर मुफ़्त मँगाइए।

पता—'रत्नाकर' भवन, इटावा—यू० पी०

पायरेक्स

मलेरिया के लिए मशहूर और ख़ास दवा

पायरेक्स—कोई गुप्त औषधि नहीं है, यह आजकल का सर्वोत्तम बुख़ार मिक्श्चर है। बहुत प्रचलित और आज़माए हुए सिद्धान्तों के आधार पर बनी हुई है। किसी भी सज्जन के मँगाने पर विवरण भेजा जा सकता है।

पायरेक्स—यह सिर्फ़ मलेरिया बुख़ार ही के लिए उत्तम नहीं, बल्कि इसके लगातार उपयोग से किसी भी प्रकार का रोग पास नहीं फटकने पाता। उन स्थानों में, जहाँ पर मरीज़ों को किसी प्रकार की दवा का सुभीता नहीं, वहाँ यह घर-घर होनी चाहिये।

पायरेक्स—तापतिल्ली, जिगर व इनफ़्लुएंज़ा और दूसरी बीमारियों के लिए भी बहुत उपयोगी है। एनीमिया के लिए भी विशेष फ़ायदा पहुँचाने वाली चीज़ है। बुख़ार के बाद की कमज़ोरी के लिए अद्वितीय दवा है।

पायरेक्स—४ औंस की बोतल, जिसमें १६ ख़ुराक होती है, उसमें बहुत अच्छी तरह से पेक की जाती है। इसके मुक़ाबिले दूसरी कोई भी बुख़ार की दवा सस्ती और मुफ़ीद ; कोई भी डॉक्टर या हकीम आपको नहीं दे सकेगा।

नक़ल करने वालों से होशियार रहिए। ख़रीदने के पहिले हमारा ट्रेडमार्क देख लीजिएगा।

बी० सी० पी० डब्लू०—बङ्गाल केमिकल एण्ड फ़ारमेस्यूटिकल वर्क्स लिमिटेड

१५ कॉलेज स्क्वायर, कलकत्ता

हर एक रोग में जादू का सा गुण दिखाती हैं

चालीस वर्षों की परीक्षा में किसी ने किसी प्रकार की शिकायत नहीं की

सुधासिन्धु

कफ, खाँसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, पेट-दर्द, क़ै, दस्त, इन्फ़्लूऐंज़ा, बालकों के हरे-पीले दस्त और पाकाशय की गड़बड़ी से होने वाले रोगों की एक-मात्र दवा। इसके सेवन में किसी अनुपान की ज़रूरत नहीं। मुसाफ़िरी में इसे ही साथ रखिए। क़ीमत ॥) आना। डाक-ख़र्च एक से दो शीशी तक ।=)

द्राक्षासव

शरीर में तत्काल बल बढ़ाता है ; क़ब्ज़, बद-हज़मी, कमज़ोरी, खाँसी को दूर करता है ; बुढ़ापे के कारण होने वाले सभी कष्टों से बचाता है, नींद लाता है और पीने में मीठा व स्वादिष्ट है। क़ीमत तीन पाव की बड़ी बोतल २) ; डाक-ख़र्च १॥) ; छोटी १) डाक-ख़र्च १=)

ये तीनों दवाइयाँ सब दूकानदारों के पास मिलती हैं।

बालसुधा

बच्चों को बलवान, सुन्दर और सुखी बनाने के लिए यह मीठा "बालसुधा" उन्हें पिलाइए, क़ीमत ॥), डाक-ख़र्च ॥-)

यदि आपके शहर में न मिलें तो इस पते से मँगाइए !

सुख-सञ्चारक कम्पनी, मथुरा

मूल्य केवल 3) रु०

निर्वासिता

स्थायी ग्राहकों से 2।) मात्र !

निर्वासिता वह मौलिक उपन्यास है, जिसकी चोट से क्षीणकाय भारतीय समाज एक बार ही तिलमिला उठेगा। अन्नपूर्णा का नैराश्यपूर्ण जीवन-वृत्तान्त पढ़ कर अधिकांश भारतीय महिलाएँ आँसू बहावेंगी। कौशलकिशोर का चरित्र पढ़ कर समाज-सेवियों की छातियाँ फूल उठेंगी। उपन्यास घटना-प्रधान नहीं, चरित्र-चित्रण-प्रधान है। निर्वासिता उपन्यास नहीं, हिन्दू-समाज के वक्षस्थल पर दहकती हुई चिता है, उसके एक-एक स्फुलिङ्ग में जादू का असर है। इस उपन्यास को पढ़ कर पाठकों को अपनी परिस्थिति पर घण्टों विचार करना होगा, भेड़-बकरियों के समान समझी जाने वाली करोड़ों अभागिनी स्त्रियों के प्रति करुणा का स्रोत बहाना होगा, आँखों के मोती बिखेरने होंगे और समाज में प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध क्रान्ति का झण्डा बुलन्द करना होगा; यही इस उपन्यास का संक्षिप्त परिचय है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, भाषा अत्यन्त सरल तथा मुहावरेदार है। शीघ्रता कीजिए, केवल थोड़ी सी प्रतियाँ शेष हैं, नहीं तो दूसरे संस्करण की राह देखनी पड़ेगी।

मूल्य केवल 3) रु०

दुबेजी की चिट्ठियाँ

स्थायी ग्राहकों से 2।) मात्र !!

हास्य-रस की यह अनुपम पुस्तक है। इसके प्रत्येक पृष्ठ में हास्य-धारा प्रवाहित हो रही है! भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों की इसमें ऐसी मार्मिक चुटकी ली गई है कि पुस्तक हाथ में लेने पर आपको छोड़ने की इच्छा नहीं होगी! सामाजिक ढकोसलों का भण्डाफोड़ ऐसे मनोरञ्जक ढङ्ग से किया गया है कि हँसते-हँसते आपके पेट में बल पड़ जायँगे; और समाज में क्रान्ति मचाने की इच्छा आपके हृदय में हिलोरें मारने लगेगी। अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने इस पुस्तक की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। शीघ्रता कीजिए! इस समय केवल थोड़ी सी प्रतियाँ और शेष हैं; अन्यथा दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी! भाषा अत्यन्त सरल तथा हास्यरसपूर्ण है!

व्यवस्थापक 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

शीघ्रता कीजिए !

नहीं तो पछताना पड़ेगा !!

मूल्य लागत मात्र
केवल ४) रु०

स्थायी ग्राहकों से
केवल ३) रु०

व्यङ्ग-चित्रावली

यह चित्रावली भारतीय समाज में प्रचलित वर्तमान कुरीतियों का जनाज़ा है। इसके प्रत्येक चित्र दिल पर चोट करने वाले हैं। चित्रों को देखते ही पश्चात्ताप एवं वेदना से हृदय तड़पने लगेगा ; मनुष्यता को याद आने लगेगी ; और सामाजिक क्रान्ति की भावना प्रबल वेग से हृदय में उमड़ने लगेगी। प्रत्येक सामाजिक कुरीतियों का चित्रों द्वारा नग्न-प्रदर्शन किया गया है। बाल-विवाह, वृद्धि-विवाह, छुआछूत, परदा-प्रथा, पण्डे-पुरोहितों तथा साधु-महन्तों के भयङ्कर कारनामे, अन्ध-बिश्वास, पाखण्ड तथा आचरण सम्बन्धी नाना प्रकार की नाशकारी कुरीतियों का सजीव चित्र देखना हो तो इस चित्रावली को अवश्य मँगाइए। एकरङ्गे, दुरङ्गे, तथा तिरङ्गे चित्रों की संख्या लगभग २०० है। प्रत्येक चित्र के नीचे बहुत ही सुन्दर पद्यमय पंक्तियों में उनका भाव तथा परिचय अङ्कित किया गया है। आज तक ऐसी चित्रावली कहीं से प्रकाशित नहीं हुई है। शीघ्र ही एक प्रति मँगा लीजिए !

व्यवस्थापिका
—'चाँद' कार्यालय—
चन्द्रलोक, इलाहाबाद

स्त्री-पुरुषों के अनेक रोगों पर अत्यन्त गुणकारी दवाएँ

पहले आप अपना वज़न करें और तब इस चूर्ण का सेवन करें।

२१ दिन बाद अपने को फिर तोलें

धातु-पौष्टिक चूर्ण

यह चूर्ण—तीन दिन के भीतर ही अपना गुण दिखा देता है, पेशाब की समस्त बीमारियों को हटा के दस्त साफ़ करता है, सब प्रकार का दर्द-पीड़ा तथा गिरती हुई धातु को रोकता है, पानी समान पतले वीर्य को एकदम गाढ़ा कर देता है, मेह-प्रमेह (गनोरिया-सुज़ा[illegible]) रोगों को यह चूर्ण जड़ से खो देता है तथा शरीर को बलवान करके स्मरण-शक्ति को बढ़ाता है। यह [illegible]दोष, हस्त-मैथुन, धातुक्षीणता, स्मरण मात्र से ही पतन, पेशाब के साथ धातुपात, अधिक विलासिता के कारण कमर [illegible] दर्द, कमज़ोरी के कारण हाथ-पैरों का काँपना, चक्कर आना, आँखों के आगे चिनगारियाँ [illegible], [illegible]जे का धड़कना, नामर्द हो जाना इत्यादि रोगों को दूर कर रक्त शुद्ध करता है और भूख, शक्ति तथा वज़न को बढ़ाता है। जिससे शरीर वज्र के समान मज़बूत हो जाता है। जिसमें पुरुषत्व न हो, उन्हें यह पुरुषत्व प्राप्त करा कर उनके वीर्य को गाढ़ा और गर्भधारण कराने के योग्य बना देता है। २१ दिन सेवन करने लायक़ पूर्ण गुण-कारी डिब्बे की क़ीमत ५) रु०, डा० पै० ख़० ॥।) मालिश के लिए तिला भी मिलता है, उसका दाम अलग।

स्त्री-रोग-निवारक चूर्ण

इस चूर्ण से—सब तरह का प्रदर, मासिक धर्म के समय पेट या कमर में दर्द, मासिक धर्म थोड़ा या कम होना, या बिलकुल ही न होना, असमय में मासिक धर्म होना, ख़ून के क़तरे गिरना, गर्भाशय में दोष होने के कारण गर्भ न रहना, गर्भपात होना, दुर्बल सन्तति होना या होकर मर जाना इत्यादि रोगों में २१ दिन चूर्ण का सेवन करने से गर्भाशय तथा शरीर के सब दोष दूर होकर मासिक धर्म समय पर होगा और गर्भपात न होकर सन्तति सशक्त तथा स्वस्थ (निरोग) उत्पन्न होगी। यहाँ तक कि ४० वर्ष की स्त्री को भी इसके सेवन से निश्चय ही गर्भधारण हो जाता है। २१ दिन तक सेवन करने योग्य चूर्ण के १ डिब्बे की क़ीमत ५) रु०, डा० पै० ख़० ॥।); यह दोनों दवा एक साथ मँगाने से डाकख़र्च माफ़।

इन दोनों ही चूर्णों को हर एक स्त्री और पुरुष दोनों ही हर मौसम में खा सकते हैं। यह चूर्ण आयुर्वेदीय शास्त्र में लिखी हुई उत्तम-उत्तम जड़ी-बूटियों से ही तैयार किए गए हैं। चूर्ण पवित्र और निर्दोष हैं। पथ्य परहेज़ भी अधिक नहीं है। सेवन-विधि चूर्णों के साथ में दी जाती है।

सन्तान की इच्छा करने वाले लोगों को यह दोनों ही दवा एक साथ मँगा के स्त्री और पुरुष दोनों ही को एक साथ खाने से अच्छा होगा। यह दवाएँ तत्काल गुण दिखाने वाली हैं। एक बार विश्वास रख कर इसे अवश्य मँगावें। और समस्त आयुर्वेदीय दवाइयाँ सदा तैयार मिलती हैं। सूचीपत्र मुफ़्त।

पता—भारत भैषज्य-भण्डार, ७८ नं०, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता

पुनर्जीवन

मूल-लेखक—महात्मा काउण्ट टॉल्सटॉय

[अनुवादक—प्रोफ़ेसर रुद्रनारायण जी अग्रवाल, बी० ए०]

[illegible] के महान् पु[illegible] काउण्ट लियो टॉल्सटॉय की अन्तिम कृति है। यह उन्हें [illegible] [illegible]ाया गया है कि किस प्रकार कामान्ध पुरुष अपनी अल्प-[illegible] [illegible]न्ति के लिए एक निर्दोष बालिका का जीवन नष्ट कर देता है ; किस प्रकार पाप का उदय होने पर वह अपनी आश्रयदाता के घर से निकाली जाकर अन्य अनेक लुब्ध पुरुषों की वासना-तृप्ति का साधन बनती है, और किस प्रकार अन्त में वह वेश्यावृत्ति ग्रहण कर लेती है। फिर उसके ऊपर हत्या का झूठा अभियोग चलाया जाना, संयोगवश उसके प्रथम भ्रष्टकर्ता का भी जूररों में सम्मिलित होना, उसकी ऐसी अवस्था देख कर उसे अपने किए पर अनुताप होना, और उसका निश्चय करना कि चूँकि उसकी इस पतित दशा का एक मात्र वही उत्तरदायी है, इसलिए उसे उसका घोर प्रायश्चित्त भी करना चाहिए—सब एक-एक करके मनोहारी रूप से सामने आते हैं, और वह प्रायश्चित्त का कठोर निर्दय-स्वरूप, वह धार्मिक भावनाओं का प्रबल उद्रेक, वह निर्धनों के जीवन के साथ अपना जीवन मिला देने की उत्कट इच्छा, जो उसे साइबेरिया तक खींच कर ले गई थी, पढ़िए और अनुकम्पा के दो-चार आँसू बहाइए। इसमें दिखाया गया है कि उस समय रूस में त्याग के नाम पर किस प्रकार मनुष्य-जाति पर अत्याचार किया जाता था। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र केवल ४) रु०; स्थायी ग्राहकों से ३॥) रु०

व्यवस्थापिका
—'चाँद' कार्यालय—
चन्द्रलोक, इलाहाबाद

Regd. No. A—1154

अवश्य पढ़ें

हम गारण्टी करते हैं कि बरेली के रजिस्टर्ड शीतल सुरमा के सेवन से जन्म भर आँखें न दुखेंगी, ज्योति बिजली के समान तेज़ हो जायगी, चश्मे की आदत छूट जाएगी और धुन्ध, खुजली, रोहे, सुर्खी, जाला, फूली, रतौंध, नज़ला, ढरका, तींगुर, परवाल, चकाचौंध, जलन, पोड़ा, पानी बहना, आँखों के आगे तारे से दीखना, एकदम अँधेरा आ जाना, ग्वाइयों का निकलना और दुखती आँखें, इन रोगों को भी जड़ से आराम न हो, तो सत्यता से एक पत्र लिखने पर पूरी क़ीमत वापिस देंगे। १ शीशी मय मनोहर सलाई १।) खर्च ॥) ३ शीशी ३।=) खर्च माफ़। नमूने के लिए तीन आने का टिकट भेजें।

शीतल सुरमा पर लोकमत

(१) महाशय ! मैं अपनी आँखों से नाउम्मेद हो गई थी। मेरी आँख में माड़ी पड़ गई थी, फुन्सियाँ निकलती थीं व पानी गिरता रहता था। डॉक्टर, एलोपैथिक, होम्योपैथिक सब हार गए। आपके शीतल सुरमा ने मेरे साथ वह काम किया, जो डॉक्टर लोग न कर सके। इसके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। (श्रीमती विन्ध्येश्वरीप्रसाद लिक्वेडेटर को-ऑपरेटिव सोसाइटी, मुरारपुर, जि० गया)

(२) प्रिय महाशय जी, सादर प्रणाम ! शीतल सुरमा बड़ा ही गुणकारी है, हमारा तो यहाँ तक विश्वास हो गया है, यदि चश्माधारी महाशय कुछ दिन इसका लगातार सेवन करें, तो चश्मा लगाने की उन्हें कोई ज़रूरत न रहेगी। कृपया बताइए, दर्जन के हिसाब से आप किस दर से देंगे ? (धनुषधारीप्रसाद, पोस्ट सीतारामपुर, ज़िला बर्दवान)

(३) प्रिय महाशय जी, सविनय प्रणाम ! आप के भेजे हुए शीतल सुरमा की वी० पी० प्राप्त हुई। सेवन करके पूरा लाभ उठा चुका हूँ। धुन्ध, खुजलाहट, जलन जाता रहा है। (ठा० महाराजनारायणसिंह ज़मींदार, मौज़ा गोकुलपुर, पोस्ट चिल्बरिया, ज़िला बहरायच)

(४) प्रिय महाशय ! शीतल सुरमा ने मुझे बहुत फ़ायदा किया है। सुर्ख़ी, ढरका, नज़ला एक ही शीशी में अच्छा हो गया और फूली भी चार हिस्सों में तीन हिस्सा रह गई है। कृपया दो शीशी वी० पी० द्वारा और भेज दीजिए। (ठा० श्रीलाल लालमनसिंह परिहार, मौज़ा इटमा, पोस्ट नागौद, स्टेशन सतना)

(५) मैनेजर साहब ! हमने अपनी आँखों के रोगों, जलन का होना, गुहेरियों का ज़्यादा होना, कभी-कभी आँखों की शिकायत दुखने की हो जाना, की औषधि के लिए लिखा। आपने तीन शीशियाँ शीतल सुरमा वी० पी० द्वारा भेजीं। उसके लगाने से तीन दिन में ही ऐसा आश्चर्य हुआ कि मेरी तमाम शिकायतें दूर हो गईं। (ठा० जयसिंह सोडा मिस्त्री, प्राग आइस फ़ैक्टरी, अजमेर)

पता—शिवराज, कारख़ाना फ़ूल ६, बरेली, यू० पी०

Edited by Dr. D. R. Prem, M. R. C. S. (Eng.), L. R. C. P. (Lond.), and Printed and Published by Shrimati Lakshmi Devi, at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road—Chandralok, Allahabad.

This PDF you are browsing now is in a series of several scanned documents by the Centre for the Study of Developing Societies (CSDS), Delhi

CSDS gratefully acknowledges the enterprise of the following savants/ institutions in making the digitzation possible:

Historian, Writer and Editor Priyamvad of Kanpur for the Hindi periodicals (Bhavishya, Chand, Madhuri)

Mr. Fuwad Khwaja for the Urdu weekly newspaper Sadaqat, edited by his grandfather and father.

Historian Shahid Amin for faciliating the donation.

British Library's Endangered Archives Programme (EAP-1435) for funding the project that involved rescue, scan, sharing and metadata creation.

ICAS-MP and India Habitat Centre for facilitating exhibitions.

Digital Upload by eGangotri Digital Preservation Trust.

centre for the study of developing societies

BRITISH LIBRARY